डॉ० कु० सरोज गुप्ता

रामचरितमानस

की

सूक्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन

mir-ud-daula Public Library
H
891.43109
G959R
97821R

राजस्थान प्रकाशन
जयपुर

रामचरितमानस

की

सूक्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन

[राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत एवं स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

लेखिका :

डॉ॰ कु॰ सरोज गुप्ता

एम. ए.

राजस्थान प्रकाशन

जयपुर

• प्रकाशक ।
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार,
जयपुर–2

• संस्करण :
1988

• मूल्य :
40·00

Amir-Ud-Daula Public Library
Kaiserbagh, Lucknow
Acc. No ....97821 R
Class No 891.431
Book No ....G 959 R

• कम्पोज ।
जनरल कम्पोजिंग एजेन्सी,
किशनपोल बाजार, जयपुर–3

• मुद्रक ।
मॉडर्न प्रिण्टर्स
गोधों का रास्ता,
जयपुर–3

उनको

जिन्होंने

यहाँ तक पहुँचाया।

पाठकों से निवेदन

मुद्रक की गलती से ग्रंथ में जहाँ त्रुटियाँ रह गई, उसके लिए हमने पुस्तक के अंत में शुद्धि-पत्र लगा दिया है : पाठकों की इस असुविधा के लिए क्षमा चाहते हैं।

—प्रकाशक

संदेश

डॉ. सरोज गुप्ता लिखित "रामचरितमानस की सूक्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन" नामक ग्रन्थ देखने का अवसर मिला। रामचरितमानस की सूक्तियों पर ग्रन्थ लिखने का यह प्रथम प्रयास है। इस ग्रन्थ के अध्ययन करने पर ऐसा मालूम पड़ा कि काफी परिश्रम से यह ग्रन्थ लिखा गया है। मानस–प्रेमियों के लिए तो यह अद्‌भुत ग्रन्थ है, हमें ऐसा प्रतीत होता है। जगह–जगह पर अन्य ग्रन्थों का उदाहरण देकर जो स्पष्टीकरण किया गया है, उससे इन सूक्तियों को समझने में काफी सरलता हो गई है। आशा है कि इस उत्तम ग्रन्थ से विद्वान् लोग अवश्य लाभ उठायेंगे।

"जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं।
सो श्रम बादि बाल कबि करहीं ।।"

विद्वानों को इस ग्रन्थ से अवश्य लाभ मिलेगा, यह हमारी धारणा है। हमारी शुभकामना एवं आशीर्वाद, दोनों लेखिका के साथ है।

—**डॉ. श्रीनाथ मिश्र** (रामायणी)
३/१८ शिवाला
वाराणसी (उ० प्र०)

सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। यह वर्गीकरण प्रस्तुत करते समय हमने श्री वियोगी हरि द्वारा सम्पादित 'तुलसी-सूक्ति-सुधा' में किये गये सूक्ति विषयक वर्गीकरण की आलोचना करते हुए उसे अमान्य ठहराया है।

चतुर्थ अध्याय में समाजपरक सूक्तियों का, पंचम में राजनीतिपरक सूक्तियों का, षष्ठ में धर्मपरक, सप्तम में दर्शनपरक, अष्टम में भक्तिपरक, नवम में मनोविज्ञान-परक, दशम में प्रकृतिपरक तथा एकादश अध्याय में विविध-विषयक सूक्तियों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय खण्ड सूक्ति विषयक 'भाव-ग्रहण एवं मौलिकता' से सम्बन्धित है। इसमें हमने स्रोतों को खोजने का प्रयास किया है जिनसे गोस्वामीजी ने अपने सूक्ति-विषयक भाव ग्रहण किये हैं।

चतुर्थ खण्ड 'उपसंहार' में 'मानस' की सूक्तियों में निहित जीवन-मूल्य की वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता एवं जन-जीवन पर उनके प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है।

पाठकों की सुविधा के लिए 'परिशिष्ट' में प्रयुक्त सूक्तियों को (मानसानुसार) अकारादि क्रम से संकलित कर दिया गया है।

मैं उन समस्त पथ-प्रदर्शकों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे अपने लक्ष्य तक पहुँचने में विभिन्न मोड़ों पर संबल प्रदान करते हुए, यथावसर प्रेरित और प्रोत्साहित किया है। कुछ समय के लिए विश्वविद्यालय में सेवारत होने एवं अस्वस्थ रहने के कारण शोध-कार्य में तीव्रता ला पाना मेरे लिए कठिन हो गया था। इसके अतिरिक्त 16-वर्षीय भ्राता की असामयिक मृत्यु से व्युत्पन्न मानसिक अशान्ति एवं शारीरिक व्याधियों ने मुझे डावाँडोल कर दिया था। इस क्लेशपूर्ण एवं असहनीय वातावरण में भी मैं इस कार्य को पूर्ण कर पाई, इस सबके पीछे स्वजनों एवं गुरुजनों का वरद-हस्त था। मैं अपने शोध-निरीक्षक आचार्य डॉ० नरेन्द्र भानावत के प्रति श्रद्धावनत् हूँ जिनके विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में यह प्रबन्ध पूर्ण हो सका।

श्री वियोगी हरि जी की मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अपनी दुर्लभ कृति 'तुलसी-सूक्ति-सुधा' सुलभ कर मुझे सहयोग और प्रोत्साहन दिया। आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भंडार, जयपुर, के अधिकारियों ने मुझे आवश्यक पुस्तकें सुलभ कर जो सहयोग प्रदान किया तदर्थ मैं उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। मेरी छोटी बहिन वीना का 'सूक्ति-विषयक तालिका निर्माण' में मुझे सहयोग मिला है, उसे धन्यवाद-स्वरूप क्या दूँ?

यदि यह ग्रन्थ 'मानस' के अध्ययन को किंचित् भी आगे बढ़ा सका तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगी।

— लेखिका

रामनवमी : संवत् २०३१

विषय-सूची

पृष्ठ सं०

प्रथम खण्ड
भूमिका

1. विषय-निरूपण : **1-61**

(अ) सूक्ति का स्वरूप : **1-6**

(क) व्युत्पत्ति लभ्यार्थ 1, (ख) कोशपरक अर्थ 2, (ग) विभिन्न विद्वानों के मत 4, निष्कर्ष 6।

(आ) सूक्ति और अन्य समानार्थक शब्द : **6–15**

सूक्ति और लोकोक्ति 7, सूक्ति और काव्योक्ति 9, काव्य 9, काव्योक्ति 10, काव्य और सूक्ति 12, निष्कर्ष 13।

(इ) **भारतीय साहित्य में सूक्ति-प्रयोग तथा परम्परा :** **16–54**

प्रयोग और परम्परा 16, साहित्य में प्रयोग 17, (क) संस्कृत साहित्य में सूक्ति प्रयोग 17, (ख) प्राकृत साहित्य में सूक्ति प्रयोग 29, (ग) पालि साहित्य में सूक्ति प्रयोग 34, (घ) अपभ्रन्श साहित्य में सूक्ति प्रयोग 36, (ङ) हिन्दी साहित्य में सूक्ति-प्रयोग 39, आदिकाल में सूक्ति प्रयोग 39, भक्तिकाल में सूक्ति प्रयोग 40, रीतिकाल में सूक्ति प्रयोग 45, आधुनिक काल में सूक्ति प्रयोग 48, निष्कर्ष 54।

(ई) **प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता :** **54-61**

तुलसी एवं उनकी रचनाओं पर किये गये कार्यों की विवरण तालिका 55, तुलसी का सूक्ति विषयक अध्ययन 60।

द्वितीय खण्ड

'रामचरितमानस' की सूक्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन **63-247**

2. 'रामचरितमानस' : नामकरण, रचना हेतु और महत्व : **64–75**

रामचरितमानस : 64, रचनाकाल 64, नामकरण 64, रचना का हेतु 64, रामचरित-महिमा 66, मानस-रूपक-माहात्म्य 67, महत्ता 72।

सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। यह वर्गीकरण प्रस्तुत करते समय हमने श्री वियोगी हरि द्वारा सम्पादित 'तुलसी-सूक्ति-सुधा' में किये गये सूक्ति विषयक वर्गीकरण की आलोचना करते हुए उसे अमान्य ठहराया है।

चतुर्थ अध्याय में समाजपरक सूक्तियों का, पंचम में राजनीतिपरक सूक्तियों का, षष्ठ में धर्मपरक, सप्तम में दर्शनपरक, अष्टम में भक्तिपरक, नवम में मनोविज्ञान-परक, दशम में प्रकृतिपरक तथा एकादश अध्याय में विविध-विषयक सूक्तियों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय खण्ड सूक्ति विषयक 'भाव-ग्रहण एवं मौलिकता' से सम्बन्धित है। इसमें हमने स्रोतों को खोजने का प्रयास किया है जिनसे गोस्वामीजी ने अपने सूक्ति-विषयक भाव ग्रहण किये हैं।

चतुर्थ खण्ड 'उपसंहार' में 'मानस' की सूक्तियों में निहित जीवन-मूल्य की वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता एवं जन-जीवन पर उनके प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है।

पाठकों की सुविधा के लिए 'परिशिष्ट' में प्रयुक्त सूक्तियों को (मानसानुसार) अकारादि क्रम से संकलित कर दिया गया है।

मैं उन समस्त पथ-प्रदर्शकों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे अपने लक्ष्य तक पहुँचने में विभिन्न मोड़ों पर संबल प्रदान करते हुए, यथावसर प्रेरित और प्रोत्साहित किया है। कुछ समय के लिए विश्वविद्यालय में सेवारत होने एवं अस्वस्थ रहने के कारण शोध-कार्य में तीव्रता ला पाना मेरे लिए कठिन हो गया था। इसके अतिरिक्त 16-वर्षीय भ्राता की असामयिक मृत्यु से व्युत्पन्न मानसिक अशान्ति एवं शारीरिक व्याधियों ने मुझे डावाँडोल कर दिया था। इस क्लेशपूर्ण एवं असहनीय वातावरण में भी मैं इस कार्य को पूर्ण कर पाई, इस सबके पीछे स्वजनों एवं गुरुजनों का वरद-हस्त था। मैं अपने शोध-निरीक्षक आचार्य डॉ० नरेन्द्र भानावत के प्रति श्रद्धावनत् हूँ जिनके विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में यह प्रबन्ध पूर्ण हो सका।

श्री वियोगी हरि जी की मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अपनी दुर्लभ कृति 'तुलसी-सूक्ति-सुधा' सुलभ कर मुझे सहयोग और प्रोत्साहन दिया। आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भंडार, जयपुर, के अधिकारियों ने मुझे आवश्यक पुस्तकें सुलभ कर जो सहयोग प्रदान किया तदर्थ मैं उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। मेरी छोटी बहिन वीना का 'सूक्ति-विषयक तालिका निर्माण' में मुझे सहयोग मिला है, उसे धन्यवाद-स्वरूप क्या दूँ ?

यदि यह ग्रन्थ 'मानस' के अध्ययन को किंचित् भी आगे बढ़ा सका तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगी।

—लेखिका

रामनवमी : संवत् २०३१

विषय-सूची

पृष्ठ सं०

प्रथम खण्ड

भूमिका

1. विषय-निरूपरण : **1-61**

(अ) **सूक्ति का स्वरूप :** **1-6**

(क) व्युत्पत्ति लभ्यार्थ 1, (ख) कोशपरक अर्थ 2, (ग) विभिन्न विद्वानों के मत 4, निष्कर्ष 6 ।

(आ) **सूक्ति और अन्य समानार्थक शब्द :** **6–15**

सूक्ति और लोकोक्ति 7, सूक्ति और काव्योक्ति 9, काव्य 9, काव्योक्ति 10, काव्य और सूक्ति 12, निष्कर्ष 13 ।

(इ) **भारतीय साहित्य में सूक्ति-प्रयोग तथा परम्परा :** **16–54**

प्रयोग और परम्परा 16, साहित्य में प्रयोग 17, (क) संस्कृत साहित्य में सूक्ति प्रयोग 17, (ख) प्राकृत साहित्य में सूक्ति प्रयोग 29, (ग) पालि साहित्य में सूक्ति प्रयोग 34, (घ) अपभ्रन्श साहित्य में सूक्ति प्रयोग 36, (ङ) हिन्दी साहित्य में सूक्ति-प्रयोग 39, आदिकाल में सूक्ति प्रयोग 39, भक्तिकाल में सूक्ति प्रयोग 40, रीतिकाल में सूक्ति प्रयोग 45, आधुनिक काल में सूक्ति प्रयोग 48, निष्कर्ष 54 ।

(ई) **प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता :** **54-61**

तुलसी एवं उनकी रचनाओं पर किये गये कार्यों की विवरण तालिका 55, तुलसी का सूक्ति विषयक अध्ययन 60 ।

द्वितीय खण्ड

'रामचरितमानस' की सूक्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन **63-247**

2. 'रामचरितमानस' : नामकरण, रचना हेतु और महत्व : **64–75**

रामचरितमानस : 64, रचनाकाल 64, नामकरण 64, रचना का हेतु 64, रामचरित-महिमा 66, मानस-रूपक-माहात्म्य 67, महत्ता 72 ।

3. 'मानस' की संरचना में सूक्तियों की स्थिति : 76-96

(1) काण्डपरक तालिका 77, (2) विषयपरक तालिका 78, निष्कर्ष 95 ।

4. 'मानस' की सूक्तियों का वर्गीकरण और अध्ययन : 97-104

(1) समाजपरक सूक्तियाँ 103, (2) राजनीतिपरक सूक्तियाँ 103, (3) धर्मपरक सूक्तियाँ 103, (4) दर्शनपरक सूक्तियाँ 103, (5) भक्तिपरक सूक्तियाँ 103, (6) मनोविज्ञानपरक सूक्तियाँ 104, (7) प्रकृतिपरक सूक्तियाँ 104, (8) विविध विषयक सूक्तियाँ 104 ।

5. समाजपरक सूक्तियाँ : 104-128

तुलसीकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ 104, समाजपरक सूक्तियाँ 107, (1) वर्ण-व्यवस्था 108, क्षत्रिय 108, वैश्य 109, शूद्र 109, (2) आश्रम-व्यवस्था 109, गृहस्थ 109, वानप्रस्थ 110, संन्यासाश्रम 110, (3) माता-पिता 110, (4) पुत्र 111, (5) पुत्रधर्म 112, आज्ञापालन 113, (6) अग्रज-अनुज सम्बन्ध 113, (7) भ्राता 114, (8) गुरु-शिष्य धर्म 114, स्वामी-सेवक धर्म 116, (10) मित्र धर्म 118, (11) वैद्य धर्म 119, (12) विद्वान 120, (13) नारी 120, तुलसी का नारी सम्बन्धो दृष्टिकोण 121, पातिव्रत्य महिमा 124, नारी-अवगुण 127, निष्कर्ष 128 ।

6. राजनीतिपरक सूक्तियाँ : 128-140

तुलसीकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ 128, राजनीतिपरक सूक्तियाँ 130, (1) राजा 130, (2) राजा के कर्तव्य 131, प्रजापालक 132, मुख सदृश करनी 132, नीति-प्रज्ञ 133, कर-ग्रहण-युक्ति 134, (3) शासक-नीति 134, (4) राजपद 135, (5) मन्त्री 135, (6) शत्रु 136, (7) प्रजा 137, (8) राज्य 137, (9) शरणार्थी-दूत 139, (10) शरणागत रक्षा 139, (11) वंशगत वैशिष्ट्य 139, निष्कर्ष 140 ।

7. धर्मपरक सूक्तियाँ : 140-151

धर्म 140, तुलसीकालीन धार्मिक परिस्थितियाँ 143, धर्मपरक सूक्तियाँ 144, (1) धर्म के मूल रूप (सामान्य धर्म) 145,

(2) युग-धर्म 146, (3) धर्म-साधना 147, (4) धर्मफल-उद्देश्य 148, (5) धर्म का परीक्षा-काल 148, (6) श्रद्धा 148, दया 149, (7) तप 149, (8) सत्य-असत्य 149, (9) परहित 150, (10) पाप-पुण्य 150, (11) अहिंसा 151, निष्कर्ष 151।

8. दर्शनपरक सूक्तियाँ : 152–186

(1) दर्शन 152, तुलसी एवं दर्शन 153, दर्शनपरक सूक्तियाँ 156, (1) ब्रह्म 156, ब्रह्मरूप 159, ईश-कृपा-फल 161, (2) जीव 162, (3) जीव के प्रकार 164, जीवस्वरूप 164, जीवधर्म 164, जीव और ईश्वर 165, बन्धन-मुक्त-युक्ति 165, ग्रन्थि-विघ्न 167, मनुष्य-योनि (नर-शरीर) 168, (3) जगत् (सृष्टि) 170, जगत जंजाल 172, (4) माया 173, (5) ज्ञान-भक्ति 176, (6) मुक्ति 178, (7) भावी (नियति) 179, (8) काम-क्रोध-लोभ-मोह 180, (9) आधि-व्याधि 181, निष्कर्ष 186।

1/10/91

9. भक्तिपरक सूक्तियाँ : 187-202

भक्ति 187, भक्ति के रूप 188, तुलसी और भक्ति 188, भक्तिपरक सूक्तियाँ 189, (1) नाम-महिमा 189, (2) गुण-महिमा 192, (3) प्रभु-धाम 193, (4) भक्ति के आवश्यक उपादान 194, (5) हरि-भजन 195, (6) हरि-कथा 197, (7) भक्त 197, (8) भक्त-लक्षण 199, (9) भक्ति-महिमा 200, (10) राम-विमुख 201, निष्कर्ष 202।

10. मनोविज्ञानपरक सूक्तियाँ : 202–226

भाव 203, मनोविज्ञानपरक सूक्तियाँ 203, (1) मनुष्य-कोटि 204, (2) सन्त एवं असन्त प्रवृत्ति 205, (3) सन्त-असन्त उत्पत्ति 206, (4) गुण-अवगुण ग्राह्यता 206, (5) सन्त-लक्षण 207, (6) असन्त-लक्षण 210, (7) सन्त-असन्त कर्म (करनी) 211, (8) दुष्ट (नीच) 212, (9) जड़-प्रवृत्ति 213, (10) कामी-लोभी प्रवृत्ति 213, (11) भक्त-प्रवृत्ति 214, (12) नारी-प्रवृत्ति 214, (13) अंग-हीन या क्षत-शरीर–व्यक्ति प्रवृत्ति 215, (14) चोर-वृत्ति 215, (15) जोंक-वृत्ति 215 (16) काक-वृत्ति 216,

(17) समान स्वभाव-वृत्ति 216, (18) वक्रगति 216, (19) बाल-स्वभाव 217, (20) सामान्य विवेक 217, (21) धर्म-शीलव्रती 218, (22) विरले 218, (23) समय 219, (24) असम्भव कार्य 220, (25) शूरवीर 220, (26) बैर-प्रीति के पात्र 221, (27) जाति-अपमान 221, (28) खिंचाव 222, (29) पवित्र स्नेह 222, (30) परख 223, (31) आपत्ति 223, (23) कुपंथ की ओर अग्रसर प्रवृत्ति 224, (33) स्वार्थ 224, (34) स्व-प्रशंसा 225, (35) जीव-जागरण 226, निष्कर्ष 226 ।

11. प्रकृतिपरक सूक्तियाँ : **226–236**

प्रकृति 226, मानव और प्रकृति 227, भक्ति साहित्य में प्रकृति 227, तुलसी और प्रकृति 227, प्रकृतिपरक सूक्तियाँ 228, (1) कृषि-किसान 230, (2) चक्रवाक 230, (3) चन्द्रमा 231, (4) चातक-हंस-मीन-प्रण 231, (5) जलद 232, (6) जुगनू 233, (7) दामिनि 233, (8) नदी 233, (9) पर्वत 233, (10) पलव 234, (11) पृथ्वी 234, (12) मीन 235, (13) शरदकालीन अनुभूति 236, निष्कर्ष 236 ।

12. विविध विषयक सूक्तियाँ : **237–247**

(1) एकाकी जीवन की वृत्ति 237, (2) आर्त जन 238, (3) अग्नि-स्वभाव 238, (4) असंभवता 238, (5) कनक-स्वभाव 238, (6) कर्म 240, (7) कवि कविता 241, (8) कारण-कार्य 242, (9) काल 243, (10) गमनागमन-प्रसंग 243, (11) धीर पुरुष 243, (12) श्रम 244, (13) व्यर्थ श्रम 244, (14) शोचनीय जन 245, (15) सन्तोष 245, (16) संगति 245, निष्कर्ष 247, ।

तृतीय खण्ड

13. सूक्ति-विषयक भाव-ग्रहण एवं मौलिकता : **250–279**

(1) अपकीर्ति 254, (2) अवतार हेतु 255, (3) असाधारण व्यक्तित्व 255, (4) आत्मा की अमरता 256, (5) आर्त जन 256, (6) ईश-भजन 257, (7) उपकार वृत्ति 257, (8) कर्मानुसार फल-प्राप्ति 258,

(9) कलि आधार : राम नाम 258, (10) कलि-धर्म-निरूपण 259, (11) कलियुग में नाम-स्मरण की महत्ता 260, (12) काने-खोरे-कूबरे 260, (13) कुदृष्टि (नारी के प्रति) 261, (14) खल-प्रीति 261, (15) खल-स्वभाव 262, (16) जीभ की सार्थकता 262, (17) जीव की गति : हरि-शरण 263, (18) ठकुर सुहाती कहना 263, (19) दुष्ट संसर्ग 263, (20) दूत वध योग्य नहीं 264, (21) दैववश : आलसी-जन 265, (22) धर्म 266, (23) नर-देह-सार्थकता 266, (24) नारी-स्वभाव 267, (25) पतिव्रता-लक्षण 267, (26) पर-उपदेश 270, (27) पराधीनता : असह्य दुख 271, (28) पसन्दगी 271, (29) प्रभु-प्रिय-भक्त 273, (30) प्रीति 272, (31) बुध-जन-गुण 272, (32) भाग्य लेख 273, (33) मानव-स्वभाव 273, (34) मोक्षाधिकारी 274, (35) रघुकुल-वचन 274, (36) वश से परे 274, (37) विरले पुरुष 275, (38) शरणागत रक्षा 275, (39) सन्त-प्रकृति 276, (40) सन्त-भक्त गुण 276, (41) सहोदर (भ्राता) 277, (42) सामर्थ्यवान 278, (43) सेवक-धर्म 278, निष्कर्ष 279।

चतुर्थ खण्ड
उपसंहार

14. 'मानस' की सूक्तियों में निहित जीवन-मूल्यों की वर्तमान सन्दर्भ में उपयोगिता एवं जन-जीवन पर प्रभाव। **282–288**

परिशिष्ट

1. मानस की सूक्तियाँ (अकारादि क्रम से)

2. सहायक ग्रन्थों की सूची :

(क) 'रामचरितमानस' एवं तुलसी सम्बन्धी ग्रन्थ

(ख) सूक्ति सम्बन्धी ग्रन्थ

(ग) साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ

(घ) कोश-ग्रन्थ

(ङ) पत्रिकाएँ

संकेत-सूची

बाल.	—	बालकाण्ड
अयो.	—	अयोध्याकाण्ड
अर.	—	अरण्यकाण्ड
किष्कि.	—	किष्किन्धाकाण्ड
सु.	—	सुन्दरकाण्ड
लंका	—	लंकाकाण्ड
उत्तर.	—	उत्तरकाण्ड
काक.	—	काकभुशुण्डि
का.	—	काण्ड
रा. च. मा.	—	रामचरितमानस
वा. रा.	—	वाल्मीकि रामायण

••

प्रथम खण्ड

भूमिका

प्रथम खण्ड

विषय निरूपण

(अ) सूक्ति का स्वरूप

(आ) सूक्ति और अन्य समानार्थक शब्द

(इ) भारतीय साहित्य में सूक्ति-प्रयोग तथा परम्परा

(ई) प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता

ऐसा कथन जो जीवन के व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्धित किसी सिद्धान्त, नीति, अथवा अनुभवसिद्ध तथ्य की पुष्टि करता हो, वह सूक्ति कहा जाता है। सूक्ति किसी विस्तृत विचार का निष्कर्षात्मक रूप होती है। सूक्तियों से जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव व्यंजित होता है। सूक्तियों में मनीषियों के चिन्तन, अनुभूतियों, परीक्षण, और कल्पना के तत्त्व, सारभूत सत्य निहित होते हैं। उनके द्वारा जीवन-यात्रा में हमें स्फूर्ति, प्रोत्साहन, और मानसिक बल प्राप्त होता है। वे जीवन के अन्धकारपूर्ण क्षणों में प्रकाश-किरण का काम करती हैं। इस प्रकार सूक्तियाँ साहित्य गगन में देदीप्यमान उज्ज्वल नक्षत्र के समान हैं। इनकी आभा देश और काल की संकुचित सीमा पार करके सर्वदा एकसमान और एकरत रहने वाली है। सूक्तियों में आत्म-अनुभूतियाँ भावपूर्ण शब्दों में व्यक्त होती हैं, जिनका बात-बात में हम प्रमाण-स्वरूप प्रयोग कर सकते हैं--करते हैं।

सूक्तियों में जीवन-भर के कितने ही अनुभवों का अमृत सिर्फ एक बिन्दु में ही भर दिया जाता है।

सूक्तियाँ कवि-ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं, वे मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, उनसे बुद्धि और अनुभव की सदा फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती रहती है।

(अ) सूक्ति का स्वरूप

सूक्ति के स्वरूप को समझने (स्पष्ट करने) के लिए हम निम्न रूप से विचार कर सकते हैं—

(क) व्युत्पत्तिलभ्यार्थ।

(ख) कोषपरक अर्थ।

(ग) विभिन्न विद्वानों के मत।

(क) व्युत्पत्तिलभ्यार्थ :

सूक्ति शब्द 'उक्ति' से व्युत्पन्न है, जिसका आशय है--कथन। इसमें 'सु' उपसर्ग लगाकर 'सूक्ति' बना दिया गया, जिसका अर्थ है--अच्छा कथन या सुन्दर उक्ति।

सूक्ति के अनेक पर्यायवाची शब्द भी बताये गये हैं जिनमें प्रमुख सुभाषित[1] प्रज्ञासुत्र, ऐकोरिज्म, ग्रैप्फथेग्म[2] हैं।

(ख) कोषपरक अर्थ :

इस पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है--

(1) भारतीय शब्द कोश।

(2) पाश्चात्य शब्द कोश।

(1) भारतीय शब्दकोषों में 'नालन्दा विशाल शब्द सागर' में 'सूक्ति' उत्तम उक्ति या सुन्दर उक्ति को बताया गया है।[3]

'वृहत् हिन्दी कोश' में चमत्कारपूर्ण वाक्य, या सुन्दर उक्ति 'सूक्ति' मानी गई है।[4]

'आदर्श हिन्दी शब्द कोश' में सूक्ति का तात्पर्य युक्ति युक्त-वाक्य, सुन्दर पद वाक्य, आदि बताया गया है।[5]

'भाषा शब्द कोश' के अनुसार सुभाषित या 'सूक्ति' भली-भाँति कहा हुआ, सुन्दर रूप से या रीति से कहा हुआ सुकथित, सुव्यक्त हो।[6]

'हिन्दी विश्व कोश' में सूक्ति से तात्पर्य युक्ति युक्त वाक्य, उत्तम कथन, शोभनोक्ति विशिष्टि, उत्तम रीति से कथित बताया गया है।[7]

'वृहत अंग्रेजी हिन्दी कोश' के अनुसार ऐफोरिज्म (Aphorism) को सूक्ति कहा गया है। इसको ग्रैप्फथेग्म (Apophthegm) भी माना गया है—जिसका तात्पर्य है सूक्ति, सुभाषित, नीति वचन, सूत्र, शिक्षाप्रद वाक्य, संक्षिप्त कथन, सुकथन आदि।[8]

(2) पाश्चात्य शब्द कोषों में 'संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी' में कहा गया है--

Sukti : f. "A good or friendly speechwise saying beautiful verse or stanza, kath."[9]

---

1. भाषा-शब्द कोश : सं० रामशंकर शुक्ल 'रसाल', पृ० 1902।
2. (क) एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका : वॉल्यूम II, पृ० 165।
   (ख) वृहद् अंग्रेजी-हिन्दी कोश :
   डा. हरदेव बाहरी, वाराणसी ज्ञान मण्डल, वोल्यूम I, पृ. 88-89।
3. सं० श्री नवल जी, पृ. 1483।
4. सं० कालिका प्रसाद, पृ. 1521।
5. सं० पं० रामचन्द्र पाठक पृ., 543।
6. सं० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' पृ. 1902।
7. सं० नगेन्द्र वसु, पृ. 382।
8. डॉ० हरदेव बाहरी, वाराणसी, ज्ञान मण्डल, वॉल्यूम I पृ. 88-89।
9. By Sir Monier. Monier Williams, New Edition, P. 1240.

ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी में--Aphorism के विषय में कहा गया है--

"Any principle or precept expressed in few words, a short pithy sentence containing a truth of general import."[1]

'द शार्टर ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी' के अनुसार--

Aphorism; Any principle or precept expressed shortly and pithily a maxim. Maxim expressing some general truth of experience.[2]

'द ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सल डिक्शनरी में--Any principle or precept expressed shortly and pithing, a maxim को बताया गया है ।[3]

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका' में अंग्रेजी शब्द Aphorism जिसे हिन्दी में 'प्रज्ञासूत्र' कहते हैं, की परिभाषा इस प्रकार से दी है--

प्रज्ञासूत्र एक संक्षिप्त सारगर्भित उक्ति है, जिसमें किसी सामान्य सत्य की अभिव्यक्ति होती है, और वह उक्ति इतनी प्रभावशाली होती है कि एक बार सुनने मात्र से उसे विस्मृत करने की सम्भावना नहीं रहती ।[4]

इसके लिए एनसाइक्लोपीडिया में एक उदाहरण दिया गया है, वह इस प्रकार से है—

"Those who are very fat by nature are more exposed to die suddenly than those who are thin."[5]

यह प्राज्ञों की उक्ति है । वस्तुतः प्राज्ञोक्ति प्राज्ञों (विद्वानों) की उक्ति है जो सूक्ति का ही पर्याय है ।

---

1. Edited by James A.N. Murray, Henry Bradley Vol. A-B, P. 384.
2. Prepared by William Little, Revised and edited by C. T. Onions, Third Edition, P. 80.
3. Prepared by William Little. Third Edition Vol. I, A-M. P.80.
4. 'Literally a distinasion or a defination a term used to desenibe a principle expressed tersely in a few telling words or any general truth conveyed in a short and pithy sentence in such a way that when once heard it is unlikely to paes from the memory.'

   Ency. Brit. Vol. II, P. 165.
5. Ency. Brit. Vol. II.

(ग) विभिन्न विद्वानों के मत :

पाश्चात्य विद्वानों ने सूक्ति का पर्याय Aphorism ठहराया है। अंग्रेजी का Aphorism शब्द ग्रीक Aphorismos से निकला है, जिसका अर्थ है 'परिभाषा देना'। Apo का अर्थ है 'से' और Horos का अर्थ है 'सीमा'। इस प्रकार Aphorism का व्युत्पत्तिलभ्यार्थ हुआ 'किसी विचार बिन्दु को सीमाबद्ध करके उसका लक्षण निर्धारित करना अर्थात् उसे निश्चयात्मक रूप देना'।

सुक्ति एक ऐसी संक्षिप्त और सारगर्भित उक्ति है जिसमें किसी सामान्य सत्य की अभिव्यक्ति होती है।

डॉ० शम्भुनाथ सिंह का कथन है--'वह काव्य, जिसमें कवि के जीवन अनुभवों का सार चेतावनी के रूप में अभिव्यक्त होता है, सूक्ति काव्यकार का लक्ष्य पाठक का मनोरंजन करना नहीं, बल्कि उसमें इहलौकिक और पारलौकिक जीवन का परिमार्जन और परिशोधन करना होता है। वह मानव प्रकृति को उसके विभिन्न सामाजिक और आध्यात्मिक सम्बन्धों में समझता-बूझता है। जब उसके मानस में बहुधा किसी सम्बन्ध का एक विशेष कोण सामने आता है तो उसे वह बहुत कुछ निष्कर्षात्मक रूप में सामने रखता है।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य और सूक्ति की परिभाषा करते हुए लिखा है—

'जो उक्ति हृदय में कोई भाव जाग्रत कर दे, वह तो है काव्य; जो उक्ति केवल कथन के ढंग के अनूठेपन, रचना वैचित्र्य, चमत्कार, कवि के श्रम या निपुणता के विचार में ही प्रवृत्त करे, वह है सूक्ति।'[2]

इसका अर्थ यह है कि इन दोनों को शुक्लजी बिलकुल अलग-अलग दो चीजें मानते हैं। तत्त्वतः सुन्दर ढंग से कही गई उक्ति या बात ही सूक्ति या सुभाषित है। ऐसी स्थिति में सूक्ति काव्य हो भी सकती है और नहीं भी।

डॉ० रामस्वरूप शास्त्री 'रसिकेश' के शब्दों में--

'शब्द चमत्कार या अर्थ चमत्कार आदि से उपेत उक्ति को सूक्ति कहते हैं.........सूक्ति जहाँ शब्द चमत्कार के कारण कर्णाहर होती है, वहाँ अर्थ चमत्कार आदि के कारण मस्तिष्क को भी प्रभावित करती है।'[3]

सूक्ति के सम्बन्ध में डॉ० श्यामसुन्दरदास का कथन है--

'सूक्ति या सुभाषित का अर्थ ही अच्छे कथन से है। सूक्ति का प्रधान उद्देश्य उपदेश है। नित्य प्रति के व्यवहार में जिन बातों से लाभ उठाया जा सकता है, उन्हीं

---

1. हिन्दी साहित्य कोश : सं० धीरेन्द्र वर्मा, प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं० 857।
2. 'कविता क्या है?' चिन्तामणि, भाग 1, पृ० सं० 171।
3. हिन्दी में नीति काव्य का विकास : पृ० 18।

बातों को सूक्तिकार एक मार्मिक श्रौर हृदयग्राही ढंग से कहता है जिससे वह जन-साधारण के मन में चुभ जाती है। वह कोई नई बात नहीं कहता। सामान्य अनुभूति के क्षेत्र के सामाजिक, नैतिक, धार्मिक श्रौर कभी-कभी परमार्थिक तथ्यों को ही वह एक नये श्रौर विशेष ढंग से कहता है। दृष्टान्त सूक्तिकार का सबसे बड़ा बल है। यदि उक्ति का बाँकपन तलवार की धार है तो दृष्टान्त तलवार की मूठ है। मूठ पर जितना अधिकार रह सकेगा, प्रहार उतना ही गम्भीर श्रौर मर्मभेदी होगा।[1]

एक उदाहरण देखिए--

हरे चरहिं तापहिं बरे, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ॥

जगत् की स्वार्थपरता का कैसा स्पष्ट चित्र है। जब तक लता-वृक्षादि हरे रहते हैं; वे चरे जाते हैं, जब उन पर फल लगते हैं तब सब लोग उनके फलों को खाते हैं परन्तु जब पेड़ सूख जाते हैं तब उनके उपकार भुला दिए जाते हैं श्रौर लोग उन्हें जलाकर तापने लगते हैं।[2]

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने एक स्थल पर सूक्ति के सम्बन्ध में कहा है कि 'कुछ रचनाएँ ऐसी भी होती हैं जिनमें काव्य तत्त्व की प्रधानता न होकर भी कथनमूलक चमत्कार की प्रधानता होती है, उन्हें हम सूक्ति कहना उचित समझेंगे।'[3]

विधाता की इस मानव सृष्टि में सूक्तियाँ कल्पतरु के समान हैं। इनकी सुविस्तृत सघन छाया में जीवनपथ की थकान को ही दूर करने की शक्ति नहीं है, प्रत्युत भविष्य की दुर्गम यात्रा को सुखपूर्वक समाप्त करने का इनमें अक्षय तथा दैवी सम्बल भी रहता है।

प्रिंसिपल हृदयनारायण का कहना है कि--'यदि वाङ्मय को हम हरितिमा पुञ्ज का रूपक दें तो सूक्तियों को हमें सुवासित पुष्प की संज्ञा देनी पड़ेगी। पुष्प जैसे हमारी घ्राण तथा चाक्षुष शक्तियों को श्राह्लादित करता है, वैसे ही सूक्तियाँ हमारे मन तथा मस्तिष्क को पुलकायमान करती हैं।'

डिजरायली के अनुसार--'ज्ञानियों का ज्ञान श्रौर युगों के अनुभव सूक्तियों द्वारा सुरक्षित रहते हैं।'

एमर्सन का विचार है कि--'किसी सुन्दर वाक्य के निर्माण करने वाले के बाद उसकी बारी श्राती है जो उसका सर्वप्रथम प्रयोग करता है।'[4]

---

1. सतसई सप्तक : (प्रस्तावना से) पृ० सं० 6–8।
2. सतसई सप्तक : (प्रस्तावना से) पृ० 13।
3. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, द्वितीय भाग, पृ० 35।
4. सूक्तिसागर : रमाशंकर गुप्त, पृ० 559–560 पर से उद्धृत।

सुन्दर वाक्य सूक्ति के लिए प्रयोग किया गया है।

जॉनसन के शब्दों में--'सूक्तियाँ सर्वोच्च अभिनन्दन हैं जो तुम किसी लेखक को समर्पित कर सकते हो।'

(Quotation is the highest compliment you can pay to an author.)

प्रत्येक सूक्ति भाषा के विस्तार और उसे चिरस्थायी बनाने में सहयोग देती है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार विभिन्न दृष्टिकोणों के अनुसार सूक्ति के सम्बन्ध में निम्न तथ्य सामने आते हैं :--

1. सूक्ति का प्रमाण सामान्य सत्य है, वह सत्य चाहे शास्त्रसम्मत हो, वेदसम्मत हो, अथवा लोकसम्मत; वह किसी की भी पुष्टि करता हुआ होना चाहिए।

2. वह चमत्कृत कथन युक्त हो। चमत्कृत कथन से तात्पर्य है जिसमें कोई पुरानी बात आश्चर्य के साथ नये रूप में कही जाती हो तथा ऐसा कथन जिसको पढ़कर मानस झंकृत हो उठे—चाहे वह शाब्दिक हो या अर्थपरक।

3. सूक्ति में ज्ञानी के ज्ञान का जो निष्कर्ष निकलता है, वह सुचिंतित होता है और प्रायः उपदेशमूलक नीति वाक्य के रूप में व्यवहृत होता है।

4. किन्हीं स्थलों पर सूक्ति नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का सत्य नहीं मानी जाती।

5. सूक्ति काव्य के विधायक तत्त्वों से निहित व शून्य दोनों ही प्रकार की प्रयोग की जा सकती है, कोई शर्त लागू नहीं होती, लेकिन वही सूक्ति श्रेष्ठतम है जो वाक्य के विधायक तत्त्वों से युक्त होती है।

6. सूक्ति संक्षिप्त, सारगर्भित, सप्राणतायुक्त, चटपटापन लिये हुए होनी चाहिए। वह जीवन के अनुभवों पर आधारित निष्कर्षात्मकता-युक्त होनी चाहिए। वस्तुतः विशेष का सामान्यीकरण रूप सूक्ति में निहित होता है।

7. सूक्ति ज्ञान और चिन्तन के परिपक्व फल के रूप में प्रस्फुटित होती है।

8. नीतिज्ञान, शिक्षा, तत्त्वज्ञान और उच्चादर्श सूक्ति के प्रेरक हेतु हैं।

(आ) सूक्ति और अन्य समानार्थक शब्द

सूक्ति की भाँति ही अन्य शब्द भी 'उक्ति' से व्युत्पन्न हैं, जिनमें प्रमुख 'मर्मोक्ति', 'वक्रोक्ति', 'अतिशयोक्ति' आदि हैं। 'प्राज्ञोक्ति' भी जिसे सूक्ति ही माना गया है, उसी में समाविष्ट है, लेकिन ये सब 'काव्योक्ति' में ही समाविष्ट रहते हैं। अतः प्रमुख रूप से यहाँ (समानार्थक शब्दों में) 'लोकोक्ति' एवं 'काव्योक्ति' का ही विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

सूक्ति श्रौर लोकोक्ति :

लोकोक्ति शब्द 'लोक' श्रौर 'उक्ति' शब्द से मिलकर बना है, जिसका श्रर्थ होता है—जनसाधारण में प्रचलित उक्ति। लोकोक्तियाँ छोटे वाक्य हैं जो जीवन के सुदीर्घ श्रनुभव के श्राधार पर श्रभिव्यक्त हैं।[1] वह एक की वाग्विदग्धता श्रौर श्रनेकों का ज्ञान है। एक प्राचीन श्रांग्ल लेखक लोकोक्ति में सारगर्भित, संक्षिप्त श्रौर सप्राणता या चटपटापन श्रावश्यक मानते हैं।[2] प्रत्येक लोकोक्ति प्रभावशाली ढंग से व्यक्त होती है श्रौर मानवीय श्रनुभवों पर श्राधारित होती है, परन्तु उसको विशाल लोक-मानस का क्षेत्र व्याप्त होना चाहिए।

सूक्ति श्रौर लोकोक्ति दोनों शब्द 'उक्ति' से बने हुए हैं। 'सु' उपसर्ग लगाकर 'सूक्ति' तथा 'लोक' शब्द से लोकोक्ति बना दिया गया है। ये दोनों ही गद्य-पद्य में हो सकती हैं। सूक्ति एवं लोकोक्ति दोनों ही जनता की धरोहर तथा व्यवहार में श्राने वाली वस्तु हैं जिन्हें हम प्रमाणस्वरूप रखते हैं। दोनों में ही 'गागर में सागर' भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इसमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहावत यानि 'लोकोक्ति' को प्राज्ञोक्ति यानी 'सूक्ति' भी माना है। उन्होंने इसकी व्यापक परिभाषा दी है—

वस्तुत: कहावत (proverb) केवल लोकोक्ति नहीं है, वह कई बार प्राज्ञोक्ति भी है। तुलसीदास जी की श्रनेक पंक्तियाँ 'प्राज्ञोति' बन गई हैं। उन्हें लोकोक्ति नहीं कहा जा सकता, वे प्राज्ञोक्तियाँ हैं, जो लोक में साहित्य के माध्यम से प्रचलित हुई हैं।[3]

कहावतें प्रसंग या घटना के दीपक हैं। वे छोटे-छोटे वाक्य हैं जिनका प्रयोग संदर्भानुसार होता है। उनमें ध्वनि की प्रधानता है।[4]

कन्नड़ के प्रसिद्ध लेखक श्री ना कस्तूरी लिखते हैं—'कहावतें मानव जीवन के श्रनुभवों की विकीर्ण चिनगारियाँ हैं। लोगों ने जिन सुखों का श्रनुभव किया हो,

---

1. Proverbe are short sentences drawn from long experience (Ency. Brit. Vol. XVII. P. 44.)
2. Proverb is a short saying, expressing forciably same practic 'truth'. It has been defined as to be the wit of one wisdom of many. An old English writer describes the essentials of a proverb as sense, shortness, and salt or wit. (proverbs from East and West).
3. उद्धृत 'राजस्थानी कहावतें—एक श्रध्ययन' : डॉ. कन्हैयालाल सहल, पृ. 36 से।
4. लोकोक्ति मुक्तावली, 'भूमिका से' पृ. 1।

जिस प्रकाश को देखा हो और जिन घात-प्रतिघातों को सहा हो, उन्हें वे प्रकाश में लाती हैं।[1]

श्री रा. मा. जोशी का मत है––'जब कभी कोई समस्या उत्पन्न हो जाती है, तब इन कहावतों से हमको तुरन्त कोई मार्ग दिखलाई पड़ता है।'[2]

सूक्तियाँ भी इनका प्रतिवाद नहीं। वे भी हमें अन्धकार के क्षणों में प्रकाश-किरण विकीर्ण करती प्रतीत होती हैं। जब वे जनता की जबान पर आ जाती हैं, तो लोकोक्ति के नाम से अभिहित की जाती हैं।

असमानताएँ :

जब किसी विद्वान द्वारा कहा हुआ कथन जनता की जबान पर आ जाए तो वह लोकोक्ति बन जाता है, अन्यथा कथन मात्र ही बना रहेगा। हाँ, वह सूक्ति भले ही बन जाए।

लोकोक्ति का रचयिता समक्ष नजर नहीं आता, जबकि सूक्ति का निर्माता व्यक्ति विशेष होता है और यह ज्ञातव्य रहता है कि यह किस लेखक या कवि द्वारा प्रस्तुत है।

वस्तुतः सूक्ति इकट्ठे किए हुए सिक्के हैं, जबकि लोकोक्तियों को प्रचलित किए हुए सिक्कों के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कच्छी कहावतों के संग्राहक श्री दुलेराय एम. काराजी का यह कथन विशेष महत्त्वपूर्ण है कि 'सूक्ति जहाँ एक दुकान पर चलने वाली हुण्डी है, वहाँ लोकोक्ति एक ऐसा राजमान्य लोक-सिक्का है जो रास्ते चलते बाजार में बेधड़क चाहे जहाँ चलाया जा सकता है'।

सूक्ति यदि प्रचलित न हो तो केवल पुस्तकों की शोभा बढ़ाती है, जबकि लोकोक्तियाँ जनता की जिह्वा पर नृत्य करती हैं।

सूक्ति में ज्ञानी के ज्ञान का जो निष्कर्ष हमें मिलता है, वह सुचिंतित होता है और प्रायः उपदेशमूलक नीति वाक्य के रूप में व्यवहृत होता है, किन्तु लोकोक्ति पांडित्य चिन्तन तथा उपदेशात्मकता को लेकर अग्रसर नहीं होती, वह तो स्वतः प्रसूत होती है और सरस तथा संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त होती है; किन्तु सूक्ति ज्ञान और चिन्तन के परिपक्व फल के रूप में देखी जाती है। नीति शिक्षा, तत्त्व ज्ञान, और उच्चादर्श लोकोक्तियों के प्रेरक हेतु नहीं है। कहीं-कहीं सूक्ति नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का तथ्य नहीं मानी जाती या जा सकती, लोकोक्ति में में यह बात आवश्यक नहीं।

विषय के स्पष्टीकरण हेतु कबीर की यह साखी देखिए––

जो तोकूँ काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तो कू फूल के फूल हैं, वा को हैं तिरसूल।।

---

1. कन्नड़ ग़ादेगलु : स्व. सी. अच्चप्पा—'भूमिका से'।
2. बरेधुवदारि : एम. एम. वृषमेन्द्र स्वामी, पृ. 45।

यह कबीर की एक सूक्ति है जो नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का तथ्य नहीं है। अर्थात् जगत् में इस सूक्ति के अनुसार आचरण करने वाले व्यक्ति बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं।

सूक्ति भौतिक ज्ञान है जबकि लोकोक्ति सांसारिक ज्ञान। सूक्ति परोक्ष चिन्तन है, जबकि लोकोक्ति प्रत्यक्ष अनुभूति।

सूक्ति विशिष्ट मानस (हृदय) में ही बैठ सकती है जबकि लोकोक्ति सबके मानस में बैठ जाती है।

लोकोक्ति में लाक्षणिकता अनिवार्य है उसका प्राण लक्षणा है जबकि सूक्ति में ऐसी कोई शर्त नहीं; जो इस उपकरण से युक्त होगी वही सूक्ति लोकोक्ति की भाँति प्रयुक्त की जाने योग्य बन सकेगी।

सूक्ति और काव्योक्ति :

इन दोनों में उक्ति तत्त्व समान रूप से विद्यमान है; लेकिन काव्य से क्या तात्पर्य है, यह विचारणीय है।

काव्य :

रागतत्त्व और कल्पनातत्त्व के सहज सामंजस्य से जन्य आह्लाद प्रदान करने वाली रचना काव्य मानी गई है। शब्दकोशार्थानुसार यह रचना, विशेषतः पद्यमयी रचना, जिसके द्वारा चित्त किसी रस अथवा मनोवेग से परिपूर्ण हो जाए--वह काव्य माना गया है।

काव्य की परिभाषा विभिन्न विद्वानों के द्वारा विभिन्न प्रकार से की गई है—

कहीं शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्[1] कहा गया है, तो कहीं वाक्यं रसात्मकम् काव्यम्[2] और कहीं रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्[3] कहकर काव्य को सीमाबद्ध कर दिया गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता (काव्य) के रूप को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

'कविता वह साधन है, जिसके द्वारा शेष दृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।'[4]

एक अंग्रेज कवि का यह भाव—"Poetry is the Spontanious overflow of powerful feeling.... ....(and) emotion recalled in tranquility" भी कविता की यही विशेषता प्रकट कर रही है।[5]

---

1. भामह : काव्यालंकार।
2. विश्वनाथ : साहित्यदर्पण।
3. जगन्नाथ : रस गंगाधर।
4. चिन्तामणि, भाग 1, पृ. 141।
5. Wordsworth : Preface to Lyrical Ballads.

एक स्थल पर शुक्लजी ने फिर यह कहा है, "जो उक्ति हृदय में कोई भाव जाग्रत कर दे, वह काव्य है।"[1]—वे नीति दोहों को सूक्ति तथा भक्ति और प्रेम का स्वरूप व्यक्त करने वाले दोहों को काव्य के अन्तर्गत मानते हैं।[2] क्योंकि वहाँ मार्मिकता होती है उनमें कवि का सच्चा हृदय झाँक रहा होता है।

कुछ ऐसा ही भाव 'कविता' के बारे में 'चेम्बर्स एनसाइक्लोपीडिया' में व्यक्त किया गया है।[3]

काव्योक्ति :

काव्योक्ति से तात्पर्य है काव्य की उक्ति अर्थात् जो भी काव्य में कथित है, वह सब काव्य की उक्ति कहा जाएगा। काव्य में वर्णित उपादानों के अन्तर्गत सब प्रकार की उक्तियाँ आती हैं।

यह उक्तियाँ कहीं उपदेश के लिए प्रयुक्त की जाती हैं तो कहीं नीति कथन के रूप में समक्ष जाती हैं। ये कहीं सामान्य कथन, कहीं अन्योक्तिपरक, स्वाभावोक्ति-परक, और अतिशयोक्तिपरक कथन तो कहीं वक्रोक्ति के माध्यम से काव्य में चित्रित की जाती हैं, और की जाती रही हैं। यह सब काव्य-उक्तियाँ ही कहलाती हैं। कई कथन तो इस प्रकार से कह दिए जाते हैं जिन्हें सुनकर या पढ़कर पाठक का मन विभोर हो जाता है, हृदय गदगद् एवं पुलकित हो उठता है, तथा पाठक स्वयं इस तरह का अनुभव करने लगता है जैसा कि कवि ने चित्रित किया है। कवि की अनुभूति ही पाठक की भी अनुभूति बन जाती है, तथा इस प्रकार साधारणीकरण की स्थिति का योग बन जाता है। ऐसे कथन भी काव्य में ही वर्णित होते हैं, और वे काव्योक्ति ही कहलाते हैं।

लेकिन इसके विपरीत जिन कथनों में किन्हीं सामान्य सत्य की व्यंजना निहित हो, जो जीवन निरीक्षण के पश्चात् कवि के मानस पर उभरे हों, या जिन्हें पढ़कर मन झंकृत हो उठे, बुद्धि-विलक्षणता पर पाठक मुग्ध हो पड़े, या जो चेतावनी-

---

1. कविता क्या है ?, चिंतामणि, भाग 1, पृ. 171।
2. गोस्वामी तुलसीदास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ. 71।
3. "That kind of poetry, which aims or seems to aim at instruction as its object, making pleasure entirely subservient to this—In the poems generally called didactic, the information or instruction given in the verse is accompanied with poetic reflection, illustrations and episodes etc."

   चैम्बर्स एनसाइक्लोपीडिया, खण्ड 2, पृ. 546।

स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगे ऐसे—सब कथन सूक्ति की संज्ञा पा जाएँगे, तथा ये भी काव्योक्ति बनने के अधिकारी होंगे।

इन सब में उक्ति या कथन की अनिवार्यता ही होती है। अब वह उक्ति चाहे कैसी भी हो। वस्तुतः उक्ति काव्य की आधारशिला मानी गई है। क्रोचे ने तो उक्ति को ही काव्य माना है, परन्तु भारतीय दृष्टि से भाव प्रधानता और रसात्मकता भी उक्ति के 'काव्य पद वाची होने के' लिए अनिवार्य है।

उक्ति के सम्बन्ध में शुक्लजी ने इस प्रकार से कहा है—

'जो उक्ति हृदय में कोई भाव जाग्रत कर दे' या उसे प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की मार्मिक भावना में लीन कर दे वह तो है काव्य। जो उक्ति केवल कथन के ढंग के अनूठेपन, रचना वैचित्र्य, चमत्कार कवि के श्रम या निपुणता के विचार में ही प्रवृत्त करे, वह है सूक्ति।'[1]

सूक्ति की एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार पुष्टि की गई है—कौवे सवेरा होते ही क्यों चिल्लाने लगते हैं? वे समझते हैं कि सूर्य अन्धकार का नाश करता बढ़ा आ रहा है, कहीं धोखे में हमारा ही नाश न कर दे। यह सूक्ति मात्र है, काव्य नहीं।[2]

यदि किसी उक्ति में रसात्मकता और चमत्कार दोनों ही हों तो प्रधानता का विचार करके सूक्ति या काव्य का निर्णय हो सकता है।

काव्य में जो भी वर्णित विषय आते हैं, वे सब काव्योक्ति कहलाने के अधिकारी हैं। काव्य में जीवन के समस्त व्यापारों की छटा किसी न किसी रूप में अधिक या कम लक्षित की जाती है। कहीं किसी रस को उभार मिलता है तो कहीं किसी को, कहीं कोई गौण रह जाता है। रस और अलंकारों के माध्यम से काव्य-रचना ओत-प्रोत हो जाती है।

प्रत्येक उक्ति किसी न किसी रस एवं अलंकार के माध्यम से प्रभावित करती है। वस्तुतः साधारण से साधारण उक्ति में भी कोई न कोई अलंकार अवश्य विद्यमान रहता है। वाच्यालंकारों में स्पष्टतः प्रधानता उक्ति की ही रहती है परन्तु रूपक, अपह्नुति, वक्रोक्ति, गूढ़ोक्ति, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति, स्वाभावोक्ति, अन्योक्ति, प्रोढ़ोक्ति आदि के सहारे कहे गए कथन भी काव्य के ही अन्तर्गत आते हैं। वे भी काव्योक्ति कहे जा सकते हैं जिनमें वक्रोक्ति की उपादेयता श्रेष्ठकर है। इसके माध्यम से कहा हुआ कथन काव्योक्ति को चार चाँद लगा देता है। वस्तुतः वक्रोक्ति काव्य का जीवन विधायक तत्त्व है, जिसके अभाव में काव्य अपने असली रूप से गिर जाता है और उस चमत्कार से विरहित हो जाता है जो सहृदयों के हृदय सुमन को प्रस्फुटित करता है, अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है, तथा चित्त को आकृष्ट

---

1. 'कविता क्या है?' चिंतामणि भाग 1, पृ. 171।
2. वही, पृ. 152।

कर उसे भव्यता से भर देता है। शब्द-शक्तियाँ भी इसके पीछे नहीं रह जातीं। उनमें लक्षणा मुख्य है। इन शब्द-शक्तियों से युक्त कथन सूक्ति बन भी सकते हैं और नहीं भी। जब वह किसी सामान्य सत्य की अभिव्यंजना करते नजर आते हैं, या दृष्टान्त रूप में कहे जाते हैं, या फिर जीवन के निरीक्षण-जन्य तथ्यों को बड़ी बुद्धि-विलक्षणतायुक्त प्रदर्शित करते हैं, इसके अलावा कहीं नीति का सहारा लेकर व्यक्ति को सजग करते नजर आते हैं--ऐसे सब कथन सूक्ति बन जाते हैं। इनके माध्यम से जीवन के समस्त क्रिया-कलापों की पूर्ण झाँकी नहीं, अपितु जीवन की सार्थकता, क्रिया-कलापों एवं सामान्य सत्यों की झलक दिखाई जाती है जिससे राही चलते-चलते रुककर देखने लग जाता है या ठोकर लगने से पूर्व सँभलने के बाद प्रायश्चित। पर दूसरों को वह चेतावनी अवश्य देता जाता है।

लेकिन जो रसात्मकतायुक्त होते हैं, जिन प्रसंगों में कवि का मन मुग्ध होता झूमता चलता है, वह सब कथन भी काव्य का सहारा तकते हैं। होते तो यह कथन काव्य के अन्तर्गत ही लेकिन इनको हम प्रमाणस्वरूप प्रयोग नहीं कर सकते, या उपदेश देने हेतु नहीं चुन सकते। सिर्फ हृदय को रसात्मकता एवं मुग्धता प्रदान करने के लिए वे यथेष्ट रहते हैं।

ये दोनों ही प्रकार ही उक्तियाँ काव्योक्तियाँ हैं।

वस्तुतः अन्तर सूक्ति और काव्योक्ति में नहीं बल्कि सूक्ति और काव्य में होना चाहिए। क्योंकि काव्योक्तियाँ तो सभी प्रकार की हो सकती हैं। जो काव्य के विधायक तत्त्वों से निहित हैं 'वे भी काव्योक्तियाँ हैं और जो नहीं हैं जैसे 'सूक्ति' वह भी इसके अन्तर्गत आती हैं।

काव्य और सूक्ति :

'काव्योक्ति' को स्पष्ट करने के लिए काव्य और सूक्ति में जो अन्तर है वह समझना अनिवार्य है। काव्य और सूक्ति में अन्तर होने का मुख्य कारण हृदय की प्रधानता एवं बुद्धि-विलक्षणता का होना है। काव्य में संवेदना होती है यानी कि वह संवेदनशील होता है। जबकि सूक्ति में यह आवश्यक नहीं।

काव्य छन्दबद्ध होता है, उसके लिए पद्यात्मकता आवश्यक है। श्रेष्ठ काव्य में रस, अलंकार, छन्द, ताल, तुक, लय, यति, वर्ण, मात्रा आदि का ध्यान रखना वांछनीय है; लेकिन सूक्ति में ऐसी कोई शर्त नहीं। वह गद्य–पद्य, दोनों में ही हो सकती है। वह तो सहजोक्ति है, किसी भी प्रकार कही जा सकती है। यहाँ कवि अपने भाव को स्पष्ट करने के लिए इन उपादानों का सहारा नहीं ताकता। हाँ, इतना अवश्य है—जो सूक्ति इन विधायक तत्त्वों से शून्य होगी वह 'काव्य' बनने की अधिकारिणी नहीं हो सकती।

इसके अलावा अगर काव्य विधायक तत्त्वों से शून्य रहा तो वह श्रेष्ठता की कोटि से गिर जाएगा।

काव्य में हृदय की प्रधानता तथा तादात्म्यता की अधिकता होनी चाहिए। किसी न किसी रस की अनुभूति कराना ही उसका अभीष्ट है; लेकिन सूक्ति में चमत्कारिकता, बुद्धि-विलक्षणता, कहने की अनूठी कला को अधिक महत्त्व दिया गया है। साथ ही वह कथ्य सामान्य सत्य की अभिव्यक्ति करता हुआ हो, और जब वह शब्द चमत्कार के कारण कर्णहर हो वहाँ अर्थ वैचित्र्य से मस्तिष्क को प्रभावित एवं झंकृत भी करे।

काव्य में भावनाओं, कल्पनाओं का राग ज्यादा अलापा जाता है। वहाँ रंग, रूप, स्पर्श, गंध इत्यादि का समावेश किया जाता है, तथा ऐंद्रिक अनुभूति को रंजित किया जाता है, जहाँ अनुभूति की ही अधिकता होती है। लेकिन सूक्तियाँ निरीक्षण पर आधारित होती हैं। वहाँ अपनी लपेट में इन उपकरणों को लेना वांछनीय नहीं।

कविता में पढ़ने के बाद पाठक के मानस में उसका बिम्ब बनता है, तथा वह उसी में खो जाना चाहता है, वहाँ हृदय की उत्तेजना रहती है। सूक्ति में मानस झंकृत हो उठता है। उसमें हृदय को अलग कर सत्य को पकड़ने की कोशिश होती है, **लेकिन कविता का तत्त्व तो रहता ही है, पर यह आवश्यक नहीं है।**

काव्य का प्रयोजन आह्लाद है जबकि सूक्ति कर्त्तव्यों का निदर्शन, कवि की सूक्ष्मता, उसकी बुद्धिपरकता, एवं उक्ति वैचित्र्ता, श्रम, उसके जीवन निरीक्षणों की कसौटी तथा व्यक्त करने की कलात्मकता का निचोड़ है।

इन आधारों पर हम कह सकते हैं कि सहृदय 'पाठक' को आनन्द की अनुभूति कराने वाली शब्द रचना तो है काव्य, लेकिन जो कवि के श्रम निपुणता, उक्ति वैचित्र्य और सामान्य सत्य की व्यंजना पर आधारित हो, जहाँ हृदय पक्ष की अपेक्षा बुद्धि-विलक्षणता वैचित्र्ता हो तो वह सूक्ति बन जाती है।

निष्कर्ष :

'सूक्ति और काव्य' के अन्तर को समझने के पश्चात् अब सूक्ति और काव्योक्ति के परीक्षण का निष्कर्ष इस प्रकार रखा जा सकता है—

वैसे तो दोनों ही एक दूसरे की पूरक हैं, क्योंकि **सूक्ति का वर्णन काव्य के अन्तर्गत किया जाता है,** तथापि जो भी काव्य में वर्णित होता है, वह सब काव्योक्ति कहलाता है।

सूक्ति भी काव्योक्ति है, किन्तु सूक्ति में निम्न वैशिष्ट्य प्रतीत होते हैं—

1. काव्योक्ति में पद्यात्मकता निहित होती है लेकिन सूक्ति गद्य-पद्य दोनों से टकराती चलती है।

2. काव्योक्ति में जहाँ काव्य के अन्तर्गत पाठक किन्हीं स्थलों पर आत्म-विभोर हो उठता है और साधारणीकरण की स्थिति तक पहुँच उठता है, वहाँ सूक्ति में उसका मन उतना रमता नहीं। वहाँ तो सुनकर वह चेतनावस्था में हो जाता है। उसका मन फड़क उठता है और उसे एक मार्ग सूझने लगता है।

कर उसे भव्यता से भर देता है। शब्द-शक्तियाँ भी इसके पीछे नहीं रह जातीं। उनमें लक्षणा मुख्य है। इन शब्द-शक्तियों से युक्त कथन सूक्ति बन भी सकते हैं और नहीं भी। जब वह किसी सामान्य सत्य की अभिव्यंजना करते नजर आते हैं, या दृष्टान्त रूप में कहे जाते हैं, या फिर जीवन के निरीक्षण-जन्य तथ्यों को बड़ी बुद्धि-विलक्षणतायुक्त प्रदर्शित करते हैं, इसके अलावा कहीं नीति का सहारा लेकर व्यक्ति को सजग करते नजर आते हैं--ऐसे सब कथन सूक्ति बन जाते हैं। इनके माध्यम से जीवन के समस्त क्रिया-कलापों की पूर्ण झाँकी नहीं, अपितु जीवन की सार्थकता, क्रिया-कलापों एवं सामान्य सत्यों की झलक दिखाई जाती है जिससे राही चलते-चलते रुककर देखने लग जाता है या ठोकर लगने से पूर्व सँभलने के बाद प्रायश्चित। पर दूसरों को वह चेतावनी अवश्य देता जाता है।

लेकिन जो रसात्मकतायुक्त होते हैं, जिन प्रसंगों में कवि का मन मुग्ध होता झूमता चलता है, वह सब कथन भी काव्य का सहारा तकते हैं। होते तो यह कथन काव्य के अन्तर्गत ही लेकिन इनको हम प्रमाणस्वरूप प्रयोग नहीं कर सकते, या उपदेश देने हेतु नहीं चुन सकते। सिर्फ हृदय को रसात्मकता एवं मुग्धता प्रदान करने के लिए वे यथेष्ट रहते हैं।

ये दोनों ही प्रकार ही उक्तियाँ काव्योक्तियाँ हैं।

वस्तुतः अन्तर सूक्ति और काव्योक्ति में नहीं बल्कि सूक्ति और काव्य में होना चाहिए। क्योंकि काव्योक्तियाँ तो सभी प्रकार की हो सकती हैं। जो काव्य के विधायक तत्त्वों से निहित हैं 'वे भी काव्योक्तियाँ हैं और जो नहीं हैं जैसे 'सूक्ति' वह भी इसके अन्तर्गत आती हैं।

काव्य और सूक्ति :

'काव्योक्ति' को स्पष्ट करने के लिए काव्य और सूक्ति में जो अन्तर है वह समझना अनिवार्य है। काव्य और सूक्ति में अन्तर होने का मुख्य कारण हृदय की प्रधानता एवं बुद्धि-विलक्षणता का होना है। काव्य में संवेदना होती है यानी कि वह संवेदनशील होता है। जबकि सूक्ति में यह आवश्यक नहीं।

काव्य छन्दबद्ध होता है, उसके लिए पद्यात्मकता आवश्यक है। श्रेष्ठ काव्य में रस, अलंकार, छन्द, ताल, तुक, लय, यति, वर्ण, मात्रा आदि का ध्यान रखना वांछनीय है; लेकिन सूक्ति में ऐसी कोई शर्त नहीं। वह गद्य-पद्य, दोनों में ही हो सकती है। वह तो सहजोक्ति है, किसी भी प्रकार कही जा सकती है। यहाँ कवि अपने भाव को स्पष्ट करने के लिए इन उपादानों का सहारा नहीं ताकता। हाँ, इतना अवश्य है--जो सूक्ति इन विधायक तत्त्वों से शून्य होगी वह 'काव्य' बनने की अधिकारिणी नहीं हो सकती।

इसके अलावा अगर काव्य विधायक तत्त्वों से शून्य रहा तो वह श्रेष्ठता की कोटि से गिर जाएगा।

काव्य में हृदय की प्रधानता तथा तादात्म्यता की अधिकता होनी चाहिए। किसी न किसी रस की अनुभूति कराना ही उसका अभीष्ट है; लेकिन सूक्ति में चमत्कारिकता, बुद्धि-विलक्षणता, कहने की अनूठी कला को अधिक महत्त्व दिया गया है। साथ ही वह कथ्य सामान्य सत्य की अभिव्यक्ति करता हुआ हो, और जब वह शब्द चमत्कार के कारण कर्णाहर हो वहाँ अर्थ वैचित्र्य से मस्तिष्क को प्रभावित एवं झंकृत भी करे।

काव्य में भावनाओं, कल्पनाओं का राग ज्यादा अलापा जाता है। वहाँ रंग, रूप, स्पर्श, गंध इत्यादि का समावेश किया जाता है, तथा ऐंद्रिक अनुभूति को रंजित किया जाता है, जहाँ अनुभूति की ही अधिकता होती है। लेकिन सूक्तियाँ निरीक्षण पर आधारित होती हैं। वहाँ अपनी लपेट में इन उपकरणों को लेना वांछनीय नहीं।

कविता में पढ़ने के बाद पाठक के मानस में उसका बिम्ब बनता है, तथा वह उसी में खो जाना चाहता है, वहाँ हृदय की उत्तेजना रहती है। सूक्ति में मानस झंकृत हो उठता है। उसमें हृदय को अलग कर सत्य को पकड़ने की कोशिश होती है, **लेकिन कविता का तत्त्व तो रहता ही है, पर यह आवश्यक नहीं है।**

काव्य का प्रयोजन आह्लाद है जबकि सूक्ति कर्त्तव्यों का निदर्शन, कवि की सूक्ष्मता, उसकी बुद्धिपरकता, एवं उक्ति वैचित्र्ता, श्रम, उसके जीवन निरीक्षणों की कसौटी तथा व्यक्त करने की कलात्मकता का निचोड़ है।

इन आधारों पर हम कह सकते हैं कि सहृदय 'पाठक' को आनन्द की अनुभूति कराने वाली शब्द रचना तो है काव्य, लेकिन जो कवि के श्रम निपुणता, उक्ति वैचित्र्य और सामान्य सत्य की व्यंजना पर आधारित हो, जहाँ हृदय पक्ष की अपेक्षा बुद्धि-विलक्षणता वैचित्र्ता हो तो वह सूक्ति बन जाती है।

निष्कर्ष :

'सूक्ति और काव्य' के अन्तर को समझने के पश्चात् अब सूक्ति और काव्योक्ति के परीक्षण का निष्कर्ष इस प्रकार रखा जा सकता है—

वैसे तो दोनों ही एक दूसरे की पूरक हैं, क्योंकि **सूक्ति का वर्णन काव्य के अन्तर्गत किया जाता है**, तथापि जो भी काव्य में वर्णित होता है, वह सब काव्योक्ति कहलाता है।

सूक्ति भी काव्योक्ति है, किन्तु सूक्ति में निम्न वैशिष्ट्य प्रतीत होते हैं—

1. काव्योक्ति में पद्यात्मकता निहित होती है लेकिन सूक्ति गद्य-पद्य दोनों से टकराती चलती है।

2. काव्योक्ति में जहाँ काव्य के अन्तर्गत पाठक किन्हीं स्थलों पर आत्म-विभोर हो उठता है और साधारणीकरण की स्थिति तक पहुँच उठता है, वहाँ सूक्ति में उसका मन उतना रमता नहीं। वहाँ तो सुनकर वह चेतनावस्था में हो जाता है। उसका मन फड़क उठता है और उसे एक मार्ग सूझने लगता है।

जब व्यक्ति किसी धर्म-संकट में या कसमोकस में पड़ जाता है तब एक सूक्ति के माध्यम से ही उसको प्रकाश मिल जाता है। और वह अपना रास्ता खोज निकालता है।

गोस्वामी जी की यह सूक्ति 'मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं विरंचि सम'[1] या 'फूलई करइ न बेंत जदपि सुधा बरसहिं जलद'[2] इसके सजीव प्रमाण हैं।

उन्होंने एक स्थल पर कहा है—'ऊपर बरसहिं तृन नहिं जामा'[3] ठीक है, ऊसर भूमि पर भला उग भी क्या सकता है—यहाँ सचेत किया गया है कि इनके साथ श्रम करना निष्प्रद है। मेहनत भी वहीं करनी चाहिए जहाँ उसका प्रयोजन सिद्ध हो तथा सार्थक हो।

यह माना जा सकता है कि इस उक्ति में काव्यानन्द होते हुए भी एक उपयोगिता का भाव भी विद्यमान है। इससे पाठक एक अन्य और दृष्टि से भी जुड़ जाता है 'मूरख हृदय न चेत' या 'ऊपर बरषहिं तृन नहीं जामा' इस काव्योक्ति में काव्यानन्द निहित है फिर भी पाठक के लिए विशेष प्रकार से उपयोगी भी है। यह वैशिष्ट्य ही इसको सूक्ति बना देता है।

3. काव्योक्ति काव्यगत सन्दर्भ से ही जुड़ी रहती है, लेकिन सूक्ति को पाठक काव्य के विशिष्ट सन्दर्भ से अलग सामान्य जनजीवन में भी लागू कर सकता है। उसका क्षेत्र व्यापक होता है, तथा वह काव्य-सन्दर्भ से हटकर अनेकों जीवन सन्दर्भों में प्रसारित हो जाती है।

इसका स्पष्टीकरण उपन्यस्त है—
अगर 'सूक्ति' में कर्म के बारे में यह कहा गया है—
करम प्रधान विस्व करि राखा।
'जो जस करइ सो तस फल चाखा।'[4]

यह जिस सन्दर्भ में कवि ने प्रस्तुत किया है इससे अलग सन्दर्भ भी पाठक के मानस में उभर सकता है, अनेकों सम्बन्धों से जुड़ा रह सकता है।

पाठक कवि के इस कथन पर विचार करेगा कि ऐसा क्योंकर कहा गया, इसके पीछे कौनसा इतिहास है। तब उसको 'तस फल चाखा' खटकेगा और उसके समक्ष करणीय-अकरणीय कर्मों की सूची आ धमकेगी। फिर बुद्धि प्रवृत्तिनुसार उसको कर्म करने की प्रेरणा दे उठेगी।

---

1. रा. च. मा., लंका. का. दो. 16 'ख'।
2. वही।
3. रा. च. मा., कि. का. दो. 15।
4. वही अयो. का. दो. 219।

इस प्रकार वह जिस प्रकृति-युक्त होगा वैसे ही क्रियान्वित कर उठेगा । अगर प्रवृत्ति को बदलने की चेष्टा भी की जाए तो व्यर्थ है । क्योंकि वह उसका व्यसनी हो गया है । इस तथ्य की पुष्टि कौवे के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट की गई है—

वायस पलि अहि अति अनुरागा ।
होंहि निरामिष कबहुक कागा ।।[1]

यह देखने में भी आता है कि कौवे को कितना ही दुलार से पालो, वह मास भक्षण या भक्ष्याभक्ष्य नहीं छोड़ पाता । कारण, उसका प्रवृत्ति-दोष है ।

ये सब सूक्तियाँ व्यंजित करती हैं कि इसके पीछे कवि का सूक्ष्म निरीक्षण काम कर रहा है । वह जैसा-जैसा जगत में देखता जा रहा है, निज अनुभवानुसार उसको इंगित भी करता है तथा साथ ही चेतावनी भी देता चल रहा है और यह पाठक के जीवन में अनेक मोड़ों पर गुजरती जाती है ।

अब काव्योक्ति का उदाहरण देखिए—

राम वन-गमन के समय जब राम सीता को साथ न ले जाने की युक्तियाँ बार-बार देते हैं तो उस समय राम को निरुत्तर कर देने वाली सीताजी की यह उक्ति देखिए,जो कितनी मार्मिक बन पड़ी है—

मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू ।
तुमहि उचित तप मो कहँ भोगू ।।[2]

यहाँ कथन की वक्रता बड़ी सराहनीय बन पड़ी है ।

रहीम का यह दोहा वक्रोक्ति के कारण ही इतना मंजुल तथा चित्त में चुभने वाला बन गया है । देखिए—

मनसिज माली की उपज, कहि रहीम ना जाय ।
फल स्यामा के उर लगे, फूल स्याम दृग आय ।।[3]

रहीम का यह दोहा सूक्ति-काव्योक्ति का अच्छा उदाहरण बन पड़ा है । चमत्कारिकता की योजना बड़ी अपूर्व है ।

कामदेव नामक माली की अद्भुत कला का वर्णन हर कोई नहीं कर पाता । यहाँ राधिका जी के उर में तो फल उगते हैं और उन्हें देखकर श्रीकृष्ण के नेत्रों में फूल लग जाते हैं । जगत् का नियम है कि पहले फूल लगता है, उसके बाद फल उत्पन्न होता है । वह भी उसी स्थान पर, लेकिन यहाँ विलक्षण चमत्कार है, राधा के शरीर में युवावस्था की सुषमा अपने चरम उत्कर्ष पर है । उसके शरीर में उरोजों के निकलने को कवि ने फल का लग आना माना है जिनके अवलोकन से कृष्ण के दृग फूल आये अर्थात् आनन्द से पूर्ण हो गए ।

1. रा. च. मा., बाल. का., दो. 5 ।
2. रा. च. मा., अयो. का., दो. 67 ।
3. कविता कौमुदी, दो. 66, पृ. 366 ।

यहाँ फूल तथा फल के स्वाभाविक क्रम का व्यतिक्रम लक्षित होता है, और वह भी भिन्न स्थानों पर। कहने का ढंग कितना विचित्र तथा मन को झंकृत कर देने वाला है।

यहाँ चमत्कार तो है लेकिन उतना स्फूर्तिदायक नहीं जितना सूक्ति में मिलता है। इसके अलावा किसी नीति सामान्य सत्य की व्यंजना एवं चटपटीलेपन की सुर्खी यहाँ नहीं है जो कि सूक्ति में निहित होती है। फिर भी, सूक्ति काव्योक्ति में ही समाविष्ट रहती है। **काव्योक्ति से सूक्ति को अलग रख, परीक्षण करना शक्य नहीं।**

(इ) भारतीय साहित्य में सूक्ति–प्रयोग तथा परम्परा

प्रयोग और परम्परा :

सर्वप्रथम हम प्रयोग को लेते हैं। प्रयोग से अभिप्राय है––प्राचीन वस्तु को नये-नये रूपों में प्रस्तुत करना।

प्रयोग जब बहुग्राह्य हो उठता है और काल-क्रम में दीर्घ इतिहास खड़ा कर लेता है, तो वही परम्पराबद्ध हो जाता है। प्रयोग और परम्परा में वही अन्तर है जो बिन्दु और रेखा में है। बिन्दु एक प्रकार से प्रयोग है और परम्परा—रेखा।

साहित्य में यह प्रयोग या बिन्दु क्या है ? हम सभी जानते हैं कि प्रयोग और परम्परा की अवस्थिति मानव की प्रत्येक अभिव्यक्ति के क्षेत्र में मिलती है, वह चाहे कला का क्षेत्र हो, चाहे विज्ञान का या अन्य कोई। अतः साहित्यिक प्रयोग को भी अन्य क्षेत्रों के प्रयोग के समान ही मानना होगा। तब 'प्रयोग' की सीधी परिभाषा यही होगी कि यह अभिव्यक्ति का प्रथम सार्थक उद्रेक है।........मूलतः प्रयोग और परम्परा में कोई विरोध नहीं। 'प्रयोग' ही दीर्घकाल की आवृत्ति से परम्परा में परिणत हो जाता है।[1]

साहित्य में प्रयोग :

हिन्दी साहित्य के आरम्भ से पूर्व भारत में एक ऐसे विशाल और भव्य वाङ्मय की सृष्टि हो चुकी थी[2], जिसने हिन्दी साहित्य को भाव, भाषा, रस, छन्द, अलंकार आदि की दृष्टि से पर्याप्त प्रभावित किया। वह साहित्य वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश इन पाँच भाषाओं में लिखा गया था। चूँकि उसके सूक्ति

---

1. डॉ. सत्येन्द्र; परम्परा तथा प्रयोग का दर्शन।
डॉ. गोपालदत्त सारस्वत : आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग, पृ. 1, से उद्धृत।
2. वेदों में सबसे पुराना और महत्त्वपूर्ण 'ऋग्वेद' है। इसमें कहीं-कहीं कुछ नीतिपरक बातें या सूक्तियाँ मिल जाती हैं। इसका आशय यह है कि भारतीय साहित्य के उस आदि ग्रंथ में नीतिपूर्ण सूक्तियों का प्रारम्भ हो गया था। डॉ. भोलानाथ तिवारी : हिन्दी नीति काव्य, पृ. 26–27।

सम्बन्धी काव्य ने हिन्दी साहित्य को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित किया है, इस कारण इस पर कुछ प्रकाश डालना वांछनीय हो गया है ।

यह विवेचन हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर प्रस्तुत कर सकते हैं––

(क) संस्कृत साहित्य में सूक्ति प्रयोग ।

(ख) प्राकृत साहित्य में सूक्ति प्रयोग ।

(ग) पालि साहित्य में सूक्ति प्रयोग ।

(घ) अपभ्रंश साहित्य में सूक्ति प्रयोग ।

(ङ) हिन्दी साहित्य में सूक्ति प्रयोग ।

(क) संस्कृत साहित्य में सक्ति-प्रयोग :

संस्कृत के प्रमुख ग्रन्थों में सूक्तियों का यत्र-तत्र प्रयोग लक्षित होता है । वेद, पुराण, उपनिषद, अध्यात्म रामायण, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, भागवत पुराण, कालिदास कृत रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, भारवि का किरातार्जुनीय, भट्ट का रावण-वध, माघ का शिशुपाल-वध, अश्वघोष के बुद्धचरित, श्रीहर्ष कृत नैषधीय-चरित इत्यादि में सूक्तियों का प्रयोग बहुतायत से रहा है । इसके अतिरिक्त कवीन्द्र वचन समुच्चय, सुभाषित कौस्तुम, सुभाषित त्रिशती, सुभाषित रत्नाकर, सुभाषित रत्न भाण्डागार, सदुक्ति कर्णामृत (श्रीधरदास), सुभाषितावली (वल्लभदेव), हरिहर सुभाषित (हरिहर), सुभाषित रत्न संदोह (अमितगति), सुभाषितावली (श्रीवर) आदि में भी सूक्तियों का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है ।

वेद चार बताए गए हैं––इनमें सबसे प्राचीन ऋग्वेद माना गया है । इसमें यत्र-तत्र सूक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं; इससे ज्ञात होता है कि उस समय भी सूक्ति-प्रथा प्रचलित थी । मुख्यतः समाज, अर्थ, राजनीति, धर्म, दर्शन, आदि पर अधिक सूक्तियाँ कही गई हैं। कुछ उदाहरण उपन्यस्त हैं—

समैचिद्धस्तौ न सम विविष्टः संमातरा चिन्न सम दुहाते ।
यम योश्चिन्न समा बीर्याणि ज्ञाती चित सन्तौ न सम ।।[1]

अर्थात् दो समान हाथ––समान कार्य नहीं करते, समान समय पर प्रसूता दो गौएँ समान दूध नहीं देतीं । दो जुड़वा बच्चों की शक्ति समान नहीं होती, एक ही परिवार के दो व्यक्ति समान उदार नहीं होते ।

इसी प्रकार यह सूक्ति कितनी मार्मिक बन पड़ी है—

केवलायो भवति केवलादी[2]

(अकेला खाने वाला केवल पाप खाता है)

'अथर्ववेद' में भी सूक्तियों का अच्छा दिग्दर्शन रहा है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1. ऋग्वेद, 10/117/9 ।
2. वही 10/117/6 ।

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणाम श्नाति, यः पूर्वो इति थेर श्नाति
पयश्च वा एष रसं च……… ऊर्जा च वा एष स्फाति च--
प्रजा च वा एष पशन्च --कीर्ति च वा एष यशश्च………
श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणाम श्नातिः पूर्वो ति थेर श्नाति ।[1]

जो व्यक्ति अतिथि के पूर्व भोजन करता है वह उन घरों के इष्ट पूर्त, दूध और रस अन्न और समृद्धि शक्ति, और सन्तति तथा पशु एवं कीर्ति और यश को खा जाता है।

कमाने और खर्च करने के सम्बन्ध में यह कथन देखिए —

शत हस्त समाहर सहस्र हस्त संकिरं ।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फाति समा वह ॥[2]

(सौ हाथों से कमाओ तथा हजार हाथों से दान-पुण्य करो ।)

अपनी-सी स्थिति वालों से आगे निकल जाओ तथा उन्नत लोगों से जा मिलो ।[3] सूक्ति बड़ी प्रेरणाप्रद है ।

पुरुषार्थ के सम्बन्ध में कहा गया इन्द्र का यह कथन कर्म करने की प्रेरणा देता है--

आरते मग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः ।
शेते निपद्यभानस्य चरति चरतो मगः चरैवेति ॥[4]

"बैठे हुए व्यक्ति .का भाग्य बैठा, खड़े होने वाले का खड़ा, सुप्त का सोया, तथा चलने वाले का चलता है । अतः तू भी चल ।

इस सम्बन्ध में यह सूक्ति भी बड़ी प्रेरणास्पद है—

कलिः सयानो भवति, सं जिहानस्तु द्वापरः
उंक्तिष्ठ स्त्रेता भवति, कृतं सम्पद्यते चरन चरैवेति ।[5]

अर्थात् सोया हुआ व्यक्ति कलियुग होता है, निद्रा का त्याग करता हुआ द्वापर, खड़ा होता हुआ त्रेता, तथा चलता हुआ कृतयुग--अतः तू भी चल ।

'अध्यात्म रामायण में भी सूक्तियों का अच्छा चित्रांकन रहा है । वन-गमन पर श्री रामचन्द्र सीता से कहते हैं—

न सदैवत्र संवासः कर्म मार्गानुवर्ति नाम्
यथा प्रवाह पतित प्लवानां सरितां तथा ।[6]

---

1. अथर्ववेद 'तृतीय भाग' 9/6/31-35, पृ. 18 ।
2. अथर्ववेद, तृतीय भाग, 3/24/5 ।
3. वही 2/11/4/5 ।
4. ऐतरेय ब्राह्मण, (आनन्दाश्रम पूना, 1931 ई.), अध्याय 33 खण्ड 3 ।
5. वही ।
6. अध्यात्म रामायण, अयो. का. सर्ग 4, श्लोक 45-46, पृ. 77 ।

'कर्म-बन्धन में बँधे हुए जीवों का सदा एक ही साथ रहना-सहना नहीं हुआ करता—जैसे नदी के प्रवाह में पड़कर बहती हुई डोंगियाँ सदा साथ-साथ नहीं चलतीं।'

मूर्खों को सन्मार्ग पर लाने का अल्प उपाय समुद्र के द्वारा इस प्रकार कहलाया गया है—

दण्ड एव हि मूर्खाणां सन्मार्ग प्रापकः प्रभो
भूतानाम् मर श्रेष्ठ पशूनां लगु ञ्ज यथा ।[1]

अर्थात् पशुओं को जैसे लाठी ठीक-ठीक मार्ग में ले जाती है, उसी प्रकार मूर्ख जीवों के लिए तो दण्ड ही सन्मार्ग पर लाने वाला होता है।

कहीं-कहीं नीति की ओर इंगित करते हुए भी उपदेश दे दिए गए हैं। वशिष्ठजी का यह कथन बड़ा मार्मिक है—

प्रतिज्ञाते परित्यकते धर्मो भवति निष्फलः ।[2]

महाकाव्यों में सबसे प्रचीन 'बाल्मीकि रामायण' है। यों तो इसकी कथा मर्यादा पुरुषोत्तम राम से सम्बन्धित है, अतः आदर्श जीवन, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श सेवक तथा आदर्श राजा की रीति-नीति के सुन्दर रूप इसमें चित्रित हैं; पर इसके अतिरिक्त भी इसमें नीतियों तथा सूक्तियों का अच्छा चित्र उभारा गया है। एक उदाहरण देखिए—

अकुर्वन्तोऽपि पापानि शुचयः पाप संश्रयात् ।
पर पापै विर्नश्यन्ति मत्स्या नाग हृदे यथा ।।[3]

जो पाप नहीं करते वे पापी जनों के संसर्ग से नष्ट हो जाते हैं जैसे सर्प युक्त जलकुण्ड की मछलियाँ सर्पों के संसर्ग से (गरुड़ द्वारा) नष्ट हो जाती हैं।

लोकापवाद के कारण पति द्वारा निर्वासित बिरहणी सीता लक्ष्मण से पति-महत्व इस प्रकार व्यक्त कर रही है—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिवर्न्धुः पति गुर्रुः ।
प्राणै रवि प्रिय तस्माद मर्तुः कार्य विशेषतः ।।[4]

'स्त्री के लिए तो पति ही देवता, बन्धु, एवं गुरु है। इसलिए पत्नी को पति की अभीष्ट सिद्धि के लिए प्राणोत्सर्ग करने में भी नहीं हिचकना चाहिए।'

नारी बल की चर्चा करते समय कुशध्वज की कन्या वेदमती का रावण से यह कथन कितना सटीक प्रतीत होता है।

नहि शक्यः स्त्रिया हन्तु पुरुषः पाप निश्चयः ।[5]

---

1. अध्यात्म रामायण, युद्ध काण्ड, सर्ग 3, श्लोक 77–78, पृ. 263।
2. वही, उत्तरकाण्ड, सर्ग 8, श्लोक 62, पृ. 391।
3. वाल्मीकि रामायण, अर. का. (3) सर्ग 38, श्लोक 26, पृ. 578।
4. वही, उ. का. (7) सर्ग 48, श्लोक 17, पृ. 1576।
5. बाल्मीकि रामायण, उत्तर का. सर्ग 17, श्लोक 32, पृ. 1498।

'स्त्री अपनी शारीरिक शक्ति से किसी पापाचारी पुरुष का वध नहीं कर सकती ।'

'महाभारत' में भी नीति ग्रन्थों की भाँति सामान्य सूक्तियाँ हैं जो प्रसंगवश आ गई हैं। कहीं-कहीं संवाद के रूप में भी हैं। जैसे, एक स्थान पर समुद्र गंगा से पूछता है कि तुम लोग बड़े-बड़े पेड़ों को तो उखाड़ फैंकती हो पर छोटी-छोटी घास ज्यों की त्यों क्यों रह जाती हैं। इस पर गंगा का उत्तर कितना सराहनीय बन पड़ा है; देखिए—'वे पेड़ जो अभिमान से भरे सीधे खड़े रहते हैं, उखड़ जाते हैं; पर घासें प्रवाह के आगे विनीत होकर झुक जाती हैं अतः नहीं उखड़तीं।[1]

यहाँ नीत्यात्मक सूक्ति का कितना सजीव चित्रण किया गया है।

धूमायते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।
धृत राष्ट्रोत्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ।।[2]

'जलती हुई लकड़ियाँ अलग-अलग होने पर धुआँ फैंकती हैं और एक साथ होने पर प्रज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जाति बन्धु भी विघटित होने पर 'दुःख' और संघटित होने पर 'सुख' प्राप्त करते हैं।'

एक और नमूना देखिए—

सज्जन व्यक्ति पच जाने पर अन्न की (निष्कलंकता), यौवन बीत जाने पर स्त्री की, संग्राम जीत लेने पर शूर की और संसार सागर को पार कर लेने पर तपस्वी की प्रशंसा करते हैं।[3]

नीतिगत सूक्ति का एक और उदाहरण देखिए—

मनुष्य आपत्ति से बचाव के लिए धन की रक्षा करे, और धन के द्वारा पत्नी की रक्षा करे, तथा स्त्री और धन के द्वारा सदा अपनी रक्षा करे।[4]

यहाँ व्यासजी ने आवृत्ति दीपक की सहायता से इसे सूक्ति कोटि में रख दिया है।

इस प्रकार यत्र तत्र नीति सूंक्ति सुमन छिटके पड़े हैं।[5]

'पद्मपुराण में स्त्री में आसक्त विषय-भोगों में ही रत व्यक्तियों के बारे में कहा गया है—

मधु दिग्धासिधाराया लेहने की दशां सुरवम् ।
रसन प्रत्युतायाति शतधा यत्र खण्डनम् ।।[6]

---

1. विंटर नित्स : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर भाग 1, पृ. 407।
2. महाभारतम्, उद्योग पर्व 'प्रजागर वर्ग' 36/60, पृ. 2153।
3. महाभारतम्, उद्योग पर्व, 25/69, पृ. 2147।
4. महाभारतम्, उद्योग पर्व, 'प्रजागर वर्ग' 37/18, पृ. 2156।
5. वही, 35/58, पृ. 2147।
6. पद्मपुराणो, पंचम पर्व, श्लोक 311, पृ. 89।

'शहद लपेटी तलवार की उस धार के चाटने में क्या सुख होता है? जिस पर पड़ते ही जीभ के सैंकड़ों टुकड़े हो जाते हैं।'

यथा हि छर्दितं नान्नं भुज्यते मानुषैः पुनः।
तथा त्यक्तेषु कामेषु न कुर्वन्ति मतिं बुधाः ।।[1]

'जिस प्रकार मनुष्य वमन किए हुए अन्न को फिर नहीं खाते हैं उसी प्रकार विज्ञ जन जिन विषयों का परित्याग कर चुकते हैं फिर उनकी इच्छा नहीं करते।'

रावण का मन्दोदरी दर्शन पर कवि का यह कथन—

नीयन्ते विषयैः प्रायः सत्व वन्तो पि वश्यताम्।[2]

'धैर्यवान् मनुष्य भी प्रायः विषयों के अधीन हो जाते हैं' सत्य की कसौटी पर खरा उतरता प्रतीत हो रहा है।

स्त्रियों को कहीं पर तो जोंक से भी जघन्य कहा गया है और कहीं ब्राह्मण से भी पवित्र।

जलौका कैवलं रक्तमाद दाना तपस्विनी।
प्रमदा सर्वभादत्ते चित्तं वित्तं बलं सुखम् ।।[3]

अजाश्वयो मुर्खं मेध्यं गावो मेध्यस्तु पृष्ठतः।
पादयोर्ब्राह्मण मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वत ।।[4]

'बेचारी जलौका तो केवल रक्त चूसती है परन्तु नारी चित्त, वित्त, बल एवं सुख सभी कुछ छीन लेती है।'

'बकरी तथा घोड़े का मुख पवित्र होता है, गौओं का पृष्ठ भाग, ब्राह्मणों के चरण परन्तु स्त्रियों का तो सर्वांग ही पवित्र होता है।'

जिन विषयों के पीछे संसार पागल बना फिरता है, उनकी दुष्परिणामता बुद्ध इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

गीते ह्रियन्ते हि मृगा वधाय रूपार्थ मग्नी शलभाः पतन्ति।
मत्स्यो गिरत्याय समाभिषार्थी तस्मादनर्थं विषयाः फलन्ति।[5]

'गीतों से आकर्षित होकर मृग मारे जाते हैं, रूप पर मोहित होकर पतंगे अग्नि में दग्ध हो जाते हैं, मांस के लोभ से मछली लौहमय काँटे को निगल कर मर जाती है, इस प्रकार विषयों से तो अनर्थ ही होता है।'

---

1. वही, एकादशम् पर्व, श्लोक 126, पृ. 247।
2. पद्मपुराणे, अष्टम पर्व, श्लोक 73, पृ. 173।
3. पुरानिक वर्डस ऑफ विजडम, सं. कर्मारकर, बम्बई, (1947 ई.) पृ. 1/8।
4. वही, पृ. 2/15
5. अश्वघोष : बुद्धचरित, 11/35।

स्त्रियाँ मीठी वोली से ग्राकृष्ट करती हैं ग्रौर तीक्ष्ण चित्त से प्रहार करती हैं। उनके वचन में मधु रहता है ग्रौर हृदय में हलाहल नामक महा विष।[1]

स्त्रियों की वाणी ग्रौर मन में वैषम्य करने के बाद श्रमण, नंद को उनके मन की दुर्ग्राह्यता का उपदेश इस प्रकार दे रहा है—

प्रदहन्दहनोऽपि गृह्यते, बिशरीरः पवनो पिगृह्यते।
कुपितौ भुजगोऽपि गृह्यते, प्रमदानां तु मनो न गृह्यते ॥[2]

'जलाती हुई ग्रग्नि पकड़ी जा सकती है, शरीर रहित वायु भी पकड़ी जा सकती है, तथा क्रोधित भुजंग को भी पकड़ पाने में सफलता मिल सकती है; लेकिन स्त्रियों का मन नहीं पकड़ा जा सकता।'

हितकारी भोजन ग्रप्रिय ग्रच्छा है न कि स्वादिष्ट भोजन जो कि ग्रहित-कारी हो।[3]

संसार में काठ, डोरी या लोहे का बन्धन उतना दृढ़ नहीं जितना कि चंचल ग्राँखों वाला मुख ग्रौर ललित वाणी।[4]

'कालिदास' ने ग्रपने ग्रन्थों में सूक्तियों का प्रभावकारी उपयोग किया है। सीता स्वीकार करने के पश्चात् श्रीराम की लोक-निन्दा होने लगी, ग्रतः वह दुविधा में पड़ गए कि निष्पाप सीता को छोड़ा जाए या लोकापवाद की उपेक्षा कर दी जाए! ग्रन्त में कालिदास के शब्दों में—

निश्चित्य चानन्यनिवृत्ति वाच्यं, त्यागेन पत्न्याः परिमार्ष्टु मैच्छत।
ग्रपि स्वदेहाति मुतेन्द्रि यार्थाद् यशो धनानां हि यशो गरीयः ॥[6]

'यह निश्चय करके कि इस ग्रपवाद की निवृत्ति ग्रन्य उपाय से ग्रसम्भव है, राम ने पत्नी-परित्याग से ही उसे शान्त करना चाहा, क्योंकि यशस्वी लोग इन्द्रियार्थों का तो कहना ही क्या, स्वशरीर से भी यश को मूल्यवान मानते हैं।'

द्रुम सानुमतां किमन्तरं यार्द वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः[9]

'हवा के चलने पर पेड़ तो चंचल (हिल जाते हैं) हो उठते हैं, लेकिन पर्वत ग्रपने स्थान पर ही स्थिर डटे रहते हैं।'

---

1. सौन्दरानन्द, 'स्त्रीविहन' 8/35, पृ. 98।
2. वही, 8/36, पृ. 98।
3. वही, 'नन्द की दीक्षा' 5/46, पृ. 63।
   ताव दहढ़ बन्धन मस्ति लोके न दाखं तान्तव मादय
   याव दहद बन्धनमेतदेव मुखं चलास्य ललितं च वाक्य।
4. वही, 'नन्द विलाप', 7/14, पृ. 81।
5. रघुवंश, 14/35, पृ. 294।
6. वही, 8/90, पृ. 178।

प्रतिकार विधान मायुष: सति शेषे हि फलाय कल्पते ।[1]

'श्रायु के शेष रहने पर उपाय सफल हुश्रा करता है ।'

मन के बारे में कहा गया है—

मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम ।[2]

'मन दूसरे जन्म की संगति का ज्ञाता होता है ।'

कालिदास की यह सूक्ति लोकोक्ति का रूप पा गई है ।

'एको हि दोषो गुरण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणोष्वि वाक ।[3]

जैसे चन्द्रमा की ज्योति में उसका कलंक छिप जाता है, वैसे ही गुणों के समूह में एक दोष भी छिप जाता है ।'

महापुरुषों की उदारता तथा शरण्यता का वर्णन इस प्रकार व्यक्त किया है—

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिबा भीतमिवान्ध कारम् ।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ।।[4]

'हिमालय अपनी गुफाओं में लीन उस अन्धकार की सूर्य से रक्षा करता है जो मानो डरकर वहाँ श्रा छिपा हो । सचमुच महापुरुष शरण में श्राए नीचों से भी वैसा ही स्नेह करते हैं जैसा सज्जनों से ।'

जब निर्वासित यक्ष मेघ को देखकर उसके द्वारा प्रियतमा को सन्देश भेजने पर उद्यत हो जाता है तब कवि उसकी मनोदशा का वर्णन इस प्रकार व्यक्त करता है—

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघ ।
सन्देशार्थाः क्व पटु करणैः प्राणिभि प्रापणीया ।।
इत्यौत्सुक्याद परिगणयन गुह्य कस्तं ययाचे ।
कामा र्ता हि प्रकृति कृपणश्चे तना चेत नेषु ।।[5]

कहाँ तो धूम, अग्नि, जल और वायु के मिश्रण से निर्मित मेघ और कहाँ सन्देश की वे बातें जिन्हें चतुर जन ही पहुँचा सकते हैं । परन्तु उत्सुकता के कारण इस बात पर विचार न कर यज्ञ मेघ के समक्ष गिड़गिड़ाने लगता है । सच है, काम पीड़ित जनों को यह सुध ही नहीं रहती कि कौन जड़ है और कौन चेतन ।

श्राशा के बारे में यह कथन—

श्राशा बन्धः कुसुमसदृशं प्रायशोह्यङ्गनानां ।
सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।।[6]

---

1. वही, 8/40, पृ. 166 ।
2. वही, 7/15, पृ. 142 ।
3. कुमार संभवे, प्रथम सर्ग : श्लोक 2, पृ. 7 ।
4. वही, श्लोक 12, पृ. 10 ।
5. कालिदास : मेघदूत, पूर्व मेघ 5, पृ. 15 ।
6. कालिदास : पूर्वमेघ, श्लोक 10, पृ. 27 ।

यक्ष का यह कथन भी सत्य प्रतीत हो रहा है—

प्रायः सर्वो भवति करुण वृत्ति रार्द्रान्तरात्मा ।[1]

'प्रायः कोमल हृदय वाले सब लोग करुण पूर्ण चित्त वृत्ति वाले होते हैं।'

भारवि के काव्य में भी सूक्तियों का अच्छा दिग्दर्शन रहा है। हर विषय प नीति उपदेश देते चलना उन्हें अभीष्ट था। यत्र-तत्र ये सूक्तिसुमन छिटके पड़े हैं, कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अपनेयमुदेत मिच्छता तिमिरं रोषमयं धियापुरः ।
अविमिद्य निशाकृतं नमः प्रभया नांशुमता प्युदीयते ।।[2]

उदयभिलाषी पुरुष को चाहिए कि सर्वप्रथम बुद्धि से अज्ञान को मा भगाए। अंशुमाली (सूर्य) भी रात्रिजनित अन्धकार को नष्ट किए बिना उदित नहीं होता।

हितं मनो हारि च दुर्लभं वचः ।[3]

'ऐसा वचन दुर्लभ होता हो जो सुन्दर तथा कल्याणप्रद दोनों ही हो।'

जो मूढ़ मानव कपटियों से कपट व्यवहार नहीं करते, वे पराभव को ही प्राप्त करते हैं। धूर्त लोग ऐसे सरल हृदय लोगों पर अपना विश्वास उत्पन्न कर उन्हें वैसे ही मार डालते हैं, जैसे तीव्र वाण कवच रहित लोगों को।

व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं भवन्ति भायाविपुयेन मायिनः ।
प्रविश्य हि हनन्ति शठास्तथा विधानसं व्रतांगान्निशिताझ्वेषवः ।।[4]

'राग द्वेष से आकृष्ट व्यक्तियों के चित्त महात्माओं के विषय में भी विकृत हो जाते हैं।'[5]

मनुस्मृति में भी सूक्तियों के प्रयोग प्रचुर मात्रा में लक्षित होते हैं जो कि जनता में प्रयुक्त हुए हैं।'

एक स्थल पर नारियों के बारे में कहा गया है—

स्वभावएष नारीणां नराणामिह दूषणम् ।
अतो थन्नि प्रमाद्यंति प्रमदासु विपश्चितः ।।[6]

'अर्थात् पुरुषों को विचलित करना नारियों का स्वभाव है। इसलिए ज्ञानी पुरुष युवती स्त्रियों के सम्बन्ध में कभी नहीं गाफिल होते।

---

1. वही, अथोत्तरमेघ, श्लोक 30, पृ. 224।
2. किरातार्जुनीय, द्वितीय सर्ग, 36।
3. किरातार्जुनीय, प्रथम सर्ग, 4, पृ. 3।
4. वही, 30, पृ. 13।
5. वही, तृतीय सर्ग, 53।
6. मनुस्मृति, अध्याय द्वितीय, श्लोक 213, पृ. 60।

नीतिगत सूक्ति का उदाहरण देखिए—

प्रापदर्थ धनं रक्षेद्दारान रक्षेद्ध नैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारै रपि धनै रपि ।।[1]

'अर्थात् आपत्ति निवृत्ति के लिए धन की, धन के व्यय से स्त्रियों की, स्त्री तथा धन त्याग कर अपने आत्मा की निरन्तर रक्षा करे।'

इसी भाव की अभिव्यक्ति महाभारत 'उद्योग पर्व' में की गई है ।[2]

बड़े लोग सर्वदा महत्त्वाकांक्षी हुआ करते हैं । बलराम के कथन से इस तथ्य की पुष्टि हो रही है—

तृप्तियोगः परेणपि महिम्ना न महात्मानाम् ।
पूर्णश्चन्द्रोदय कांक्षी दृष्टान्तौ त्र महार्णवः ।।[3]

'अर्थात् बड़े व्यक्ति प्रभूत सम्पदा पाकर भी वैसे ही सन्तुष्ट नहीं होते जिस प्रकार विशाल समुद्र जलपूर्ण होता हुआ भी निज वृद्धि के लिए चन्द्रोदय की आकांक्षा करता है ।

दान के बारे में इन्द्र के अनुनय पर नल का यह कथन—

अर्थिने न तृणवद्धन मात्रं किं तु जीवनमपि प्रतिपाद्यम,
एव माह कुशवज्जलदापी द्रव्यदानविधिसक्ति विदग्ध ।[4]

'कुश जल सहित दान दिलाते हुए शास्त्रज्ञ धन दान की विधि इस प्रकार बताते हैं कि याचक के लिए केवल धन ही नहीं, अपितु प्राण भी तृणवत् दे देने चाहिए ।'

जब द्विज वेषधारी इन्द्र ने कर्ण से कवच कुण्डल की याचना की तब सूर्य देवता ने कर्ण को रोकना चाहा । इस पर कर्ण ने यह सूक्ति कही—

दिवसेश ! यः खलु शयः प्रतिकर्तुं ।
घृत लालसो भवति नार्थिषु दैन्यम ।।
प्रतिपादेयत्स तु कथं पुरुषस्य ।
प्रति कूल वर्णनिजनाम पदार्थम् ।।[5]

'हे सूर्य जो शय (हाथ) याचकों की दीनता दूर करने को उत्सुक नहीं होता, वह मनुष्य को अपने नाम के अक्षरों को उलटने से बने पद (यश) को नहीं दिला सकता ।'

---

1. मनुस्मृति, अध्याय सप्तम, श्लोक 213, पृ. 263 ।
2. महाभारत, 'उद्योगपर्व' 37/18, पृ. 2156 'प्रजागर पर्व' ।
3. माघ: शिशुपाल वध, 2/31, पृ. 65 ।
4. श्रीहर्ष : नैषधीय चरित, 5/86 ।
5. चम्पूभारतम् (चौखम्भा विद्या भवन चौक, वाराणसी) पंचम स्तबक पद्य 88, पृ. 340 ।

यक्ष का यह कथन भी सत्य प्रतीत हो रहा है—

प्रायः सर्वो भवति करुण वृत्ति रार्द्रान्तरात्मा ।[1]

'प्रायः कोमल हृदय वाले सब लोग करुण पूर्ण चित्त वृत्ति वाले होते हैं ।'

भारवि के काव्य में भी सूक्तियों का अच्छा दिग्दर्शन रहा है । हर विषय पर नीति उपदेश देते चलना उन्हें अभीष्ट था । यत्र-तत्र ये सूक्तिसुमन छिटके पड़े हैं, कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अपनेयमुदेत मिच्छता तिमिरं रोषमयं धियापुरः ।
अविभिद्य निशाकृतं नमः प्रभया नांशुमता प्युदीयते ।।[2]

उदयभिलाषी पुरुष को चाहिए कि सर्वप्रथम बुद्धि से अज्ञान को मार भगाए । अंशुमाली (सूर्य) भी रात्रिजनित अन्धकार को नष्ट किए बिना उदित नहीं होता ।

हितं मनो हारि च दुर्लभं वचः ।[3]

'ऐसा वचन दुर्लभ होता हो जो सुन्दर तथा कल्याणप्रद दोनों ही हो ।'

जो मूढ़ मानव कपटियों से कपट व्यवहार नहीं करते, वे पराभव को ही प्राप्त करते हैं । धूर्त लोग ऐसे सरल हृदय लोगों पर अपना विश्वास उत्पन्न कर उन्हें वैसे ही मार डालते हैं, जैसे तीव्र वाण कवच रहित लोगों को ।

व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं भवन्ति मायाविपुयेन मायिनः ।
प्रविश्य हि हनन्ति शठास्तथा विधानसं व्रतांगान्निशिताङ्गेवेषवः ।।[4]

'राग द्वेष से आकृष्ट व्यक्तियों के चित्त महात्माओं के विषय में भी विकृत हो जाते हैं ।'[5]

मनुस्मृति में भी सूक्तियों के प्रयोग प्रचुर मात्रा में लक्षित होते हैं जो कि जनता में प्रयुक्त हुए हैं ।'

एक स्थल पर नारियों के बारे में कहा गया है—

स्वभावएष नारीणां नराणामिह दूषणम् ।
अतो थन्नि प्रमाद्यंति प्रमदासु विपश्चितः ।।[6]

'अर्थात् पुरुषों को विचलित करना नारियों का स्वभाव है । इसलिए ज्ञानी पुरुष युवती स्त्रियों के सम्बन्ध में कभी नहीं गाफिल होते ।

---

1. वही, अथोत्तरमेघ, श्लोक 30, पृ. 224 ।
2. किरातार्जुनीय, द्वितीय सर्ग, 36 ।
3. किरातार्जुनीय, प्रथम सर्ग, 4, पृ. 3 ।
4. वही, 30, पृ. 13 ।
5. वही, तृतीय सर्ग, 53 ।
6. मनुस्मृति, अध्याय द्वितीय, श्लोक 213, पृ. 60 ।

नीतिगत सूक्ति का उदाहरण देखिए—

प्रापदर्थं धनं रक्षेद्दारान रक्षेद्ध नैरपि ।
ग्रात्मानं सततं रक्षेद्दारै रपि धनै रपि ।।[1]

'ग्रर्थात् ग्रापत्ति निवृत्ति के लिए धन की, धन के व्यय से स्त्रियों की, स्त्री तथा धन त्याग कर ग्रपने ग्रात्मा की निरन्तर रक्षा करे ।'

इसी भाव की ग्रभिव्यक्ति महाभारत 'उद्योग पर्व' में की गई है ।[2]

बड़े लोग सर्वदा महत्त्वाकांक्षी हुग्रा करते हैं । बलराम के कथन से इस तथ्य की पुष्टि हो रही है—

तृप्तियोगः परेणपि महिम्ना न महात्मानाम् ।
पूर्णश्चन्द्रोदय कांक्षी दृष्टान्तौ त्र महार्णवः ।।[3]

'ग्रर्थात् बड़े व्यक्ति प्रभूत सम्पदा पाकर भी वैसे ही सन्तुष्ट नहीं होते जिस प्रकार विशाल समुद्र जलपूर्ण होता हुग्रा भी निज वृद्धि के लिए चन्द्रोदय की ग्राकांक्षा करता है ।

दान के बारे में इन्द्र के ग्रनुनय पर नल का यह कथन—

ग्रर्थिने न तृणवद्धन मात्रं किं तु जीवनमपि प्रतिपाद्यम,
एव माह कुशवज्जलदापी द्रव्यदानविधिसक्ति विदग्ध ।[4]

'कुश जल सहित दान दिलाते हुए शास्त्रज्ञ धन दान की विधि इस प्रकार बताते हैं कि याचक के लिए केवल धन ही नहीं, ग्रपितु प्राण भी तृणवत् दे देने चाहिए ।'

जब द्विज वेपधारी इन्द्र ने कर्ण से कवच कुण्डल की याचना की तब सूर्य देवता ने कर्ण को रोकना चाहा । इस पर कर्ण ने यह सूक्ति कही—

दिवसेश ! यः खलु शयः प्रतिकर्तुं ।
घृत लालसो भवति नार्थिपु दैन्यम ।।
प्रतिपादेयत्स तु कथं पुरुपस्य ।
प्रति कूल वर्णनिजनाम पदार्थम् ।।[5]

'हे सूर्य जो शय (हाथ) याचकों की दीनता दूर करने को उत्सुक नहीं होता, वह मनुष्य को ग्रपने नाम के ग्रक्षरों को उलटने से बने पद (यश) को नहीं दिला सकता ।'

---

1. मनुस्मृति, ग्रध्याय सप्तम, श्लोक 213, पृ. 263 ।
2. महाभारत, 'उद्योगपर्व' 37/18, पृ. 2156 'प्रजागर पर्व' ।
3. माघः शिशुपाल वध, 2/31, पृ. 65 ।
4. श्रीहर्ष : नैपधीय चरित, 5/86 ।
5. चम्पूभारतम् (चौखम्भा विद्या भवन चौक, वाराणसी) पंचम स्तबक पद्य 88, पृ. 340 ।

याचक के बारे में कही यह सूक्ति द्रष्टव्य है—

न रादु दारा दंभि गम्य लुब्धं न मार्गरण ।
यान्ति खलु प्रकाशम् ।।[1]

याचक यदि उदार के पास आए और बाद में उसे लुब्ध से पाला पड़े तो वह अपनी याचकता को नहीं प्रकाशित करता है ।

इसी प्रकार एक ही वस्तु की अनेक व्यक्ति इच्छा रखते हैं--इस तथ्य की पुष्टि हेतु नारद जी का द्रोपदी पाणिग्रहण के बाद धर्मराज युधिष्ठिर से यह कथन—

एकस्मै स्पृहयालूना मिष्टाय सुधि या मपि ।
करस्थमेव ब्रुवते कलहं निधना वधिम् ।।[2]

सत्य प्रतीत होता है ।

जिस प्रकार 'मेघदूत' में यक्ष मेघ द्वारा अपनी प्रेयसी के पास सन्देशा भेजने को व्यग्र दृष्टिगोचर है उसी प्रकार कामार्त रानी राजीमति भी विक्रम प्रणीत 'नेमिदूत' में समाधिस्थ 'नेमिराज' के पास अपना सन्देश भेजने के लिए पर्वत की शरण में जाती नजर आ रही है, उसकी विनती सुनिए—

शरणागतों की रक्षा करना राजाओं का धर्म है । मैं आपके अधीन हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरी रक्षा करें ।

गुणी के समक्ष हाथ फैलाकर रिक्त हस्त लौट आना श्रेष्ठ है, अपेक्षाकृत अधम से मनोवांछित फल चाहने के ।[3]

एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त करने पर एक शिष्य तो कुशाग्र बुद्धि धारण कर लेता है, दूसरा उससे वंचित रह जाता है। लव कुश को अपनी अपेक्षा अधिक कुशाग्र देखकर अत्रेयी उक्त नीति के सन्दर्भ में वनदेव से इस प्रकार कह रही है--

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जड़े
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्ति करोत्यपहन्ति वा
भवन्ति च पुनर्मूर्यान भेदः फलं प्रति तद्य था
प्रभवति शुचि बिम्ब ग्राहे मणिर्न मृदां चयः ।[4]

'अर्थात् गुरू बुद्धिमान तथा मूर्ख दोनों शिष्यों को एक सी विद्या देता है । न वह एक की ज्ञान शक्ति उत्पन्न करता है, न दूसरे की नष्ट—फिर भी दोनों को जो फल मिलता है, उसमें भारी भेद होता है। सच है बिम्ब ग्रहण में निर्मल रत्न ही समर्थ होता है, मिट्टी का ढेर नहीं ।'

---

1. चम्पूभारतम्, चतुर्थ स्तवक, पद्य 87, पृ. 278 ।
2. चम्पूभारतम्, तृतीय स्तवक, पद्य 12, पृ. 145 ।
3. काव्यमाला, द्वितीय गुच्छक, बम्बई 1932, पृ. 86 ।
4. उत्तररामचरित : 'भवभूति' 2/4, पृ. 155 ।

चाणक्य नीति दर्पण में भी नीतिगत सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं। कुछ उदाहरण देखिए--

कान्ता वियोगः स्वजनापमानो ।
ऋणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा ।।
दरिद्र भावो विषमा सभा च ।
विनाग्नि मे ते प्रदहन्ति कायम् ।।[1]

'स्त्री विरह, स्वजनों से अनादर, शेषकर्ज, दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रता और विषम सभाएँ बिना आग ही शरीर को जलाते हैं।

इसी प्रकार से--

उपाय करने पर दरिद्रता नहीं रहती, जपने वालों को पाप नहीं रहता, मौन होने से कलह नहीं होता, और जागने वाले के निकट भय नहीं आता।

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम् ।
मौने च कलहो नास्ति नास्ति जागरितो भयम् ।।[2]

सीखने योग्य विन्दु देखिए--

सु श्रान्तो हि वहेद्भारं शीतोष्णं न चं पश्यति ।
सन्तुष्टश्चरते नित्यं त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात् ।।[3]

'अति श्रान्त होने पर भी भार वहन करते जाना, सर्दी-गर्मी की उपेक्षा करना तथा सदा सन्तुष्ट रहना --ये तीन गुण गधे से सीखने चाहिए।'

अति विनीत के लिए कहा गया है--

नात्यन्त सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ।।[4]

अत्यन्त सीधा (नम्र स्वभाव) श्लाघ्य नहीं, कारण जितने सीधे वृक्ष हैं वे काटे जाते हैं, टेढ़े खड़े रहते हैं।

यह नीतिपरक सूक्ति कितनी मार्मिक बन पड़ी है। देखिए--

'बुढ़ापे में स्त्री का मरण, बन्धु के हाथ में गया धन और दूसरे के अधीन भोजन—ये तीन पुरुषों के लिए विडम्बना हैं। अर्थात् दुःखदायक होते हैं।'[5]

---

1. चाणक्य नीति दर्पण : अध्याय 2/14, पृ. 13।
2. वही, अध्याय 3/11, पृ. 19।
3. चाणक्य नीति दर्पण, अध्याय 6 श्लोक 21, पृ. 42।
4. वही, अध्याय 7, श्लोक 12, पृ. 47।
5. वही, अध्याय ८, श्लोक 9, पृ. 53।

दर्प दलन ने एक जगह कहा है--

वीरोव श्रोत्र हीनस्य लोला क्षीव विचक्षुपः ।
व्यसोः कुसुम मालेव श्रीः कदर्यस्य निस्फला ।।[1]

'जैसे बहिरे के लिए वीरा, ग्रन्धे के लिए सुन्दरी ग्रौर मृतक के लिए पुष्प-माला व्यर्थ है यानी निष्फल होती है वैसे ही कंजूस के लिए धन ।'

दक्षिरामूर्ति की यह सूक्ति देखिए--

दारिद्रय रोगविवशा ग्रपि चेन्मनुष्याः
संवद्धमेत दखिलं निज कर्म पाशैं ।
संचिन्त्य माक्षि पत दैव महो ति रुष्टाः
किं मिद्यते हि मुकुरो निज वक्त्रदोपात् ।।[2]

ग्रर्थात् 'हे मनुष्यो ! यदि तुम दारिद्र्य ग्रौर रोगों से पीड़ित हो तो भी, यह सोचकर कि यह सब ग्रपने कर्मों का फल है, क्रुद्ध होकर देव को बुरा-भला मत कहो । क्या ग्रपने मुख की कुरूपता के कारण दर्पण तोड़ दिया जाता है ?'

सुभाषित रत्न भाण्डागारम में ग्रनेक कवियों की मार्मिक सूक्तियों का संकलन किया गया है, कुछेक उदाहरण देखिए--

चन्द्रगोमिन् ने शिष्यलेखाधर्म काव्य में एक जगह विष ग्रौर विषय का इस प्रकार ग्रन्तर स्पष्ट किया है--

विषस्य विषयारणं हि दृश्यते महदन्तरम ।
उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरण दपि ।।[3]

'विष ग्रौर विषयों में बहुत ग्रन्तर है । विष तो खाने के बाद ही प्राण हर लेता है, लेकिन विषय स्मरण मात्र से ही मार डालते हैं ।

कवि वसिष्ठात् ने भी मार्मिक सूक्तियों का सृजन कर डाला है । देखिए--

संसार रात्रि दुःस्वप्ने शून्ये देह भये भ्रमे ।
ग्रास्थां चेदनुवध्नामि तन्मूर्खो नास्ति मत्परः ।।[4]

यशसः की भी नीतिपरक सूक्ति का एक उदाहरण देखिए —

पराधीनम् वृथा जन्म परस्त्रीषु वृथा सुखम ।
परगेहे वृथा लक्ष्मीर्विद्या या पुस्तके वृथा ।।[5]

---

1. दर्प दलन : सूक्ति मुक्तावली, 3/51, पृ. 6। ।
2. दक्षिरामूर्ति : लोकोक्ति मुक्तावली, पद्य 57 ।
   निहित काव्य माला गुच्छ ।1, 1933 ई. ।
3. सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, 'सामान्य नीति', प्रकरण 3,
   श्लोक 231, पृ. 164 ।
4. सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, 'शान्त रस निर्देश', प्रकरण 6,
   श्लोक 148, पृ. 389 ।
5. सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, 'सामान्य नीति', प्रकरण 3,
   श्लोक 328, पृ. 166 ।

[illegible]

[illegible] ॥

[illegible] ।

[illegible] ॥[1]

[illegible] देती है, [illegible] जठराग्नि को [illegible] करती है, दरिद्रता सचमुच सबसे बड़ी व्यथा है।[1]

हाथ से आई [illegible] कौड़ियाँ मनुष्य को [illegible] देती है, विद्वानों का तिरस्कार करना सिखा देती है, और स्वजाति का विस्मरण करा देती है।[2]

परिश्रम के बारे में जल्हण ने एक स्थल पर यह सूक्ति कही है—

> सति पुण्यप्रकर्षे पि श्री निर्बन्धः समुद्यमः ।
> किं वणिग्वि पणिक्षिप्ता हन्त्य जीर्णं हरीतकी ॥[3]

'यानी पुण्यों के उदय होने पर भी बिना श्रम के लक्ष्मी प्राप्त नहीं हो जाती। क्या वणिक की दुकान पर पड़ी हरड़ अजीर्ण रोग को दूर कर सकती है ?'

उपर्युक्त कतिपय उद्धरण यह सिद्ध करते हैं कि संस्कृत के महाकाव्यों में प्रतिपादित नीति सूक्तियाँ अपने भाव, विचार, कल्पना—सभी दृष्टियों से सुन्दर बन पड़ी हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जब नीति सूक्तियों का निरूपण कुशल कवियों द्वारा किया जाता है तब वह सत्काव्य कहलाने की सहज ही अधिकारिणी हो जाती हैं।

(ख) प्राकृत साहित्य में सूक्ति प्रयोग :

पालि के पूर्व निम्नलिखित पाँच प्राकृतों में साहित्य-रचना की गई—

(1) महाराष्ट्री

(2) शौरसेनी

(3) अर्द्धमागधी

(4) मागधी

(5) पैशाची।

प्राकृतों में धार्मिक—ऐहिक दोनों प्रकार की रचनाएँ की गई हैं।

सातवाहन (हाल) द्वारा संगृहीत "गाहा सत्तसई" (गाथा सप्तशती) सूक्तियों के लिए अधिकतम श्रेष्ठ ग्रंथ है। इसमें कोई भी बात सीधे उपदेशात्मक ढंग से न कही जाकर उदाहरणों के साथ सूक्त्यात्मक ढंग से कही गई है। वज्जालग्ग में भी

---

1. कलि विडम्बन, पद्य 34, काव्यमाला भाग 5,
(निर्णयसागर) प्रेस, 1908 ई.
2. वही, पद्य 68, काव्यमाला भाग 5।
3. जल्हण, सूक्ति मुक्तावली : श्लोक 16, पृ. 404।

दर्प दलन ने एक जगह कहा है--

वीणेव श्रोत्र हीनस्य लोला क्षीव विचक्षुपः ।
व्यसोः कुसुम मालेव श्रीः कदर्यस्य निस्फला ।।[1]

'जैसे बहिरे के लिए बीणा, अन्धे के लिए सुन्दरी और मृतक के लिए पुष्प-माला व्यर्थ है यानी निष्फल होती है वैसे ही कंजूस के लिए धन ।'

दक्षिणमूर्ति की यह सूक्ति देखिए--

दारिद्रय रोगविवशा अपि चेन्मनुष्याः
संबद्धमेत दखिलं निज कर्म पाशैः ।
संचिन्त्य माक्षि पत दैव महो ति रुष्टाः
किं मिद्यते हि मुकुरो निज वक्त्रदोषात् ।।[2]

अर्थात् 'हे मनुष्यो ! यदि तुम दारिद्र्य और रोगों से पीड़ित हो तो भी, यह सोचकर कि यह सब अपने कर्मों का फल है, क्रुद्ध होकर देव को बुरा-भला मत कहो । क्या अपने मुख की कुरूपता के कारण दर्पण तोड़ दिया जाता है ?'

सुभाषित रत्न भाण्डागारम में अनेक कवियों की मार्मिक सूक्तियों का संकलन किया गया है, कुछेक उदाहरण देखिए--

चन्द्रगोमिन् ने शिष्यलेखाधर्म काव्य में एक जगह विष और विषय का इस प्रकार अन्तर स्पष्ट किया है--

विषस्य विषयाणां हि दृश्यते महदन्तरम ।
उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरण दपि ।।[3]

'विष और विषयों में बहुत अन्तर है । विष तो खाने के बाद ही प्राण हर लेता है, लेकिन विषय स्मरण मात्र से ही मार डालते हैं ।

कवि वसिष्ठात् ने भी मार्मिक सूक्तियों का सृजन कर डाला है । देखिए--

संसार रात्रि दुःस्वप्ने शून्ये देह भये भ्रमे ।
आस्थां चेदनुबध्नामि तन्मूर्खो नास्ति मत्परः ।।[4]

यशसः की भी नीतिपरक सूक्ति का एक उदाहरण देखिए —

पराधीनम् वृथा जन्म परस्त्रीषु वृथा सुखम ।
परगेहे वृथा लक्ष्मीर्विद्या या पुस्तके वृथा ।।[5]

---

1. दर्प दलन : सूक्ति मुक्तावली, 3/51, पृ. 61 ।
2. दक्षिणामूर्ति : लोकोक्ति मुक्तावली, पद्य 57 ।
   निहित काव्य माला गुच्छ 11, 1933 ई. ।
3. सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, 'सामान्य नीति', प्रकरण 3,
   श्लोक 231, पृ. 164 ।
4. सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, 'शान्त रस निर्देश', प्रकरण 6,
   श्लोक 148, पृ. 389 ।
5. सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, 'सामान्य नीति', प्रकरण 3,
   श्लोक 328, पृ. 166 ।

नीलकंठ दीक्षित ने 'कलिविडम्बन' में नीति की व्यंग्यपूर्ण चुभती हुई सूक्तियाँ लिखी हैं। उदाहरण के लिए दरिद्रता के बारे में—

शक्ति करोति संचारे शीतोष्णे मर्षयत्यपि ।
दीपयत्युदरे वह्निं दारिद्रयं परमौषधम् ।।[1]

'घूमने-फिरने की सामर्थ्य देती है, सर्दी-गर्मी सहने की शक्ति प्रदान करती है, जठराग्नि को तीव्र करती है, दरिद्रता सचमुच सबसे बड़ी दवा है।'

हाथ में आई पाँच-छह कौड़ियाँ मनुष्य को शास्त्र पढ़ा देती हैं, विद्वानों का तिरस्कार करना सिखा देती हैं, और स्वजाति का विस्मरण करा देती है।[2]

परिश्रम के बारे में जल्हण ने एक स्थल पर यह सूक्ति कही है—

सति पुण्यप्रकर्षे पि श्री निबंधः समुद्यमः ।
किं वणिग्वि पणिक्षिप्ता हन्त्य जीर्णं हरीतकी ।।[3]

'यानी पुण्यों के उदय होने पर भी बिना श्रम के लक्ष्मी प्राप्त नहीं हो जाती। क्या वणिक की दुकान पर पड़ी हरड़ अजीर्ण रोग को दूर कर सकती है?'

उपर्युक्त कतिपय उद्धरण यह सिद्ध करते हैं कि संस्कृत के महाकव्यों में प्रतिपादित नीति सूक्तियाँ अपने भाव, विचार, कल्पना—सभी दृष्टियों से सुन्दर बन पड़ी हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जब नीति सूक्तियों का निरूपण कुशल कवियों द्वारा किया जाता है तब वह सत्काव्य कहलाने की सहज ही अधिकारिणी हो जाती हैं।

(ख) प्राकृत साहित्य में सूक्ति प्रयोग :

पालि के पूर्व निम्नलिखित पाँच प्राकृतों में साहित्य-रचना की गई—

(1) महाराष्ट्री
(2) शौरसैनी
(3) अर्द्ध मागधी
(4) मागधी
(5) पैशाची।

प्राकृतों में धार्मिक–ऐहिक दोनों प्रकार की रचनाएँ की गई हैं।

सातवाहन (हाल) द्वारा संगृहीत "गाहा सत्तसई" (गाथा सप्तशती) सूक्तियों के लिए अधिकतम श्रेष्ठ ग्रंथ है। इसमें कोई भी बात सीधे उपदेशात्मक ढंग से न कही जाकर उदाहरणों के साथ सूक्त्यात्मक ढंग से कही गई है। वज्जालग्ग में भी

---

1. कलि विडम्बन, पद्य 34, काव्यमाला भाग 5, (निर्णयसागर) प्रेस, 1908 ई.
2. वही, पद्य 68, काव्यमाला भाग 5।
3. जल्हण, सूक्ति मुक्तावली : श्लोक 16, पृ. 404।

यत्र-तत्र सूक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं, जो श्वेताम्बर जैन जयवल्लभ द्वारा संगृहीत की गई हैं। "हाल सत्तसई" में नीति की कई सूक्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। जैसे—कुलीन के सत्य का प्रतिपादन इस प्रकार से किया गया है—

"कुलीन जन का वाग्बंधन लोहे की शृंखलाओं तथा अन्य अनेक प्रकार के पाश बन्धनों से भी अधिक दृढ़ होता है।"[1]

अपना हित करना चाहिए और यथासम्भव पराया भी; परन्तु जहाँ प्रश्न अपने और पराये के हित में चुनाव का आ पड़े, वहाँ अपना ही हित करना चाहिए।[2]

आधुनिक प्राकृत सुभाषित संग्रह[3] तथा सूक्ति सरोज[4] में प्राकृत नीति-सूक्तियों के अनेक सुन्दर निदर्शन उपलब्ध होते हैं।

कृपण जन के सन्दर्भगत कही एक सूक्ति देखिए—

निहणंति धणं धरणीयलं मि इय जणि ऊण किविण।
जण पायालं गन्तव्यं ता गच्छ अग्गठाणं पि॥[5]

कृपण जन भूमि खोदकर उसमें अपनी सम्पत्ति गाड़ देते हैं। मानो उन्हें नरक में जाने का निश्चय होता है इसलिए अपनी सम्पदा पूर्व ही पहुँचाने का आयोजन बना लेते हैं। एक ही वस्तु से भिन्नार्थ लाभ प्राप्त किया जाता है। इस तथ्य की पुष्टि इस सूक्ति के माध्यम से की गई है जो इस प्रकार उपन्यस्त है—

एक्कम्मि जह तलाए घेणुयसप्पेशा पाणियं पीयं।
सप्पे परि णमइ विसं घेणसु खीरं समुब्भवइ॥[6]

तात्पर्य है एक ही सरोवर से गाय और सर्प द्वारा पिया गया पानी सर्प में तो विष बन जाता है और गाय में दूध।

अन्योक्ति के माध्यम से कही गई सूक्ति का एक नमूना देखिए—

सज्जन एवं दुर्जन को इंगित करता हुआ कवि कहता है—

वायस साण खराई निवारिया हु हवन्ति असुइरुइ।
हंसकरि सिंह पमुहा न क्यावि पणुल्लयापि पुणे॥[7]

---

1. डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल : प्राकृत विमर्श (लखनऊ, सं. 2009) चयनिका, पृ. 6/2।
2. वही, पृ. 6/3।
3. सं. प्रो. वी. एम. शाह, 'प्राकृत सुभाषित संग्रह' (नानपुरा सूरत, 1935 ई.)।
4. सं. मुन विनयचन्द्र, प्राकृत सूक्ति सरोज, प्र. धर्मदास जैन मित्र मण्डल, रतलाम, वि. 1996।
5. प्राकृत सुभाषित संग्रह, 393, पृ. 43।
6. प्राकृत सूक्ति सरोज, दानधिकार 3, पृ. 5।
7. प्राकृत सुभाषित संग्रह : पृ. 489।

(कौवा, कुत्ता और गदहा मना करने पर भी गन्दगी की ओर झुकते हैं, जबकि हंस, हाथी और सिंह कहने पर भी उधर नहीं जाते।)

यहाँ प्रकृत्तिदत्त स्वभाव की स्थिरता लक्षित की गई है।

विषयी जनों के बारे में एक स्थल पर कवि कहता है—

उच्छिष्ट्ठं विट्ठं विव परनारि परिहरन्ति सप्पुरिसा।
से वंति सारभे यव्व निंदिया जे दुरायारा ॥[1]

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष तो पर-नारी को जूठन और विष्ठा के समान समझकर उससे दूर रहने का ही प्रयत्न करते हैं लेकिन निंदित दुराचारी लोग उसका कुत्ते के समान सेवन करते हैं।

यहाँ आचार के सन्दर्भगत यह सूक्ति गढ़ी गई है।

प्रत्येक प्रकार की पवित्रता प्रशंसनीय है, लेकिन उन सब में मनःशुद्धि ही सर्वश्रेष्ठ मानी गई है—

सव्वाणंवि सुद्धीसां मण सुद्धी चैव उत्तमा लोए।
आलिंगइ भत्तारम् भावेणन्नेण पूत्रं च ॥[2]

"संसार में सब प्रकार की शुद्धियों में से मन की शुद्धता उत्तम होती है। स्त्री पति का आलिंगन एक भाव से करती है तथा पुत्र का दूसरे से।

क्षमा तथा उदारता के भावों का मिश्रण सज्जनों के स्वभाव में इस प्रकार दिखाया गया है—

अवयार परे वि परे कुंणति उव यार मुत्तमा नूणं।
सुर हेइ चंदण द्रुमो परसुमुहं छिज्जमाणेवि ॥[3]

"उत्तम जन अपने अपकारियों का सदा उपकार ही किया करते हैं। कटता हुआ भी चन्दन वृक्ष काटने वाले कुठार के मुख को सुवासित करता ही है।"

सांसारिक सुखों की अपेक्षा विरक्ति को अधिमान दिया गया है। संसारी और वैरागी मनुष्यों की समानता क्रमशः मिट्टी के गीले और सूखे गोलों से की गई है जिन्हें दीवार पर मारने से गीला तो चिपक जाता है और सूखा अलग गिर पड़ता है। ऐसा कहकर उन काम-कामी जनों को दुर्बुद्धि कहा गया है जो संसार में आसक्त हो जाते हैं।[4]

महाराष्ट्री प्राकृत के प्रख्यात महाकाव्य प्रवरसेन कृत 'रावण वहो' (रावण-वध), वाकपतिराज के 'गउड़ वहो' (गौड़ वध) तथा 'महु मह विअअ' और

---

1. प्राकृत सूक्ति सरोज, 'शीलव्रत', पृ. 29/10।
2 प्राकृत सूक्ति सरोज, 'भाव' पृ. 55/2।
3. वही, 'सज्जन' पृ. 72/1।
4. वही, 'विषय' पृ. 128/12-13।

रामपाणिवाद का 'कंस वहो' आदि हैं—जिनमें प्रसंगवश नीतिगत सूक्तियों की उपलब्धि होती है, जैसे--

ते विरला सप्पुरिसा जे अभणन्ता घड़ेन्ति कज्जा लावे ।
थो अच्चिअते वि दुभाजे अमुणिअ कुसुमणि ग्गमा देन्ति फलम् ।।[1]

'ऐसे सत्पुरुष विरले ही हुआ करते हैं जो कार्य-कलापों को बिना कहे ही कर डालते हैं । जैसे, वे वृक्ष न्यून ही होते हैं, जो कुसुमित हुए बिना ही फलित हो जाते हैं ।

मायावी राम का कटा-सिर देखकर सीताजी से त्रिजटा का यह कथन कितना सारग्राही बन पड़ा है । देखिए--

लताओं का सुरभित पुष्प चुना ही जाता है, चाहे वह उद्यान में हो अथवा वन में ।[2]

रामपाणिवाद की एक सूक्ति उपन्यस्त है--

अवच्चजुगो चिरमक्खदे वि दे
संहृति जं णे पिदरा णि अंतण ।
वदंति सच्चं णिरवच्चदा वरं ।।[3]

"कृष्ण का अक्रूर से यह कथन कि हम दो पुत्र यहाँ स्वस्थ रूप में विद्यमान हैं और हमारे माता-पिता वहाँ घोर यातना सह रहे हैं । इसीलिए तो लोग बुरी सन्तान की अपेक्षा सन्तान के अभाव को उत्तम समझते हैं ।"

महाकवि राजशेखर-णीत 'कर्पूर मञ्जरी' सट्टक आद्योपान्त प्राकृत रचना है । इसमें भी प्रसंगवश नीति की कई मनोहर सूक्तियाँ आ गई हैं । जैसे—

णि सग्ग चंगस्स वि माणु सस्स सोहा समम्मुलदिभूसणेढ्ढि ।
मणीण जच्चाणं वि कचणेण विभूपणे लवमदि का विलच्छी ।।[4]

'सहज सौन्दर्य से युक्त व्यक्ति की भी शोभा भूषणों से वैसे ही बढ़ जाती है जैसे श्रेष्ठ रत्नों की आभा सुवर्णमय आभूषणों में जटित होने से ।'

---

1. प्रवरसेन : सेतुवन्धम् 'दहमुहवहे' (निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1935 ई) आश्वासक 3, पद्य 9, पृ. 69 । (सेतुबन्धम्, रावण वहो का ही संस्कृतानुवाद है)
2. वही, आश्वासक 11, पद्य 119, पृ. 428 ।
3. 'कंसवहो', 'पढ़मो सग्गो' (1) पद्य 12, पृ. 5 । (मोतीलाल बनारसीदास, देहली, बनारस, पटना, डॉ. ए. एन. उपाध्याय के अंग्रेजी अनुवादानुसार) ।
4. कर्पूर मञ्जरी 'जवनि कांतर' 2 पद्य 25 ।

आनन्दवर्धन के 'ध्वान्यालोक' में, भोज के 'सरस्वती कंठाभरणम्' में, हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' तथा उसकी वृक्ति में और अनेक पद्य 'दशरूपक', 'साहित्य दर्पण' तथा 'रस गंगाधर' में भी सूक्ति सुमन यत्र-तत्र छिटके पड़े हैं।

वस्तुतः प्राकृत साहित्य में संस्कृत साहित्य से किसी भी तरह कम सूक्तियाँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं।

सरस्वती कंठाभरणम् का एक उदारहण देखिए—

'हे पुत्रि, सुन्दर धनुष-दण्ड में ही नहीं, मनुष्य में भी यह बात चरितार्थ होती है कि वंश (बांस, सुकुल) से उत्पन्न होने पर जब तक गुण (प्रत्यंचा, सदवृत्त) न हो तब तक टंकार (धनुष-ध्वनि, ख्याति) नहीं होती।[1]

'गाथा सप्तशती' में सज्जन की प्रशंसा करते हुए कहा गया है—

दढ़ रोस कलुसि अस्स वि सुअणस्स मुहाहि विपिपअं कत्तो।
राहु मुहम्मि वि ससिणोकिरण अमअं विअ मुअन्ति ।।[2]

'तीव्र क्रोध से तिलमिलाते हुए भी सज्जन के मुख से अप्रिय वचन कहाँ निकला करते हैं। चांद चाहे राहु के मुख में ही क्यों न पड़ा हो, तो भी उसकी किरणें सुधावृष्टि ही किया करती हैं।'

प्रायः देखने में आता है कि विनम्र एवं उद्धण्ड की कभी भी दोस्ती टिक नहीं सकती; यह एक दूसरे से विपरीत आचरण रखते हैं। एक सूक्ति के माध्यम से यह बात इस प्रकार स्पष्ट की गई है—

चावो सहाव सरलं विच्छिवइ सरं गुणम्मि वि पडन्तम्।
वङस्स उज्जुअस्स अ सम्बन्धो किं चिरं होइ ।।[3]

भावार्थ है कि (धनुष) स्वभाव सरल और गुण (प्रत्यंचा गुण) का आश्रय लेने वाले बाण को भी दूर फेंक देता है। क्या वक्र और सरल व्यक्ति का सम्बन्ध अधिक काल तक ठहर सकता है?

कुलीन के बारे में इस प्रकार कहा गया है—

जीहाइ कुणन्ति पिअं भवन्ति हि अअम्मि णिव्वुइ काड।
पीडिज्जन्ता वि रसं जणन्ति उच्छू कुलीण अ ।।[4]

'कुलीन लोग और ईख जीभ को प्रिय मालुम होते हैं, हृदय में ठंडक पहुँचाते हैं तथा पीड़ित होकर भी रस दिया करते हैं।'

---

1. सरस्वती कंठाभरणन् (निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, शाक 1847)। परिच्छेद 3, वक्रूष्योदाहरणं पद्य 90, पृ. 301–302।
2. गाथा सप्तशती, शतक 4, गाथा 19।
3. वही, शतक 5, गाथा 24।
4. वही, शतक 6, गाथा 41, पृ. 130।

समाज में गुणों का विकास तभी सम्भव है जब उसमें गुणग्राही जन विद्यमान हों—

'सहृदयों द्वारा गृहीत होने पर ही गुणों का उद्भव होता है। कमल वस्तुतः कमल तभी बनते हैं जब सूर्य की रश्मियाँ उन्हें अनुगृहीत करती हैं अन्यथा नहीं।'[1]

इसी प्रकार से यह सूक्ति भी द्रष्टव्य है, देखिए—

चन्दमग्र हेहि निसा, रालिणी कमलेहि कुसुम गुच्छेहि लया।
हंसेहिं सरयसोहा कव्वकहा सज्जणेहि की रई गुरुई॥[2]

चन्द्र की किरणों से, रात्रि का, कमलों से तरंगिणी का, पुष्प स्तवकों से वल्ली का, हंसों से शरदृऋतु की छटा का तथा सज्जनों से काव्य-कथा का गौरव बढ़ जाता है।'

(ग) पालि साहित्य में सूक्ति-प्रयोग :

संस्कृत काव्य की तरह पालि साहित्य में भी सूक्तियों को स्थान दिया गया है। पालि साहित्य का 99 प्रतिशत भाग बुद्ध वचन संग्रह तथा उसकी व्याख्या मात्र है। अभिधम्म पिटक में दार्शनिक सिद्धान्त हैं तो विनय-पिटक में भिक्षुचर्या। हाँ सुत्त पिटक के धम्मपद, सुत्तनिपात और सिगाल सुत्तं आदि कुछ ग्रंथों में पर्याप्त नीति काव्य पाया जाता है जिनमें यत्र-तत्र सूक्ति-सुमन भी छिटके पड़े हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्स योजनं।
दीघो बालानं संसारो सद्धम्भं अविजानतं॥[3]

"जागते के लिए रात लम्बी होती है, थके हुए के लिए योजन लम्बा होता है, सच्चे धर्म को न जानने वाले मूढ़ों के लिए संसार 'आवागमन' लम्बा है।"

मित्रता के बारे में यह सूक्ति गढ़ डाली——

'यदि विचरण करते अपने अनुरूप भले मानुष को न पाये, तो दृढ़ता के साथ अकेला ही विचरण करे, मूढ़ से मित्रता नहीं निभ सकती।'[4]

स्त्रियों क्रूरता तथा चंचलता का वर्णन 'कुणाल-जातक' में इस प्रकार से किया गया है——

---

1. हेमचन्द्र काव्यानुशासन (प्र. महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, 1938 ई.) पृ. 209/235।
2. वही, पृ. 355/551।
3. धम्मपदं 'बालवग्गो' गाथा 1, पृ. 28 (राहुल सांकृत्यायन)।
4. वही, गाथा 2, पृ. 29।

'स्त्रियाँ अपने शिकार को ज्वालवत हड़प जाती हैं और बाढ़ के समान सब कुछ बहाकर ले जाती हैं। वे महामारियों और काँटों के समान होती हैं तथा धन के लिए प्रायः पथ-भ्रष्ट हो जाती हैं।'[1]

सज्जनों से प्राप्त यश पुष्पों की सुगन्ध से भी कहीं अधिक व्यापक है—

न पुप्फगन्धो पटि वातमेति, न चंदन तगर मल्लिवा।
सतच गन्धो पटिवात मेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति ।।[2]

'पुष्प, चंदन, तगर या चमेली में से किसी की भी सुगन्ध वायु के विपरीत नहीं जाती, परन्तु सन्तों का यश पवन के प्रतिकूल भी प्रसूत होता है। सज्जनों का यश सब दिशाओं में व्याप्त हो जाता है। तगर, चन्दन, पुष्प की गन्ध जो फैलती है वह अल्प देर तक ही रहती है लेकिन शीलवानों की गन्ध (सुयश) देवलोक तक विचरण करती है।

संसार की क्षण-भंगुरता तथा जरामरण की प्रबलता के बारे में एक स्थल पर यह सूक्ति कही गई है—

'जैसे ग्वाला लाठी से गौओं को चरागाह में ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को ले जाती है।[3]

मूर्ख के लिए एक स्थल पर कहा गया है—

'मूर्ख यदि जन्मभर भी विद्वान् की सेवा करे तो भी धर्म के ज्ञान से वैसे ही शून्य रहता है जैसे करछी सूप के स्वाद से। यदि विज्ञ पुरुष एक मुहूर्त भी पण्डित की सेवा में रहे तो वह शीघ्र ही धर्म को जान लेता है, जैसे जिह्वा दाल के रस को।'[4]

अपना दोष देखना कठिन है, वह (पुरुष) दूसरों के ही दोषों को भुस की भाँति उड़ाता फिरता है, किन्तु अपने को वैसे ही ढाकता है जैसे शठ जुआरी से पासे को या बहेलिया शाखाओं से अपने शरीर को।[5]

सिगाल जातक में एक गाथा है—

असं मोविखत कम्मत्तं तुरतामि निपातितं।
सानि कम्मानि पप्पेन्ति उण्हं वज्फोहितं मुखे ।।[6]

---

1. विंटरनिट्ज़ : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर, खण्ड 2, पृ. 141।
2 धम्मपद (राहुल सांकृत्यायन) पुप्फकवग्गो, गाथा 11,13, पृ. 25-26।
3. धम्मपद, 'दण्डवग्गो', गाथा 7, पृ. 62।
4. वही, 'बालवग्गो', गाथा 5-6, पृ. 30।
5. वही, 'मलवग्गो', गाथा 18, पृ. 113।
6. श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग जातक, 1, पृ. 147।

'अर्थात् जो अदमी बिना सोच-विचार कर जल्दबाजी में कार्य किया करता है, उसके वे कार्य उसे वैसे ही तपाते हैं (दुःखित करते हैं) जिस प्रकार मुँह में डाला हुआ अत्यन्त गर्म भोजन ।'

'जैसी करनी वैसी भरनी' बात की पुष्टि इस प्रकार से एक सूक्ति द्वारा कही गई है । देखिए--

जो दोष रहित शुद्ध निर्मल पुरुष को दोष लगता है उसी मूर्ख को उसका पाप लौट कर लगा करता है । जैसे कि सूक्ष्म धूलि को हवा के आने के रुख पर फैंकने से वह फैंकने वाले पर ही जाकर पड़ता है ।[1]

जिस व्यक्ति पर मन ठहर जाता है, अथवा चित्त प्रसन्न होता है, उसे पूर्व न जानने पर भी उसमें विश्वास कर लिया जाता है ।[2]

(घ) अपभ्रंश साहित्य में सूक्ति-प्रयोग :

अपभ्रन्श भाषा हिन्दी की जननी मानी गई है । चिरकाल तक इसका अध्ययन उपेक्षित रहा, परन्तु अब इसका साहित्य प्रकाशन की ओर उन्मुख हो रहा है । उपलब्ध अपभ्रन्श साहित्य को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है ।

(1) धार्मिक साहित्य

(2) ऐहिक साहित्य

दोनों प्रकार के साहित्य में सूक्तियों का व्यापक प्रयोग हुआ है । कुछ उदाहरण देखिए --

कार्य की शोभा उसकी सफल सम्पन्नता पर ही निर्भर है, इस तथ्य का उल्लेख पुष्पदंत के शब्दों में इस प्रकार किया गया है ।

सोहइ पाउसु सास-समिद्धए । सोहइ विहडस परियरण रिद्धिए ।
सोहई माणुसु गुण सम्पत्तिएं । सोहई कजारम्भु समात्तिए ।। [3]

'वर्षा ऋतु की शोभा सस्यों की समृद्धि से, वैभव की भव्यता निज परिजनों की ऋद्धि से, मनुष्य की शोभा गुण-रूपी सम्पदा से और कार्यारम्भ की शोभा उसकी सफल समाप्ति से होती है ।'

किन्हीं स्थलों पर तो कथन अपने चमत्कार के कारण मन को प्रभावित किए बिना नहीं रहता ।

---

1. धम्मपद, 'पापवग्गो', गाथा 10, पृ. 58 ।
2. यस्मि मनो निविसति चित्तं वापि पसीदति ।
   अदिटठ पुब्बके पोसे कामं तस्मिम्पि विस्ससे ।।
   श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन, 'साकेत जातक' जातक 68, पृ. 402 ।
3. आदि पुराण, पृ. 407 'सोहै' : हिन्दी काव्य धारा
   (राहुल सांकृत्यायन) पृ. 232, 'दसवीं सदी' ।

पहु ! अप्पह नरिदांणं दुम्मंती दूसए गा कलावं ।
एक्कं पि तु विरण ए वीयं नासेइ गुलभारं ।।[1]

'हे प्रभो ! कुमंत्री राजा के गुण समूह को ऐसे दूषित कर देता है जैसे तुम्बिनी का एक ही बीज सारे लता गुल्म को ढांप लेता है ।'

जो इन्दु (योगीन्दु) का परमात्म-प्रकाश और योगसार, मुनि रामसिंह का पाहुड़दोहा सुप्रभाचार्य का वैराग्य सार देवसेन के सावयधम्म दोहा सूक्तियों की दृष्टि से उत्तम मुक्तक काव्य है । सावयधम्मदोहा में तो गुरु, जुआ, दया, चोरी, कर्म का फल, दान, पाप, सन्तोष इत्यादि विषयों पर बड़ी ही सुन्दर सूक्तियाँ कही गई हैं ।[2]

दान के विषय में कवि का कथन है--

जं दिज्जइ तं पाविग्रइ एउ ण वयण विसुद्ध ।
गाई पइण्णइ खड मुसइं किण पयच्छइ दुद्ध ।।[3]

क्या यह बात सत्य नहीं है कि जो दिया जाता है वही प्राप्त होता है ? गाय को खाली भूसा खिलाने पर क्या वह दूध नहीं देती ?

इस कथ्य से सिद्ध होता है कि कर्म का फल अवश्य मिलता है । क्रिया प्रतिक्रिया का संग है । प्रत्येक कार्य का परिणाम समक्ष अवश्य आता है ।

'नीतिगत' सूक्तियाँ भी अनूठी बन पड़ी हैं । देखिए--

'कीर्तिलता' में विद्यापति ने एक स्थल पर पुरुष की सार्थकता पुरुषत्व पर बताई है, केवल जन्म-मात्र से ही पुरुष पुरुष नहीं होता ।

पुरिसत्तणेन पुरिसग्रो नहि पुरिसग्रो जम्ममतेन ।
जल दानेन हु जलग्रो नहु जलग्रो पुं जि ग्रो घूमो ।।[4]

'पुरुषत्व से ही पुरुष की सार्थकता है, जन्ममात्र से पुरुष--पुरुष नहीं बनता । जलदान से ही मेघ जलद कहलाता है, पुंजित धुंए को जलद नहीं कहते ।'

'इसी प्रकार पुरुष वही है जो मानवान है, जिनमें धनोपार्जन की शक्ति है, शेष तो पुच्छहीन पशु ही है, आकार पुरुष का हुआ तो क्या ।'[5]

---

1. अपभ्रन्श साहित्य पृ. 338, (अपभ्रन्श रूपक काव्य 53) ।
2. नामवरसिंह : सावय धम्मदोहा : हिन्दी के विकास में अपभ्रन्श का योग दान (प्रयाग 1954) पृ. 92 ।
3. वही, पृ, 326/17 ।
4. डॉ. बाबूराम सक्सेना : कीर्तिलता (प्र. इण्डियन प्रेस, प्रयाग, 1986 वि) पृ. 6 ।
5. वही, पृ. 6 ।

धर्मपरक सूक्ति के बारे में योगीन्दु का यह कथन —

सत्य पढंतुपि होइ जडु जो ण हणेइ वियप्पु ।
देहि वसंतुवि णिम्मलउ, णदि मण्णइ परमप्पु ।।[1]

'जो मनुष्य मन के विकल्पों का नाश नहीं करता तथा शरीर में वर्तमान निर्मल आत्मा को परमात्मा नहीं मानता, वह शास्त्र पढ़ता हुआ भी मूर्ख है ।' कितना हृदयग्राही बन पड़ा है ।

'अपभ्रन्श कालीन कवियों की सूक्तियों में यथास्थान और यथावसर प्रसाद, ओज तथा माधुर्य भी लक्षित होते हैं ।

निम्नलिखित पद्य में नीति तथा शृंगार का कल्पना प्रधान मिश्रण द्रष्टव्य है :

फोडेंति जे हियडइ अप्पणउ ताहं पराई कवण घृण ।
रक्खेज्जहु लो अहो अपपण बालहे जाया विपमथण ।।[2]

निर्वेद, श्रद्ध तथा हास्य का मिश्रण निम्नोद्धृत दोहे में अवलोकनीय है—

संता विसय जु परि हरइ वलि किज्जऊं हऊं तासु ।
जो दइपेण जि मुंडियउ सीस खडिल्लउ जासु ।।[3]

जो विद्यमान भोगों को त्याग सकता है मैं उस पर बलि-बलि जाता हूँ । जिसका सिर दैव ने ही गंजा बना दिया है, उसे मुण्डी बनने का श्रेय कहाँ ।

कहीं नीति की एक ही बात को हृदयंगम कराने के लिए ऐसे अनेक सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किए गए हैं जिनके कई नैतिक उपदेश स्वतः एवं हृदयांकित हो जाते हैं । जैसे—

'मोह रूपी धूलि से अन्धे हुए व्यक्ति को धर्मोपदेश ऐसे ही व्यर्थ है जैसे कन्जूस के लिए संगृहीत धन, स्नेह रहित के लिए सुन्दरी संयोग तथा अपात्र को दिया हुआ दान ।'[4]

---

1. योगीन्दु : परमात्मा प्रकाश, पंथ-पोथी पत्राकी निन्दा, 206,
हिन्दी काव्य धारा 'दसवीं सदी' पृ. 248 ।
2. जगन्नाथराय शर्मा : अपभ्रन्श दर्पण, पृ. 1 (पटना सं. 1998) ।
3. योगीन्दु : परमप्पयासु (परमात्म प्रकाश) पद्म 270,
अपभ्रन्श काव्यत्रयी, भूमिका पृ. 103, पर उद्धृत ।
4. णिब्भोइल्ले संचिय-दविणं । णिण्णेहे वर-भोणणि-रमणं ।
अविय अपत्ते दिणणं । मोह-रयंधे धम्म-करवाणं ।।
पुप्पदन्तः जसहर चरिउ, पृ. 16 'दसवीं सदी', हिन्दी काव्य धारा,
पृ. 232, पर उद्धृत ।

हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत छन्दों (प्राकृत, पैंगलभ तथा प्रबन्ध चिन्तामणि) में विशेषतः यह सामग्री प्रचुर मात्रा में है । इनमें गृहस्थ स्त्री, भाग्य सज्जन, दुर्जन प्रेम, उन्नति-अवनति, नम्रता, उग्रता तथा भाग्य के सम्बन्ध में बहुत सी सूक्तियाँ हैं ।

सज्जन के प्रति कही यह सूक्ति देखिए—

परगुण-गहणु स दोस पयासणु,
महु महु रकर वरहि अभिअ भासणु ।
उवयाशिण पण्डि किओ वेरि अणहं,
इअ पद्धड़ी भणेहर सुअणह ।।[1]

'दूसरे के गुण को ग्रहण करना, अपने दोषों को न छिपाना, मीठी बात कहना तथा बैरियों का भी उपकार करना सज्जनों का लक्षण है ।'

वेश्या के सन्दर्भगत कही यह सूक्ति कितनी मर्मस्पर्शी बन पड़ी है ।

वेस विसिटठइ वारिअइ जह वि मणेहर गत्त ।
गंगा जल पक्खलि अवि, सुणिहि कि होइ पवित ।।[2]

"वेश्याओं को दूर रखिए चाहे वे मनोहर शरीर की ही क्यों न हों—गंगाजल में धोई कुतिया क्या पवित्र हो जाती है ।"

(ङ) हिन्दी साहित्य में सूक्ति-प्रयोग :

आदिकाल में सूक्ति-प्रयोग :

इस काल में अपभ्रन्श का प्राधान्य था । अपभ्रन्श उस समय की बोलचाल की भाषा तो न थी परन्तु साहित्यिक परम्परा की भाषा अवश्य थी जिसका प्रयोग एक प्रचलित रूढ़ि के कारण कवि लोग अपनी रचनाओं में कर रहे थे । आदिकाल का हिन्दी काव्य दो प्रकार के काव्यों में विभक्त है - एक अपभ्रन्श काव्य,[3] दूसरा देशभाषा काव्य ।

आदिकाल के काव्य में सूक्तियों को स्थान तो मिला है लेकिन संस्कृत काव्य एवं प्राकृत काव्य की भाँति उसकी प्रचुरता नहीं है । अमीर खुसरो के काव्य में यह अधिकांशतः देखने में आती है । खुसरो अपनी हास्य-विनोदमयी रचनाओं के कारण एक विशिष्ट स्थान रखते हैं । वैसे इनकी रचनाएँ जन-साधारणप्रिय एवं मनोरंजक-सिद्ध रही हैं । पुस्तक का आनन्द चतुर लोग ही ले सकते हैं, मूर्ख नहीं; इस नीति को शृंगारमयी सूक्ति द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

1. हिन्दी काव्यधारा 'छन्दोनुशासन, पृ. 43 क'
राहुल सांस्कृत्यायन, पृ. 382, बारहवीं सदी, पर उद्धृत ।
2. डॉ. नामवरसिंह : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ. 270 ।
3. अपभ्रन्श काव्य में सूक्ति प्रयोग पर हम पिछले पृष्ठों में विस्तारपूर्वक लिख चुके हैं ।

एक नार चातुर कहलावे, मूरख को न पास बुलावे ।
चातुर मरद जो हाथ लगावै, खोल सतर वह आप दिखावे ।[1]

हुक्का पीने के दोष को इस बीभत्स-रसमयी कहमुकरी से प्रकट किया गया है––

न्हाय धोय सेज मेरी आयो, लै चूमा मुँह मुहहिं लगायो ।
इतनी बात पै थुक्कम-थुक्का, ऐ सखी साजन ना सखी हुक्का ।।[2]

इसी प्रकार अमीर खुसरो ने अपनी चमत्कारमयी सूक्तियों द्वारा जरा-जन्य जीर्णता, यात्री को साथ की आवश्यकता, मेलजोल के लिए प्रेम की अनिवार्यता, अग्नि से सावधानता आदि उपयोगी तथ्य व्यक्त किए हैं ।

भक्तिकाल में सूक्ति प्रयोग :

इस काल में काव्य की तीन प्रवृत्तियों की मुख्यता थी । उसके फलस्वरूप काव्य की त्रिवेणी स्वरूपा-तीन धाराएँ बह निकलीं । वे इस प्रकार थीं––

(1) निर्गुण-पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा ।
(2) प्रेम-मार्गी शाखा ।
(3) भक्तिमार्गी शाखा ।

इनके प्रवर्त्तक क्रमशः कबीर, जायसी एवं गोस्वामी तुलसीदास एवं सूरदास माने जाते हैं । इस काल की श्रेष्ठ रचनाओं में कबीर 'ग्रंथावली', पद्मावत', 'सूरसागर', तथा गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'दोहावली', 'कवितावली', इत्यादि हैं जिनमें हमें सूक्तियों के दर्शन पग-पग पर होते नजर आते हैं । रामचरितमानस इस दृष्टि से श्रेष्ठतम कृति है ।

कबीर की साखियों में सूक्ति प्रयोग के कई उदाहरण मिलते हैं । यह सूक्ति कितनी मार्मिक बन पड़ी है––

जो तोकूं काँटा बुवै ताहि बोहि तू फूल ।
तोकू फूल के फूल हैं वाकू हैं तिरसूल ।।

यह नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी सांसारिक जगत् का कथ्य नहीं प्रतीत होती, क्योंकि इसके अनुसार आचरण कम होते प्रतीत होते हैं ।

सूफी सम्प्रदाय में मलिक मुहम्मद जायसी श्रेष्ठ कवि ठहरते हैं । उन्होंने भी अपने काव्य में सूक्तियाँ प्रयुक्त की हैं । परम्परा से ली हुई सूक्तियों के अलावा उन्होंने मौलिक सूक्तियों की भी सर्जना की है । उनकी सूक्तियों के कुछ नमूने देखिए––

---

1. खुसरो की हिन्दी कविता (प्र. नागरी प्रचारिणी सभा, 2010 वि.) पृ. 33 ।

2. वही (प्र. नागरी प्र. सभा, 2010 ई.) पृ. 38 ।

प्रियतम से बिछुड़ी प्रेमिका की दयनीय स्थिति का यह मर्मभेदी चित्रण इस प्रसिद्ध सूक्ति पर ही अवलंबित है--

चकई बिछुरि पुकारे कहाँ मिलहु हो नाँह।
एक चाँद निसि सरग पर दिन दौसर जल माँह ।।[1]

प्रस्तुत उक्ति में तीव्र भाव-व्यंजना है, आलम्बन के सौन्दर्य की अनुभूति में एक चमत्कार है और है जायसी की भावुकता का उत्कृष्ट निदर्शन।

निम्न कथन भी बड़े मार्मिक हैं--

अवस ते मिलैहि बिछोही, जिन्ह हिय होइ बियोग।[2]

\+ + +

बसै मीन जल धरती अंबा बिरिख अकास।
जो रे पिरीति दुहुन मंह अन्त होंहि एक पास ।।[3]

भवितव्यता की अटलता सम्बन्धी निम्न सूक्ति संकटकाल में संतोष का संबल बनती है--

होनहार सो होइ है बहुत किहे अभ्यास।
जोरा चाहैं ताग दस टूटहिं ताग पचास ।।[4]

वस्तुतः उनके काव्य में ऐसी अनेक मधुर तथा मार्मिक सूक्तियाँ हैं जो कवि की कारयित्री प्रतिभा का परिणाम है।

साहस के बारे में कही गई यह सूक्ति देखिए--

साहस जहाँ सिद्धि तहं होइ।[5]

\+ + +

बैठा कोई राज औ पाटा। अन्त सबै बैठहि एहि खाटा।[6]

सूर-साहित्य में भी सूक्ति-प्रयोग यत्र-तत्र लक्षित होता है। भाव-व्यंजना एवं कथन-पटुता की दृष्टि से उनका 'भ्रमरगीत' प्रसंग अत्यधिक मार्मिक है। सूक्तियाँ भी इसमें अनूठी बन पड़ी हैं। उद्धव के ज्ञान महिमा की बात को सुनकर गोपियों की जो झल्लाहट चित्रित की गई है, वहाँ सूक्ति का अच्छा दिग्दर्शन है। कुछ उदाहरण उपन्यस्त हैं—

---

1. पद्मावत, पृ. 72।
2. सं. शिवसहाय पाठक, चित्ररेखा (जायसी) पृ. 111।
3. पद्मावत, पृ. 206।
4. सं. श्री अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' : मलिक मुहम्मद जायसी कृत कहरानामा और मसलानामा, पृ. 109।
5. पद्मावत, पृ. 166।
6. वही, पृ. 877।

गोकुल सवै गोपाल उपासीं

\+ \+ \+

अपनी सीतलताहि न छांडत यद्यपि है ससि राहु गरासी ।[1]

काहे को झाला ले मिलवतु कौन चोर तुम डाँडे ।

सूरदास तीनों नहिं उपजत धनिया धान कुम्हाड़े ।।[2]

इसी प्रकार के और उदाहरण देखिए —

तेरो बुरो न कोउ माने ।

रस की बात मधुप नीरस, सुन, रसिक होत सो जाने ।

दादुर बसै निकट कमलन के जन्म न रस पहिचाने ।

अलि अनुराग उड़न मन बांध्यो कहे सुनत नहिं कानै ।

सरिता चले मिलन सागर को कूल मूल द्रुम भानै ।

कायर बकै लहै ते भाजै लरे जो सूर बखाने ।।[3]

\+ \+ \+

काकी भूख गई मन लाडू सो देखहु चित चेत ।

सूर स्याम तजि को भुस फटकै मधुप तिहारे हेत ।।[4]

\+ \+ \+

ता को कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधो ।[5]

उनकी ये सूक्तियाँ बड़ी अनुपम और प्रभावक बन पड़ी हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास तो सूक्ति प्रयोग में वेजोड़ हैं । 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त अन्य कृतियों में भी उनकी सूक्तियाँ वड़ी सटीक और प्रभावकारी बन पड़ी हैं । नारी के सन्दर्भ में कही गई यह उक्ति कितनी सारगर्भित है—

काह न पावक जरि सके, का न समुद्र समाय ।

का न करै अवलाप्रबल केहि जग काल न खाय ।।[6]

एक अन्य सूक्ति में उन्होंने कहा है सज्जनता एवं सरलता निसंदेह स्तुत्य गुण है, परन्तु इनकी भी कोई सीमा होनी चाहिए । जो इस नीति की उपेक्षा करता है, वह सूर्य-चन्द्र के समान विडम्बना का पात्र बनता है क्योंकि वे सदा सरल चाल चलते हैं, शेप ग्रहों के समान उभयविधि गति का आश्रय नहीं लेते—

---

1. सं. रामचन्द्र शुक्ल : भ्रमरगीत सार, पद 21, पृ. 8 ।
2. वही पद 25, पृ. 9 ।
3. वही, पद 31, पृ. 11 ।
4. वही, पद 49, पृ. 15 ।
5. वही, पद 62, पृ. 19 ।
6. रा. च. मा., अयो., का., दो 47 ।

सरल वक्रगति पंच ग्रह, चपरि न चितवत काहु ।
तुलसी सूधे सूर ससि, समय बिडंबित राहु ।।[1]

इसी प्रकार निम्नांकित दोहे में कामादि के सहायक पदार्थों का उल्लेख द्रष्टव्य है --

लोभ के इच्छा दंभबल काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष वचन बल मुनिवर कहहिं विचारि ।।[2]

काम, क्रोध आदि में से एक ही दोष मनुष्य का अनर्थ करने में समर्थ है, परन्तु जहाँ वे इकट्ठे हो जाएँ तो बचाव की कोई सूरत ही नहीं रहती ।

कबीर आदि अनेक भक्त कवियों ने जिस प्रकार उदरपूर्ति की चिन्ता से मुक्ति का साधन प्रभु विश्वास बताया है, उसी प्रकार, परन्तु कहीं सरस भाषा में, 'ब्रह्म' कवि (बीरबल) लोगों को चिन्ता त्याग का उपदेश देते हैं—

जब दाँत नहीं तब दूध दियो अब दाँत भए कहा अन्न न दै है ।
जीव बसेहि जल में थिल में तिनकी सुधि लेइ सौ तैरिहु लैहे ।।
जान को देत अजान को देत जहान को देत सौ तौहू कू दैहै ।
काहे को सोच करै मन मूरख सोच करै कछु हाथ न ऐहै ।।[3]

'ब्रह्म' ने नम्रता-धारण पर बहुत बल दिया और अनेक व्यक्तियों तथा पदार्थों में विद्यमान नम्रता की प्रशंसा करने के पश्चात् इस बात पर खेद प्रकट किया है कि सूखा काठ और अज्ञानी नर कभी नहीं झुकते ।[4]

कवि गंग ने एक स्थान पर कहा है--

चंचल नारि सो प्रीति न कीजिए प्रीति किए दुःख होत है भारी ।
काल परै कछु आन बनै कबु नारि की प्रीति है प्रेम कटारी ।।
लोहे के घाव दवा से मिटे पर चित्त को घाव न जाय बिसारी ।
गंग कहै सुन साह अक्कबर नारि की प्रीति अगार ते छारी ।।[5]

यहाँ चंचल नारी की प्रीति के प्रति भर्त्सना युक्त सूक्ति गढ़ दी है, तथा खरी चेतावनी दी गई है । इतना ही नहीं एक स्थल पर तो याचकता को हेय ठहराने के सम्बन्ध में कितनी ही मार्मिक युक्तियाँ एक साथ जड़ दी हैं--

---

1 दोहावली, 397, पृ. 135 ।

2. वही, 365 पृ. 92 ।

3. डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल : अकबरी दरबार के हिन्दी कवि : लखनऊ, सं. 2007, वि. पृ. 354/65 ।

4. वही, पृ. 354/66 ।

5. वही, पृ. 433/101 ।

बुरो प्रीति को पंथ बुरो जंगल को बासी ।
बुरी नारि को नेह बुरो मूरख सों हाँसी ।।
बुरी सूम की सेव बुरो भगनी घर भाई ।
बुरी नारी कुलच्छ सास घर बुरो जमाई ।।
बुरी पेट पाल है बुरो सूर को भागनो ।
गंग कहै अकबर सुनो, सबसे बुरो है माँगनो ।।[1]

यहाँ याचक को बुरा कहने के अतिरिक्त इन्होंने कुपात्र को दान देने की भी भर्त्सना की है तथा बहिन के घर रहने वाले भाई तथा सास के घर रहने वाले जमाई की बुराई की है ।

रहीम ने मधुर भाषण के महत्त्व तथा कटु-वचनों के त्याग पर अनेक दोहे रचे हैं । यद्यपि कहा जाता है कि उन्होंने वैयक्तिक जीवन में कभी किसी पर क्रोध नहीं किया तथापि वे कटु-भाषियों के लिए निम्न लिखित दण्ड के पक्षपाती थे--

खीरा सिर ते काटिए मलियत लोन लगाय ।
रहिमन करुए सुखन को चहिअत इहै सजाय ।।[2]

जिसे निष्कासित किया जाता है वह गुप्त रहस्यों का भंडाफोड़ कर देता है । इस तथ्य को रहीम ने कितने मार्मिक ढंग से लक्षित किया है । उनकी उक्ति देखिए--

रहिमन अंसुआ नैन ढरि जिय दुःख प्रकट करेउ ।
जाहि निकारों गेह ते कस न भेद कहि देइ ।।[3]

रहीम ने नेत्रों से नीर निकलता देखा और सुन्दर नैतिक परिणाम निकाल लिया । यह कि जिसे घर से निकाला जाता है वह सब रहस्य खोल देता है । प्रत्यक्ष प्रमाण विभीक्षण है नीत्यात्मक सूक्ति का कितना सारगर्भित उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

अपनी भावपूर्णता एवं सरसता के कारण ही वह लोकप्रिय बन गये । उनके काव्य में भाव-विभोर कर देने की क्षमता है, अन्य नीति कवियों की भाँति केवल शाब्दिक चमत्कार नहीं । यही कारण है कि उनका काव्य अन्य की अपेक्षा अधिक ग्राह्य है तथा उनके पद लोकोक्ति का स्थान पाने में समर्थ हैं ।

अन्य नीतिकारों की या कवियों की रचनाएँ इस गुण से प्रभावित कम ही रही हैं । इस प्रकार वे सूक्तियाँ तो बन जाती हैं लेकिन भावों की कमी के कारण सरसता से शून्य रह जाती है, क्योंकि वे शिक्षा देने के लिए नैतिक तथ्यों का उल्लेख

---

1. वही पृ. 435/109 ।
2. सं. रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी, भाग ।
(नवनीत प्रकाशन बम्बई, 1954 ई.), दोहा 38, पृ. 334 ।
3. रहिमन विलास : सं. ब्रजरत्नदास (प्रयाग 1987), पृ. 18/172 ।

करते हैं और अपने कथ्य को इतिवृत्तात्मकता तथा पद्यमयता से बचाने के लिए किसी दृष्टान्त या अलंकारादि का ही आश्रय ढूंढ़ लेते हैं ।

रीतिकाल में सूक्ति प्रयोग :

इस काल के प्रमुख कवि केशव, बिहारी, देव, वृन्द, गिरिधर, ज्ञानसार, दीनदयाल गिरि इत्यादि हैं । कुछ कवि ऐसे हैं जिन्होंने अपने संग्रहों में विभिन्न कवियों की नीति विषयक सूक्तियों को भी स्थान दिया है । भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की ओर इन कवियों का ध्यान अधिक रहा है । यही कारण है कि दृष्टान्त, अन्योक्ति, दीपक आदि अलंकारों की सहायता से इन कवियों ने सुन्दर सूक्तियाँ गढ़ दी हैं । दृष्टान्त के माध्यम से कवि वृन्द ने इस सूक्ति को किस प्रकार मंडित कर दिया है, देखिए—

आप बुरे जग है बुरो भले भलो जग जानि ।
तजत बहेरा छाँह सब गहत आम की आनि ।।[1]

+ + +

एक भेष के आसरे जाति बरन छिप जात ।
ज्यों हाथी के पाँव में सबको पाँव समात ।।[2]

कहीं कहीं इनकी कल्पनाएँ उतनी उत्तम बन पड़ी हैं कि हृदय को हर लेती हैं ।

मीन-भक्षक लोग जानते ही हैं कि मछली खाने के बाद खूब प्यास लगती है । इस तथ्य पर वृन्द की उद्‌भावना देखिए—

प्रेमी प्रीत न छाँडही होत न प्रन तैं हीन ।
मरे परै हू उदर में जल चाहत है मीन ।।[3]

ज्ञानसार ने अपने नीतिपरक ग्रन्थ 'सम्बोध अष्टोत्तरी' एवं 'प्रस्ताविक अष्टोत्तरी' में सूक्तियों का अच्छा कौशल दर्शाया है । कुछ सोरठे सरस हैं परन्तु अधिकतर सोरठे कल्पना तथा रागतत्व की न्यूनता के कारण सूक्ति मात्र हैं । यथा —

कीड़ा परै कपाल नासा ई लऊ नीसरे ।
कंठै फिर कंठमाल नहीं पाप बिन नारण ।।[4]

---

1. सं. श्याम सुन्दरदास, सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, 1931 ई.) दो. 43, पृ. 290 ।
2. वही, दो. 151, पृ. 298 ।
3. डॉ. श्यामसुन्दर दास : सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दो. 441, पृ. 321 ।
4. सं. अगरचन्द नाहटा-बीकानेर, सम्बोध अष्टोत्तरी, पुष्पिका : ज्ञानसार ग्रन्थावली, पृ. 188/102 ।

वसियै जिएरै वास तिनसू कदै न तोडिये ।
अणबणि यै आवास ना रहि सकी जै नारए ।।[1]

आत्मानुभूति का परिचय मुनि जी ने नैतिक तथ्यों के समर्थन में बड़े रोचक ढंग से उपन्यस्त किया है—

मन फाटै कूँ मृदु वचन कह्यौ करण उपचार ।
टूक टूक कर जुड़न कूं टांका देत सुनार ।।[2]

दीनदयाल गिरि विरचित दृष्टान्त तरंगिणी निःसन्देह एक सुन्दर सूक्तिमयी रचना है । एक स्थल पर गिरि ने पुरुष के स्वभावों की अभिव्यञ्जना इस प्रकार की है—

इक बाहर इक भीतरे इक मृदु दुहु दिसि पूर ।
सोहत नर जग त्रिविध ज्यों बेर बदाम अंगूर ।।[3]
× × × ×
स्वान अपर को देखि के करै परस्पर क्रोध ।
× × × ×
बढ़े गरल बहु भुजग को जथा किये पयपान ।।
× × × ×
पूरन जल बरसै नहीं ज्यों घन गरजन हार ।।[4]

मनराम ने भी अपने मनरामविलास में सूक्तियों को स्थान दिया है । एकाध पद्य में कवि ने शब्दों के आधार पर चमत्कार लाने का भी उद्योग किया है । कला की दृष्टि से यह रचना सूक्ति काव्य में गणनीय है । कुछ उदाहरण देखिए—

होत आप दुःख आन सुख सज्जन मन अहलाद ।
लवन गारि तन आपनी भोजन करत सुवाद ।।[5]
+ + +
दीन एक पद अधिक लहि हीन कहावत नाम ।
धीर सीस खंडित भए 'वीर' होत मनराम ।।[6]

अधिकतर शृंगारी कवियों का व्यवसाय काव्य-निर्माण ही था । काव्य-कला में कौशल प्राप्त करने के बाद ये धनी-मानी नरेशों के सामन्तों की खोज में निकलते थे, और उन्हीं के आश्रित रहकर सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने के इच्छुक थे ।

---

1. वही पृ. 186/88 ।
2. वही, पृ. 193/44 ।
3. दीनदयाल गिरि ग्रंथावली : ना. प्रचा. सभा काशी (1976 ई.) पृ. 85/154 ।
4. वही, पृ. 81/100, 81/102, 83/128
5. मनराम विलास, पद्य 57 ।
6. वही, पद्य 62 ।

अनेक आश्रयदाता ऐसे भी होते थे जिन्हें हीरे कंकड़ की पहचान नहीं होती थी। उनके यहाँ सुकवियों की अच्छी आवभगत की जाती थी। कहीं पर गुणी कवियों के पहुँच जाने पर सामान्य तुक्कड़ों की उपेक्षा कर दी जाती थी, तो कहीं पर अगुणज्ञ लोग सुकवियों की अवहेलना कर देते थे। ऐसी परिस्थितियों से प्रेरित होकर इन शृंगारी कवियों ने गुणी-निर्गुण और अगुणज्ञों के विषय में पर्याप्त और सुन्दर सूक्तियाँ रची हैं, जैसे—

करलै सूँघि सराहि हूँ रहे सबै गहि मौनु।
गंधी अंध गुलाब कौ गवई गाहकु कान ।।[1]

ल्यायौ कछु फल मीठो विचार के दूरि ते दौरे सबै ललचाने।
हाथ ले चाख के रखि दियो निसवादिल बोलि सबै अलगाने ।।
दास जू ग्राहक चीह्नो न लीह्नो तू नाहक दीह्नो बगारि दुकानै।
रेजड़ जौहरी गाँव गवारे में कौन जवाहिर के गुन जानै ।।[2]

इन कवियों ने सज्जन और दुर्जन के भेद के विषय में भी खूब लिखा है। दुर्जन सत्संगति के प्रभात से भी नहीं सुधरते—वे शरणागत को विश्वासघात द्वारा भार डालते हैं, वे दुष्टता का परित्याग कर दें तो भी उनसे अनिष्ट की संभावना बनी रहती है, आदि विषयों पर इनकी सुन्दर सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं। ऐसा होते हुए भी और सज्जनों के अनेक गुणों की प्रशंसा करते हुए भी अपनी प्रशंसनीय व्यावहारिक दृष्टि के कारण ये कवि सौजन्य में अति का निषेध ही करते हैं, क्योंकि जगत में पूजा बुरों की और उपेक्षा सज्जनों की होती है, जैसे जंगल में रक्षा वक्र वृक्षों की ओर, काट-छांट सरल वृक्षों की ही की जाती है।

भिखारीदास ने अपने इस कवित्त में श्लिष्ट शब्दावली का प्रश्रय लेकर सज्जन और दुर्जन दोनों के ही स्वभाव का इस प्रकार वर्णन किया है—

सुजस जनावै भगतन से ही प्रेम करै,
चित अति ऊजरे भजत हरि-नाम है।
दीन के दुःखन देखे आपनो सुखन लेखे,
विप्र पाप रत तैन मैन मोहे धाम है।
जग पर जाहिर है धरम निवाहि रहे,
दैव दरसन ते लहत विसराम है।
दास जू गनाये जे असज्जन के काम है,
समुझि देखो रई सब सज्जन के काम हैं।[3]

---

1. विहारी रत्नाकर : ग्रन्थकार प्रकाशन, बनारस 1951 ई., पृ. 257/624।
2. भिखारीदास ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, रस सारांश, ना. प्र. सभा काशी, सं. 2013, पृ. 80/543।
3. कविता कौमुदी, भाग 1, पृ. 476/1।

किन्हीं स्थलों पर इन कवियों ने संस्कृताचार्यों की नकल भी की है व उनके भावों का समावेश अपने काव्य के अन्तर्गत करना अभीष्ट समझा है। केशव ने भी कई स्थलों पर ऐसा किया है। किसी संस्कृत कवि की यह सूक्ति है—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम ।
धर्मों न वे यत्र च नास्ति सत्यम्, सत्यं न तद्यच्छलना नु विद्धम् ।।[1]

केशव ने इस सूक्ति के भाव को क्रमालंकार के उदाहरण में एक सवैये में इस प्रकार उपन्यस्त किया है।

सोभति सो न सभा जहं वृद्ध न, वृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं ।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित, दीन्ह दया न दिये जिन माहीं ।।
सो न दया जु न धर्म धरे घर, धर्म न सो जहं दान वृथा ही ।
दान न सौ जंह सांच न केशव, सांच न सोश्रु बसे छल छाही ।।[2]

दोनों पद्यों की तुलना से स्पष्ट विदित होता है कि केशवदास कुछ सीमा तक भाव और भाषा दोनों में संस्कृत कवि के आभारी हैं, परन्तु उन्होंने अपने आप को सभा, वृद्ध, वर्ग और सत्य तक ही सीमित नहीं रखा, सवैये में विद्या, दया, दान आदि का भी समावेश कर दिया है।

रीतिकाल के कवियों ने सूक्तियों के ऊपर अलग से कोई ग्रंथ नहीं लिखा, वस्तुतः लिखा तो अन्य काल में भी नहीं लेकिन संग्रह अवश्य किया गया है। 'संकलित' कई रचनाएँ प्राप्य हैं। रीतिकाल में भी ऐसा ही हुआ है। अधिकतर रचनाएँ नीतिशतक, अन्योक्तिशतक आदि हैं जिनमें प्रत्येक कवि ने अपनी विविध विषयक नीति सूक्तियों को संग्रहीत कर दिया है।

आधुनिक काल में सूक्ति प्रयोग :

इस काल के प्रारम्भिक वर्षों में चामत्कारिकता की दृष्टि से समस्यापूर्ति में अधिक रुचि प्रदर्शित की गई। इसमें कवियों को संक्षेप में अपनी सूझ प्रकट कर देनी पड़ती है तथा दक्षता प्राप्त करने के लिए प्रतिमा, नैपुण्य, अभ्यास आदि की आवश्यकता पड़ती है। इससे सुहृदयजनों का मनोविनोद भी होता है।

---

1. अर्थ—वह सभा ही नहीं जिसमें वृद्ध न हो, वह वृद्ध ही नहीं जो धर्म का उपदेश न दे, वह धर्म ही नहीं जिसमें सत्य न हो और वह सत्य ही नहीं जिसमें छल विद्यमान न हो।

—सुभाषित रत्न भाण्डागार, पृ. 174/884।

2. केशव ग्रंथावली, खण्ड 1, 'कविप्रिया' पृ. 160/3।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह कथन बड़ा मार्मिक बन पड़ा है—

करु न अधर्म सोच जिय माँही।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ।।[1]

यहाँ कवि ने इस बात का अहसास किया है कि परतन्त्रता में जीवन सुखमय व्यतीत नहीं किया जा सकता, अतः हर कीमत पर आजादी हासिल की जानी चाहिए। 'समस्यापूर्ति' में कई चामत्कारिक उक्तियाँ कही गई हैं। एक मुखरी देखिए—

मुँह जब लागे तब नहिं छूटे।
जाति मान धन सब कुछ लूटे ।।
पागल करि मोहि करै खराब।
क्यों सखि साजन नहीं सराब ।।[2]

प्रेम के बारे में कही गई यह सूक्ति कितनी सजीव बन पड़ी है—

छिपाये छिपत न नैन लगे।
कितनी करौ दुराव दुरत नहिं जब ये प्रेम पगे ।।

× × ×

दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति।[3]

प्रतापनारायण मिश्र ने भी प्रेम की प्रशस्ति इस प्रकार से की है—

प्रेम बिना नहिं देखहु भावत पूत कपूत जो आतम जात है।
प्रेम भए निज सर्व सु वारिए तापर जासों न नेकहु नात है ।।
ब्रह्मसदा सबही ते परे सोउ प्रेम के नाते सखा पितु मात है।
नेह सगा तो सगा बस सत्य है सत्य है प्रेम हि ते सब बात है ।।[4]

उनकी एक अन्य सूक्ति लोकोक्ति-सी जान पड़ती है—

राजा करे सो न्याय है पासा परे सो दाव है।[5]

द्विवेदी-युग में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता रही। इस युग के कवियों ने अपने प्रबन्ध-काव्यों में प्रसंगानुसार सूक्तियों का सुन्दर प्रयोग किया है। इस युग के प्रमुख कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत', 'यशोधरा', 'पचवटी' आदि काव्यों में सूक्ति सुमन अधिकता से छिटकाए हैं। 'यशोधरा' में मनुष्य को स्वावलम्बी होना उचित बताया है—

(क) पुरुषों के लिए स्वावलम्बी होना ही उचित है, दूसरों का भार बनना अपने पौरुष का अनादर करना है।[6]

---

1. डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ. सं. 141।
2. वही, पृष्ठ 178।
3. श्री ब्रजरत्न दास : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ 362।
4. प्रतापनारायण मिश्र, काव्यालोचन, पृष्ठ 203।
5. वही।
6. यशोधरा 'राहुल जननी' पृष्ठ 121।

(ख) अधिकार क्या अकेले ही माँगा जाता है ।[1]

'पंचवटी' में लक्ष्मण का यह कथन कितना सटीक बैठता है—

वंचित ही होना पड़ता है यदि औरों के लिए लड़ो ।[2]

व्यावहारिक जगत् में देखने में आता है कि दो के झगड़े में तीसरा दखल देने वाला ही कानून के चक्कर में फाँस लिया जाता है, शामत उसी की आ पड़ती है । शूर्पणखा की यह उक्ति भी सूक्ति का अच्छा उदाहरण बन पड़ी है—

किन्तु प्राणियों के स्वभाव की, होती है ऐसी ही रीति ।
परवशता हो सकती है पर, होती नहीं भीति में प्रीति ।।[3]

नारी जितना प्रेम करती है, उतना ही विरोध भी ठान सकती है । इस बात की पुष्टि शूर्पणखा के निम्नलिखित शब्दों से होती है—

पक्षपात मय सानुरोध है जितना अटल प्रेम का बोध ।
उतना ही बलवत्तर समझो कामिनियों का बैर विरोध ।।[4]

भावनाशील ही कुछ कर दिखाया करते हैं, क्योंकि भावुक व्यक्ति कुछ कर सकने में समर्थ होता है । इस भाव की यह उक्ति दर्शनीय है—

(क) भावुक जन से ही महत्कार्य होते हैं,
ज्ञानी संसार असार मान रोते हैं ।[5]

बाधा के बारे में यह कथन—

(ख) बाधाओं के भीतर ही तो,
कार्य सिद्धि करती है वास ।[6]

छायावादी काव्य में भी सूक्तियों को प्रसंगानुसार उचित स्थान मिला है । 'प्रसादजी' की ये सूक्तियाँ बड़ी मार्मिक बन पडी हैं—

(क) जिसके हृदय सदा समीप है ।
वही दूर जाता है ।।
और क्रोध होता उस पर ही ।
जिससे कुछ नाता है ।।[7]

---

1. यशोधरा 'राहुल जननी' पृ. 137 ।
2. पंचवटी, पृ. 53 ।
3. वही, पृ. 57 ।
4. वही, पृ. 59 ।
5. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ. 189 ।
6. वही, एकादश सर्ग, पृ. 285 ।
7. कामायनी, कर्म सर्ग, पृ. 126 ।

(ख) बन जाता सिद्धान्त प्रथम फिर ।
पुष्टि हुग्रा करती है ।।
बुद्धि उसी ऋण को सबसे ले ।
सदा भरा करती है ।।[1]

(ग) गिर जायेगा जो है ग्रलीक ।
चलकर मिटती है पड़ी लीक ।।[2]

(घ) निर्वासित ग्रधिकार ग्राज तक किसने भोगा ।[3]

प्रसादजी ने गद्य साहित्य में भी सूक्तियों का प्रयोग बहुलता से किया है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(1) प्रमाद में मनुष्य कठोर सत्य का भी ग्रनुभव नहीं करता ।[4]

(2) तामस त्याग से सात्विक ग्रहण उत्तम है ।[5]

(3) ग्रवसर पर एक क्षण का विलम्ब ग्रसफलता का प्रवर्त्तक हो जाता है ।[6]

(4) महत्त्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है ।[7]

सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में भी सूक्तियों के प्रयोग देखे जा सकते हैं। वेदना के सम्बन्ध में कही गई उनकी ये सूक्तियाँ देखिए—

(1) वेदना ही में तपकर प्राण ।
दमक दिखलाते स्वर्ण हुलास ।।[8]

(2) वियोगी होगा पहला कवि ।
ग्राह से निकला होगा गान ।।
उमड़कर ग्राँखों से चुपचाप ।
वही होगी कविता ग्रन जान ।।[9]

(3) ग्राज का दुःख कल का ग्राह्लाद
ग्रौर कल का सुख ग्राज विषाद
समस्या स्वप्न गूढ़ संसार
पूर्ति जिसकी उस पार

---

1. कामायनी, कर्म सर्ग, पृ. 110 ।
2. वही, दर्शन सर्ग, पृ. 251 ।
3. वही, संघर्ष सर्ग, पृ. 192 ।
4. चन्द्रगुप्त, पृ. 66 ।
5. वही, पृष्ठ 130 ।
6. वही, पृष्ठ 141 ।
7. वही, पृष्ठ 161 ।
8. ग्राधुनिक कवि 2, 'नित्यजग', पृष्ठ 34 ।
9. वही, 'ग्राँसू से', पृष्ठ 10 ।

जगत जीवन का अर्थ विकास ।
मृत्यु गति क्रम का ह्रास ।।[1]

सूक्ति-प्रयोग की दृष्टि से प्रेमचन्द का विशेष महत्त्व है। उन्होंने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में स्थान-स्थान पर सूक्तियों के माध्यम से अनुभवगत सत्य की प्रभावकारी अभिव्यक्ति की है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—भोजन के सम्बन्ध में कही गई उनकी ये सूक्तियाँ—

(1) प्रेम की रोटियों में अमृत रहता है, चाहे गेहूँ की हों या बाजरे की ।[2]

(2) प्रेम से जो भोजन मिलता है, वह पवित्र होता है। उसे तो देवता भी खाते हैं ।[3]

(3) सौर के संयम और पौष्टिक भोजन देह को चिकना कर देते हैं ।[4]

उन्होंने लगन के बारे में कहा है—

'मानव जीवन में लाग बड़े महत्त्व की वस्तु है। जिसमें लाग है वह बूढ़ा भी जवान है; जिसमें लाग नहीं, गैरत नहीं, वह जवान भी मृतक है।'[5]

कुछ अन्य सूक्तियाँ भी उपन्यस्त हैं—

(4) दरिद्रता में बीमारी कोढ़ का खाज है ।[6]

(5) उजले कपड़े और चिकने मुखड़े से कोई आदमी सुन्दर नहीं होता ।[7]

'अनाथ बच्चों का हृदय उस चित्र की भाँति होता है जिस पर एक बहुत ही साधारण परदा पड़ा हुआ हो, पवन का साधारण झोंका भी उसे हटा देता है।'[8]

प्रगतिवादी कवियों में निराला, दिनकर, नागार्जुन, त्रिलोचन, शिव मंगलसिंह 'सुमन', रांगेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल आदि ने भी अपने काव्य में सूक्ति-सुमनों को यत्र-तत्र बिखेरा है।

---

1. आधुनिक कवि 2, 'नित्यजग' पृ. 34 ।
2. 'गबन', निहित प्रेमचन्द : सुभाषित और सूक्तियाँ, पृ. 119 ।
3. वही ।
4. मानसरोवर, स्वामिनी पृ. 129 (प्रथम भाग) ।
5. मानसरोवर (पंचम भाग), 'सुजान भगत' पृ. 194 ।
6. वही (चतुर्थ भाग), 'सती' पृ. 152 ।
7. वही (चतुर्थ भाग), 'सती' पृ. 151 ।
8. मानसरोवर, अष्टम भाग, 'विमाता', पृ. 144 ।

दिनकरजी कृत 'उर्वशी' में प्रेम के बारे में रंभा का यह कथन देखिए—

प्रेम मानवी की निधि है, अपनी तो वह क्रीड़ा है,
प्रेम हमारा स्वाद मानवी की आकुल पीड़ा है।

\+ + + +

जहाँ प्रेम की मादकता में भी यातना निहित है—

नहीं पुष्प ही अलभ् वहाँ फल भी जनना होता है।
जो भी करती प्रेम उसे माता बनना होता है ।।[1]

औशीनरी की यह उक्ति कितनी अनुपम बन पड़ी है, देखिए—

कौन कहे? यह प्रेम हृदय की बहुत बड़ी उलझन है।
जो अलम्य जो दूर उसी को अधिक चाहता मन है ।।[2]

दिनकरजी ने कुरुक्षेत्र में भी सूक्तियों का अच्छा चित्र उभारा है। कुछ उदाहरण देखिए--

क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो।
उसका क्या जो दन्तहीन।
विषहीन विनीत सरल हो ।।[3]

जहाँ नहीं सामर्थ्य शोध की
क्षमा वहाँ निष्फल है।
गरल घूँट पी जाने का
मिस है, वाणी का छल है ।।[4]

उन्होंने व्यथित का सबसे बड़ा धर्म उसका सदैव प्रज्वलित रहना, सजग रहना बताया है--

सबसे बड़ा धर्म है नर का
सदा प्रज्वलित रहना
दाहक शक्ति समेट स्पर्श भी
नहीं किसी का सहना ।।[5]

यौवन बड़ा मतवाला हुआ करता है। जवानी में ही व्यक्ति को गरूर अधिक पनपाता है। देखिए दिनकरजी क्या कहते हैं—

---

1. उर्वशी, 'दिनकर' पृ. 17-18।
2. वही, पृ. 35।
3. कुरुक्षेत्र, तृतीय सर्ग पृ. 35।
4. वही, पृ. 36।
5. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ. 65।

यौवन चलता सदा गर्व से
सिर ताने शर खींचे
झुकने लगता किन्तु क्षीणबल
वय विवेक के नीचे ।।[1]
बुद्धि विलखते उर का चाहे
जितना करे प्रबोध
सहज नहीं छोड़ती प्रकृति
लेना अपना प्रतिशोध ।।[2]

प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय, शमशेर, कुंवर नारायण, रघुवीरसहाय, गिरिजा कुमार माथुर, नागार्जुन आदि ने अपने काव्य में चमत्कार एवं विचार-प्रभाव पर अधिक बल दिया है, लेकिन सूक्तियों की सृजना बहुत कम रही है। वह चमत्कार सिर्फ वैचारिक या शब्दपरक भर ही रह गई है।

वस्तुत: आज के नवीन काव्य, जिसे नई कविता के नाम से भी अभिहित किया जाता है, में प्रतीकात्मकता, बिम्बविधान एवं ज्यों का त्यों चित्रण प्रमुख रहता है। फिर कविता में आज जीवनगत तमाम असंगतियाँ एवं व्याततात्रों के प्रवेश के बावजूद कुछ ऐसे तत्त्व भी हैं जिनके बल पर मानव मस्तिष्क और हृदय के समीप उसका महत्त्व बना हुआ है। वे तत्त्व हैं मनुष्य के अन्तर्गत की अभिव्यक्ति, उसके मन की भूख और प्यास।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम देखते हैं, संस्कृत काव्य में जितनी प्रचुरता सूक्ति सृजना की रही है उतनी प्राकृत-काव्य में नहीं रही। फिर भी पालि-अपभ्रंश काव्यों की अपेक्षा प्राकृत में सूक्तियों की बहुलता दृष्टिगोचर होती है। ये सब सूक्तियाँ विभिन्न विषय-परक रही हैं तथा कवि इनका प्रयोग करने से चूके नहीं हैं। वस्तुत: ये उनके जीवन का एक अंग स्वरूप रही हैं। हिन्दी साहित्य में भी यह धारा प्रभावित रही है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिककाल के कवियों ने इन्हें यथोचित स्थान दिया है।

(ई) प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता

प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता की जानकारी हेतु सर्वप्रथम यह जानना होगा कि अब तक तुलसी एवं उनकी रचनाओं पर किन-किन दृष्टियों से अध्ययन हो चुका है तथा प्रस्तुत अध्ययन पर अब तक कितना प्रकाश डाला जा चुका है।

---

1. कुरुक्षेत्र, तृतीय सर्ग, पृ. 67।
2. वही, पंचम सर्ग, पृ. 90।

सर्वप्रथम हम तुलसीदास एवं उनकी रचनाओं प्रमुखतः 'मानस' पर अब तक किए गए कार्य (ग्रन्थों) की सूची प्रस्तुत करेंगे, तदुपरान्त तुलसी की सूक्तियों पर किए गए कार्यों की झलक दर्शायी जाएगी।

तुलसी एवं उनकी रचनाओं पर किए गए कार्यों की विवरण तालिका :

अब तक तुलसी एवं उनकी रचनाओं से सम्बन्धित निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके हैं—

1. तुलसी ग्रंथावली : सं. रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
2. तुलसीदास : चन्द्रवली पांडे, शक्ति कार्यालय, दारागंज, प्रयाग, सं. 2005।
3. तुलसी की जीवन भूमि : चन्द्रवली पांडे, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं. 2011।
4. तुलसीदास भाग 1 व 2 : माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, 1953 ई.।
5. तुलसीदास : भारत भूषण 'सरोज'
6. तुलसीदास : रमेश चन्द्र 'दुबे'
7. तुलसीदास : रामरतन भटनागर।
8. तुलसीदास : राजवली पांडे।
9. तुलसी : सं. उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 1962 ई.।
10. तुलसी : राम बहोरी शुक्ल हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1949 ई.
11. तुलसी : व्यक्तित्व : और विचार : हरिकृष्ण अवस्थी।
12. तुलसी के चार दल : सद्गुरुशरण अवस्थी, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, 1935 ई.।
13. तुलसीदास जीवनी और विचारधारा : राजाराम रस्तोगी, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, सं. 2020।
14. तुलसी चिन्तन और कला : सं. इन्द्रनाथ मदान।
15. तुलसी रसायन : भागीरथ मिश्र, लखनऊ।
16. तुलसी की विचारधारा : उदयभानु सिंह।
17. तुलसी दर्शन : बलदेव प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं. 2005।

18. तुलसी दर्शन मीमांसा : उदयभानु सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं 2018।

19. तुलसीदास श्रौर उनका युग : राजपति दीक्षित, ज्ञान भण्डार लि॰ बनारस, सं. 2009।

20. तुलसी साहित्य श्रौर सिद्धान्त : यज्ञदत्त शर्मा।

21. तुलसी साहित्य की भूमिका : रामरतन भटनागर।

22. तुलसी श्रौर उनका साहित्य : विमल कुमार जैन।

23. तुलसी श्रौर उनकी कविता : रामनरेश त्रिपाठी।

24. तुलसीदास श्रौर उनका काव्य : रामनरेश त्रिपाठी, राज्यपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1958 ई.।

25. तुलसीदास श्रौर उनके काव्य : रामदत्त भारद्वाज, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली 1964 ई.।

26. तुलसीदास का कथा-शिल्प : रांगेय राघव, साहित्य प्रकाशन दिल्ली, 1959 ई.।

27. तुलसीदास का प्रगीतकाव्य : विनयकुमार, श्रौरियन्टल बुक डिपो, दिल्ली, 1962 ई.।

28. तुलसीदास की श्रलंकार योजना : नरेन्द्रकुमार, दिल्ली (श्रप्रकाशित शोध-प्रवन्ध)

29. तुलसीदास की भाषा : देवकीनन्दन श्रीवास्तव, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं. 2014।

30. तुलसी साहित्य रत्नाकर : रामचन्द्र द्विवेदी, सरस्वती सत्साहित्य प्रकाशन मण्डल, पटना, सं. 1986।

31. तुलसी का शिक्षा दर्शन : डॉ. शम्भूनाथ शर्मा।

32. तुलसी संदर्भ : माताप्रसाद गुप्त।

33. तुलसी सौरभ : किरन कुमारी गुप्ता।

34. तुलसी चर्चा : रामदत्त भारद्वाज।

35. तुलसी चरित : महादेव पाण्डेय।

36. तुलसी सतसई : बिहारीलाल चौबे।

37. तुलसी सतसई : सं. रामचन्द्र द्विवेदी, सरस्वती भण्डार, पटना, सं. 1985।

38. तुलसी की समन्वय साधना : राजेन्द्रसिंह।

39. तुलसी सूक्ति सुधा : सं वियोगी हरि, साहित्य सेवा सदन बनारस, 1986 वि.।

40. तुलसी दोहावली : टीका भगवानदीन, दूसरा संस्करण।

41. तुलसी हितोपदेश : सं. द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण।
42. तुलसी का काव्य सौंदर्य : डॉ. चन्द्रभूषण तिवारी।
43. तुलसी के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण : अम्बिका प्रसाद बाजपेयी। (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध)
44. तुलसी के काव्य में वर्णित भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक पक्ष का अध्ययन : श्रीमती सरोज रामप्रसाद खण्डेलवाल (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध)
45. क्रान्तिकारी तुलसी : नारायणसिंह।
46. तुलसी शब्दसागर : हरगोविन्द तिवारी, प्रयाग, 1954 वि.।
47. हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास : रामचन्द्र मिश्र।
48. गोस्वामी तुलसीदास : रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं. 2008।
49. गोस्वामी तुलसीदास : रामदत्त भारद्वाज, भारतीय साहित्य, दिल्ली, 1962 ई.।
50. गोस्वामी तुलसीदास : शिवनन्दन सहाय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, सं. 1017।
51. गोस्वामी तुलसीदास : श्यामसुन्दर दास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1952 ई.।
52. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय की साधना : व्यौहार सिंह, प्रथम संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 2005 वि.।
53. गोस्वामी तुलसीदास : शिवनन्दनसहाय।
54. गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक आदर्श : सुधा शुक्ल।

तुलसी के 'रामचरितमानस' के सम्बन्ध में अब तक जो कार्य हुआ, उसका विवरण इस प्रकार है—

1. रामचरितमानस की भूमिका : रामदास गौड, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, बनारस, 1950 ई.।
2. रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत : सीताराम कपूर (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध), आगरा।
3. रामचरितमानस पर पौराणिक प्रभाव : विजयबहादुर अवस्थी (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध), दिल्ली।
4. रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन : राजकुमार पाण्डेय, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1963 ई.।

5. रामचरितमानस का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : जगदीश 'कनक'
6. रामचरितमानस के विशिष्ट संदर्भों में तुलसी की शिल्पकला का अध्ययन : हरिहर नाथ हुक्कू ।
7. रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम : कु. सी. वादवील ।
8. रामचरितमानस 'सिद्धान्त तिलक' : सं. श्रीकान्तशरण, पुस्तक भण्डार, पटना 4, सं. 2016 ।
9. रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन : शिवकुमार शुक्ल, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1964 ई. ।
10. रामचरितमानस का लोकतात्त्विक अध्ययन : कु० विमला सिन्हा ।
11. रामचरितमानस और रामचन्द्रिका तुलनात्मक अध्ययन : जगदीश नारायण ।
12. रामचरितमानस और साकेत : परमलाल गुप्त ।
13. रामचरितमानस : शम्भुनारायण चौबे ।
14. रामचरितमानस : सं. माता प्रसाद गुप्त, साहित्य कुटीर, प्रयाग, 1949 ई. ।
15. रामचरितमानस : सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, सर्व भारतीय काशिराज न्यास वाराणसी, सं. 2018 ।
16. रामचरितमानस : अंजनीनन्दन शरण, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 2017 ।
17. रामचरितमानस 'विजयाटीका' : सं. विजयनंदन त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास नेपाली खपरा बनारस, सं. 2011 ।
18. रामचरितमानस टिप्पणी : रामबालक दास ।
19. रामचरितमानस 'सटीक' : महावीरप्रसाद मालवीय ।
20. रामचरितमानस : कैलाशनाथ मिर्जापुर ।
21. रामचरितमानस : भद्रदत्त वैद्य भूषण ।
22. रामचरितमानस : मुन्नालाल उपाध्याय ।
23. रामचरितमानस : श्री कोदनराम संपादित ।
24. रामचरितमानस : रामचरिणदास ।
25. रामचरितमानस : भगवतदास खत्री ।
26. रामचरितमानस : रामकिशोर शुक्ल ।

27. रामचरितमानस : गीता प्रेस, गोरखपुर।

28. रामायन सटीक शीलावृत्ति : बाबा हरिदास।

29. अध्यात्म रामायन का रामचरितमानस पर प्रभाव : रविवत निर्मल। (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध)

30. कृतिवासी बंगला रामायण और मानस का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ. रमानाथ त्रिपाठी।

31. वाल्मीकि और तुलसी साहित्यिक मूल्यांकन : रामप्रकाश अग्रवाल, प्रकाशन प्रतिष्टान, मेरठ, 1977 वि.।

32. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन : विद्या मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय 1963 ई.।

33. ए स्टडी ऑफ तुलसीदास विथ स्पेशल रेफ्रेंस टू रामचरितमानस : हरिहर नाथ हुक्कू।

34. मानस की राम कथा : परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, 1953 ई.।

35. मानस की रूसी भूमिका : अनु. केशरी नारायण शुक्ल, विद्या मंदिर, लखनऊ, 1955 ई.।

36. मानस दर्शन : श्रीकृष्णलाल, आनन्द पुस्तक भवन, बनारस, सं. 2006।

37. मानस पीयूष : अंजनी नन्दन शरण।

38. मानस मीमांसा : रजनीकांत शास्त्री, किताब महल, इलहाबाद, 1949 ई.।

39. मानस में राम कथा : बल्देव प्रसाद मिश्र, बंगीय हिन्दी परिषद, कलकत्ता, 1952 ई.।

40. मानस माधुरी : बल्देव प्रसाद मिश्र।

41. मानस मन्थन : बल्देव प्रसाद मिश्र।

42. मानस रहस्य : जयराम दास दीन।

43. मानस की कथावस्तु : जगन्नाथ राय शर्मा।

44. मानस प्रचारिका टीका : जानकीदास।

45. मानस संजीवनी टीका : ज्वालाप्रसाद मिश्र।

46. मानस विजय टीका : सुधाकर द्विवेदी।

47. मानस मयंक : शिवलाल पाठक।

48. मानस हंस : यादव शंकर जामदार ।
49. थियोलोजी ग्रॉफ तुलसीदास : जे. ई. कारपेन्टर ।
50. दि रामायन ग्रॉफ तुलसीदास : जे. एम. मेकक्राई ।
51. दि होली लेक ग्रॉफ दि एक्ट्स ग्रॉफ राम : डगलस पी. हिल ।
52. दि रामायन ग्रॉफ तुलसीदास : एफ. एस. ग्राऊन ।
53. दि रामचरितमानस एण्ड दि रामायन : एल. पी. टेसीटेरी ।
54. इण्डियन एटीक्वेरी नोट्स ग्रॉन तुलसी : जी. ए. ग्रियर्सन
55. नोट्स ग्रान तुलसी : डॉ. जी. ए. ग्रियर्सन ।
56. रामायन ग्रॉफ तुलसी एण्ड दि बाइबिल ग्रॉफ नॉर्दर्न इंडिया : जे. एम. मैकफी ।

97021

तुलसी का सूक्ति विषयक ग्रध्ययन :

हिन्दी साहित्य जगत में ग्रब तक किसी भी कवि की रचनाग्रों पर सूक्ति विषयक ग्रनुसंधान नहीं हो पाया है । गोस्वामीजी कि कृतियाँ भी इसका ग्रपवाद नहीं । हाँ, इस सम्बन्ध में संकलन-कार्य ग्रवश्य हुग्रा है । शरत[1], प्रेमचन्द[2] ग्रौर दिनकर[3] के साहित्य में प्रयुक्त सूक्तियों के संकलन प्रकाशित हैं । गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों की सूक्तियों का संकलन भी वियोगी हरि ने ग्रवश्य किया है ।[4]

उपर्युक्त विवरण से सूचित होता है कि ग्रब तक तुलसी एवं उनके 'मानस' पर करीबन एक सौ दस (110) पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, जिनमें कुछ ग्रप्रकाशित[5] शोध-ग्रन्थ भी हैं ।

यह सारा कार्य तुलसी एवं उनकी रचनाग्रों के विविध पक्षों—जीवनी, भक्ति तत्त्व, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, तुलनात्मक, भाषा वैज्ञानिक, छन्दपरक, सौन्दर्य शास्त्रीय, ग्रालंकारिक, कोषपरक ग्रादि पर व्यापक रूप से हुग्रा है ।

---

1. शरत की सूक्तियाँ : रामप्रकाश जैन ।
2. प्रेमचन्द सुभाषित ग्रौर सूक्तियाँ : ग्रनु. श्रीशरण ।
3. नये सुभाषित : रामधारी सिंह दिनकर ।
4. तुलसी सूक्ति सुधा : सं. वियोगी हरि, साहित्य सेवा सदन, बनारस, 1986 वि. ।
5. जिनका संकेत (तालिका में) कोष्ठक में दे दिया गया है ।

'मानस' पर भी कई दृष्टियों से विचार किया गया है, पर उसके सूक्ति पक्ष को लेकर अब तक कोई अध्ययन नहीं हुआ है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इस दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

सूक्तियों की दृष्टि से उनका 'रामचरितमानस' अधिक समृद्ध बन पड़ा है। इसमें जीवन के हर व्यापार का खुला चित्रांकन किया गया है तथा उसकी पुष्टि हेतु सूक्तियों का सहारा लिया गया है। इसके लिए कवि ने जीवन के समस्त क्रिया-कलाप को बड़ी नजदीकी से देखा है। और, तब कहीं जाकर अपने चिन्तन-मनन के द्वारा उस तथ्य को भाषाबद्ध कर, अपने 'मानस' रूपी हार में सँजो-सँजोकर जनसाधारण को समर्पित किया है। तुलसी की यह सूक्ति-सृजना एकान्त में बैठ कर नहीं की गई है। जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकताओं ने इनको जन्म दिया है। सूक्ष्म निरीक्षण, व्यापक अध्ययन और प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ज्ञान का जो साक्षात्कार हुआ, वही इन मनोरम सूक्तियों के रूप में प्रकट हुआ है।

वस्तुतः उनके काव्योद्यान में सूक्तियों के जो कमनीय कुसुम विकसित हुए हैं, उन्होंने अपनी मधुर सुगन्ध से समस्त लोक-जीवन को सुवासित कर दिया है। हमने अपने आगे के खण्डों में 'मानस' की सूक्तियों के विविध पक्षों पर विवेचन प्रस्तुत करते हुए तुलसी के सूक्ति-विषयक प्रभाव ग्रहण एवं मौलिकता पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

———

द्वितीय खण्ड

रामचरितमानस' की सूक्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन

●

2. 'रामचरितमानस' : नामकरण, रचना-हेतु और महत्व।
3. 'मानस' की संरचना में सूक्तियों की स्थिति।
4. 'मानस' की सूक्तियों का वर्गीकरण और अध्ययन।
5. समाजपरक सूक्तियाँ।
6 राजनीतिपरक सूक्तियाँ।
7. धर्मपरक सूक्तियाँ।
8. दर्शनपरक सूक्तियाँ।
9. भक्तिपरक सूक्तियाँ।
10. मनोविज्ञानपरक सूक्तियाँ।
11. प्रकृतिपरक सूक्तियाँ।
12. विविध विषयक सूक्तियाँ।

2. 'रामचरितमानस' : नामकरण, रचना-हेतु और महत्व

गोस्वामी तुलसीदास जी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने गए हैं। वे वास्तव में हिन्दी साहित्याकाश के 'रवि' हैं, जिनके प्रकाश से समस्त हिन्दी जगत् प्रकाशित है। उन्होंने अपनी कोमल तूलिका से काव्य-पट पर जो भावचित्र अंकित किए हैं, उनसे समस्त हिन्दी साहित्य गौरवान्वित हुआ। उनके साहित्य में भूत के आवरण में वर्तमान छिपा हुआ है जिसमें भविष्य के संकेत दृष्टिगोचर होते हैं। उनके लिए तभी तो कहा गया है—

'कविता करके तुलसी न लसे
कविता लसी पा तुलसी की कला।'

इस महान् कवि की कृति-वाटिका में इनका 'रामचरितमानस' सबसे उत्कृष्ट पुष्पराज है।

रामचरितमानस

रचना-काल :

'रामचरितमानस' का रचनाकाल सं. 1631 माना गया है। स्वयं गोस्वामीजी ने कहा है कि राम कथा का आरम्भ संवत् 1631 में किया गया।[1]

नामकरण :

उन्होंने अपनी इस कृति का नाम 'रामचरितमानस' रखा जिसका अर्थ है—राम का चरित्र यानी राम के चरित्र का मानस, ऐसा सरोवर जिसमें राम कथा का पान किया जा सके। 'मानस' में आदि से अन्त तक रामचरित्र का ही विशद् वर्णन किया गया है। कवि ने इसका गुणगान स्थल-स्थल पर अपने निहित पात्रों द्वारा कराया है। श्री महादेव जी ने इसको हृदयांकित कर रखा था, जिसे सुअवसर पाकर पार्वती जी से कहा, इसी से प्रसन्न होकर इसका नाम 'रामचरितमानस' रखा।[2]

रचना का हेतु :

जिस समय तुलसीदास जी का आविर्भाव हुआ, उस समय समाज की सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक स्थिति दयनीय दशा में थी। गोस्वामी जी ने इस समय का

---

1. संवत् सोरह सै इकतीसा। करउ कथा हरिपद धरि सीसा।।

—बाल. का. 34.2

2. रचि महेश निज मानस राखा। पाइ सुसमय सिवासन भाषा।।
तातें राम चरित मानस बर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर।।

—बाल. का. 35.6।

यह नग्न दृश्य अपनी आँखों से देखा, वे एकदम घबरा उठे। परिणामस्वरूप राम की भक्ति में लीन हो गए और पथ-प्रदर्शिका के रूप में 'रामचरितमानस' की रचना कर डाली। भवसागर पार होने के लिए यह नाव सदृश बना दी जिससे पार होने वाला राही अपनी मंजिल पा सके। यह कथा सर्बमनोरथों को सिद्ध करने वाली तथा कलिमल नाशक है। यह सबको सर्वदा हितप्रद है, लेकिन गोस्वामी जी ने इस हेतु से ही इसका सृजन नहीं किया। उन्होंने तो अन्तःकरण के सुख के लिए समस्त वेद, पुराण, निगम आदि का निचोड़ भाषाबद्ध कर, 'मानस' में भर दिया है। जैसा कि वे स्वयं कह उठे हैं—

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्
रामायणे निगदितं कचिदन्यतौऽपि
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनेति ।।[1]

इतना ही नहीं, उन्होंने तो यह भी स्वीकारा है कि यह रचना सब गुणों से रहित है, इसमें बस जगत्-प्रसिद्ध एक गुण है वह है श्री रघुनाथ जी का उदार नाम, जो अत्यन्त पवित्र है, वेद-पुराणों का सार है, कल्याण का भवन है और अमंगलों को हरने वाला है। उनकी यह कथा कल्याणप्रद एवं कलियुग के पापों का शमन करने वाली है। उसे विचार कर उत्तम बुद्धि वाले पुरुष जिनका निर्मल ज्ञान है, श्रवण करेंगे।[2]

इस 'मानस' में चार घाट एवं सात सीढ़ियाँ बना दी गई हैं जिससे इच्छुक प्राणी निमज्जन कर सके तथा अपने जीवन को सार्थक बना सके। चार घाट अर्थात् चार श्रोता (पार्वती, भारद्वाज, गरुड़, एवं संत जन हैं) तथा चार वक्ता (शिव, याज्ञवल्क्य, काकभुशुण्डि और तुलसीदास) हैं।

सात सीढ़ियाँ सात काण्ड (बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड, लंका काण्ड एवं उत्तर काण्ड) हैं तथा चार प्रकार के भक्त (आर्त, जिज्ञासु, ज्ञानी एवं अर्थार्थी) हैं।

---

1. बाल का., श्लोक 7।
2. भनिति मोर सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।
   सो बिचारि सुनि हंहि सुमति जिन्ह कैं बिमल बिबेक ।।

   —बा. का. 9

   यहि मह रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा।
   मंगल भवन अमंगल हारी।
   मंगल करनि कलिमल हरन तुलसी कथा रघुनाथ की।

   —बा. का. 10.1

रामचरित-महिमा :

वैसे तो संसार में राम-कथा की कोई सीमा नहीं (राम-कथा तो अनन्त है) क्योंकि अब तक करोड़ों अवतार हुए और उनके अनुसार अनेकों रामायण तथा गाथाएँ रहीं ।[1] लेकिन, रामकथा 'चरित्र' उनमें से अपूर्व रही ।

श्रीराम अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथाओं का विस्तार भी असीम है ।[2] उनमें गुणों के समूह कुतर्क-कुचाल कुमार्ग, कलियुग के कपट, दंभ, और पाखण्ड को जलाने के लिए प्रचण्ड अग्नि सदृश है ।[3] उनका चरित्र पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों के समान सभी को सुखप्रद है लेकिन सज्जन रूपी कुमुदिनी एवं चकोर के चित्त के लिए तो परम लाभकारक है ।[4] इसके श्रवण से काम, मद और दंभ सभी नष्ट हो जाते हैं, तथा शान्ति मिलती है । जिसका मन रूपी हाथी विपद रूपी दावानल में जल रहा हो वह यदि 'रामचरितमानस' रूपी सरोवर में डुबकी लगा ले तो सुखी हो जाए । यह मानस मुनियों का प्रिय तथा तीनों प्रकार के दोषों,

---

1. कथा अलौकिक सुनहि जे ग्यानी । नहि आचरजु करहि अस जानी ।
   रामकथा के मिति जग नाही । असि प्रतीति तिन्ह के मन माँही ।।
   नाना भांति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ।।
   —बाल. का. 33, 2.3

2. राम अनंत अनंत गुन अमित कथा विस्तार ।
   सुनि आचरजु न मानिहहि जिन्ह के विमल विचारि ।।
   —बा. का. 33

3. कुपथ कुतर्क कुचालि कलि कपट दंभ पापंड ।
   दहन राम गुन ग्राम जिमि इधन अनल प्रचण्ड ।।
   —बा. का. 32 (क)

4. रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु ।
   सज्जन कुमुद चकोर चित हित विसेषि बड़ लाहु ।।
   —बा. का. 32 (ख)

दु:खों और दरिद्रता को तथा कलियुग की कुचालों और सब पापों को नाश करने वाला है ।[1]

मानस-रूपक-महात्म्य :

'रामचरितमानस' के नाम का क्या महात्म्य है इसको गोस्वामी जी ने एक रूपक द्वारा प्रदर्शित किया है । जिस हेतु से इसका नाम 'रामचरितमानस' रखा गया, वह यह है—

यह वह 'मानस' (सरोवर) है जिसमें निमज्जन करके जीव अपने स्वरूप में यानी परमात्मा में लीन हो जाता है, तथा भवसागर से मुक्ति पा जाता है । जिस भूमि पर यह मानस स्थित है वह सात्विकी बुद्धि है, हृदय उसकी गहराई है, वेद, पुराण आदि समृद्ध हैं जिससे मेघरूपी संत श्री राम के सुयश रूपी सुन्दर, मधुर, मनोहर, मंगलकारी जल की वृष्टि करते हैं । जल की निर्मलता सगुण रूप लीला है जो भलों की नाशक है । जल की मधुरता और सुन्दर शीतलता प्रेम-भक्ति है ।[2]

सत्कर्मरूपी धान के हेतु ऐसा जल लाभप्रद है । जब वह बुद्धिरूपी पृथ्वी पर गिरता है तो फिर सिमट कर कान रूपी मार्ग से बहता हुआ हृदय रूपी सागर में स्थित हो जाता है ।[3] इसमें पैठने हेतु चार घाट तथा सात सीढ़ियाँ हैं, जिनके द्वारा

---

1. सुनत नसाहि काम मद दंभा । सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा ।।
मन करि विषय अनल बन जरई । होइ सुखी जो एहि सरपरई ।।
राम चरित मानस मुनि भावन । विरचेउ संभु सुहावन पावन ।।
विविध दोष दुख दारिद दावन । कलि कुचालि कुलि कलुप नसावन ।।

—बा. का. 35.3, 4, 5 ।

2. सुमति भूमि थल हृदय अगाधू । वेदपुरान उदधि धन साधू ।।
वरषहि राम सुजस वर वारी । मधुर मनोहर मंगलकारी ।।
लीला सगुन जो कहहि वखानी । सोई स्वच्छता करइ मलहानी ।।
प्रेम भगति जो वरनि न जाई । सोइ मधुरता सु सीतलताई ।।

—बा. का. 36.2, 3 ।

3. जो जल सुकृत सालि हित होई । राम भगत जन जीवन सोई ।।
मेघा मंहि गत सो जल पावन । सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ।।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना । सुखद सीत रुचि चारु चिराना ।।

—बा. का. 36.4, 5 ।

जीव उस सरोवर के जल का पान कर सके।[1] यह जल सिर्फ कोरा जल मात्र नहीं, अमृत है जो श्री राम सीता के सुयशगान का प्रतिफल है। तरंगें निहित उपमाएँ हैं, सुन्दर चौपाईयाँ बिखरी हुई कमलिनी हैं एवं कवि उक्तियाँ सुन्दर मणि उत्पन्न करने वाली सीपियाँ हैं।[2]

छन्द सोरठे-दोहे कमलों के समूह हैं। अनुपम अर्थ ऊँचे भाव और सुन्दर भाषा ही पराग, मकरन्द और सुगन्ध हैं।[3] सत्कर्मों के पुञ्ज भौंरों की सुन्दर टोलियाँ हैं। ज्ञान-वैराग्य और विचार सुन्दर हंस है। कविता की ध्वनि वक्रोक्ति, गुण और जाति ही अनेकों प्रकार की मनोहर मछलियाँ हैं।[4]

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - ये चारों ज्ञान, विज्ञान को विचार कर कहने की प्रणाली है। काव्य के नवरस, जप, तप, योग, वैराग्य के प्रसंग—ये सब इस सरोवर के सुन्दर जलचर जीव हैं।[5] सुकृती (पुण्यात्मा) साधुओं एवं श्रीराम नाम के गुणों का

---

1. सुठि सुन्दर संवाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥
सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मनमाना॥
—बा. का. 36, 37.1।

2. राम सीय जल सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुनइनि सघन चारु चौपाई। जुगति मंजुमनि सीप सुहाई॥
—बा. का. 37.2।

3. छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरन्द सुबासा॥
—बा. का. 37.3।

4. सुकृत पुञ्ज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला।
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभांती॥
—बा. का. 37.4।

5. अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
—बा. का. 37.5।

गान ही विचित्र जल-पक्षियों के समान है। चारों ओर की अमराई (बगीची) संतों की सभा है। श्रद्धा वसन्त ऋतु है।[1]

नाना प्रकार की भक्ति का निरूपण और क्षमा, दया, तथा दम लताओं के मण्डप हैं। मन का निग्रह यम नियम ही उनके फूल हैं, ज्ञान फल है और श्री हरि के चरणों में प्रेम ही इस ज्ञान रूपी फल का रस है।[2] इस 'मानस' में और भी अनेक प्रसंगों की कथाएँ हैं। वे ही इसमें तोते, कोयल आदि रंग-बिरंगे पक्षी हैं। कथा का रोमांच वाटिका, वाग और वन हैं, सुन्दर पक्षियों का विहार ही सुख है—जिनका माली निर्मल मन है जो प्रेम रूपी जल से सुन्दर नेत्रों द्वारा उनको सींचता है।[3]

रखवारे चतुर गायक हैं। सुनने वाले चतुर स्त्री-पुरुष इसके उत्तम देवता हैं। दुष्ट अभागे बगुले और कौए हैं, जो इसके समीप नहीं जाना चाहते क्योंकि यहाँ (मानसरोवर में) घोंघे, मेंढक और सेवार के समान विषय रस की नाना कथाएँ नहीं हैं। इसी कारण बेचारे कौए और बगुलों रूपी विषयी लोग वहाँ आते हुए हृदय में हार मान जाते हैं। इस सरोवर तक आने में कठिनाइयाँ बहुत हैं। बिना भगवत्-कृपा के व्यक्ति यहाँ नहीं आ सकता।[4] बुरा मार्ग कुसंग है, कुसंगियों के वचन ही बाघ

---

1. सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जल विहग समाना।।
संत सभा चहुं दिसि अमराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई।।
—बा. का. 37.6।

2. भगति निरूपन विविध विधाना। क्षमा दया दम लता बिताना।
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरिपद रति रस वेद बखाना।।
—बा. का. 37.7।

3. औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहु बरन विहंगा।।
पुलक वाटिका वाग बन सुख सु विहंग बिहारु।।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु।।
—बा. का. 37.8।

4. जे गावहि यह चरित संभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे।।
सदा सुनहि सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी।।
अति खल जे विषयी बग कागा। एहि सर निकट न जाहि अभागा।।
संबुक भेक सेकर समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना।।
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे।।
आवत एहि सर अति कठिनाई। रामकृपा बिनु आइ न जाई।।
—बा. का. 38. 1, 2, 3।

सिंह और सर्प हैं। घर-गृहस्थी के कार्य दुर्गम पहाड़ हैं जो कि यहाँ तक नहीं आ पाने देते। बीहड़ वन मोह, मद और मान है। नाना प्रकार के कुतर्क भयानक नदियाँ हैं, लेकिन जिनके पास श्रद्धा रूपी राह खर्च नहीं है, संतों का साथ नहीं है एवं प्रभु-प्रेम नहीं है, उनके लिए यह मानस अत्यन्त अगम है।[1]

यदि कोई यहाँ तक पहुँच भी जाय तो पहुँचते ही उसे नींद रूपी जूड़ी आ जाती है। हृदय में मूर्खता रूपी तेज ठण्ड लग उठती है, जिससे वह स्नान करने में असमर्थ रहता है, परन्तु ईश कृपा हो जाए तो ये सब विघ्न फिर उसे नहीं व्यापते। तब वह उस सरोवर में निमज्जन कर त्रितापों से मुक्त हो जाता है।[2] जिनका प्रभु चरणों में दृढ़ अनुराग है वे उस सरोवर को नहीं त्यागते। इस सरोवर में स्नान करने के लिए प्रथम सत्संग अनिवार्य है।[3] ऐसे मानस सरोवर को हृदय रूपी चक्षुओं से निहार कर, उसमें गोता लगा कर बुद्धि को निर्मल कर, हृदय को आनन्दित एवं उत्साहित कर प्रेमावेग में समा जाना चाहिए। जैसा कि स्वयं गोस्वामी जी कर पाये तभी तो वह सुन्दर कविता रूपी नदी निकली जिसमें श्री रामचन्द्रजी का निर्मल यश रूपी जल भरा है। उसका (कविता रूपी नदी नाम सरयू है जो सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की जड़ है) इसके दो किनारे--लोकमत और वेदमत हैं।[4]

---

1. कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला।।
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला।।
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना।।
जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुं मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ।।
--बा. का. 38, 4. 5।

2. जौ करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नीद जुड़ाई होई।।
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा।।
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना।।
जौ बहोरि कोई पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा।।
सकल विघ्न नहिं व्यापहि ते ही। राम सुकृपा बिलोकहि जे ही।।
सोइ सादर सर मज्जन करई। महाघोर त्रयताप न जरई।।
--बा. का. 39, 1., 2. 3।

3. ते नर यह सर तजहि न काऊ। जिन्ह के राम चरन भल भाऊ।।
जो नहाइ चह एहि सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई।।
--बा. का 39. 4।

4. चली सुभग कविता सरिता सो। राम विमल जस जल भरिता सो।।
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक वेद मत मंजुल कूला।।
--बा. का. 39. 6।

मानस-सरोवर की कन्या सरयू बड़ी पावन है। वह कलियुग के पाप रूपी तिनकों और वृक्षों को उखाड़ फेंकती है। तीनों प्रकार के श्रोताओं का समाज ही इस नदी के किनारे पर बसे हुए पुरवे, गाँव और नगर हैं। संतों की सभा ही सब सुन्दर मंगलों की जड़ अनुपम अयोध्या है।[1] सुन्दर कीर्ति रूपी सरयू का मूल मानस (रामचरित) है और यह (रामभक्ति) गंगाजी में समाविष्ट है।[2] शिव-पार्वती विवाह के बाराती इस नदी के असंख्य जलचर जीव हैं। राम जन्म की आनन्द बधाइयाँ ही इस नदी के भंवर और तरंगों की मनोहरता हैं। चारों भाइयों के बालचरित्र रंग बिरंगे खिले-फूले कमल हैं। महाराज दशरथ जी तथा उनकी रानियाँ और कुटुम्बियों के सत्कर्म ही भ्रमर और जल-पक्षी हैं।[3]

सीता स्वयंबर की सुन्दर कथा नदी की सुहावनी छवि है, विचारपूर्ण प्रश्न नदी की नावें हैं, विवेकयुक्त उत्तर चतुर केवट हैं।[4] परशुराम जी का क्रोध नदी की भयानक धारा हैं, श्रीराम के श्रेष्ठ वाक्य ही सुन्दर घाट हैं। भाइयों सहित श्रीराम के विवाह का उत्साह नदी की बाढ़ है, जो सभी को सुखकारक है। राजतिलक के लिए जो मंगलसाज सजाया गया, वह मानो पर्व के समय नदी पर इकट्ठे हुए यात्री-गण हों। कैकेई की कुबुद्धि ही इस नदी की काई है जिसके फलस्वरूप भारी विपत्ति पड़ी। सम्पूर्ण उत्पातों को शान्त करने वाला भरतजी का चरित्र (नदी तट पर किया जाने वाला) जप–यज्ञ है। कलियुग के पापों और दुष्टों के अवगुणों के जो वर्णन है

---

1. नदी पुनीत सुमानसनंदिनि। कलिमल तृन तरुमूल निकंदिनि ।।
   श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल ।।
   संत सभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल ।।
   —बा. का. 39. 7।

2. राम भगति सुरसरितहि जाई। मिली सु कीरिति सरजु सहाई ।।
   सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन ।।
   मानस मूल मिली सुरसरि ही। सुनत सुजन मन पावन करिही ।।
   —बा. का. 40, 1. 3।

3. उमा महेस विवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाती ।।
   रघुबर जनम अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहर ताई ।।
   बालचरित चहुँ बंधु के बनज विपुल बहुरंग ।।
   नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर वारि विहंग ।।
   —बा. का. 40. 4।

4. सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छवि छाई।
   नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका ।।
   --बा. का. 41. 1।

वे ही इस नदी के जल का कीचड़ और बगुले कौए हैं ।[1] यह कीर्तिरूपिणी नदी छहों ऋतुओं में मुग्धकारी है ।[2]

जिन्होंने इस (राम सुयश रूपी) जल से अपने हृदय को नहीं धोया, वे कायर कलिकाल के द्वारा ठगे गये । जैसे प्यासा हिरन सूर्य की किरणों के रेत पर पड़ने से उत्पन्न हुए जल के भ्रम को वास्तविक जल समझ कर पीने को दौड़ता है और जल न पाकर दुःखी होता है, वैसे ही वे (कलि-युग से ठगे हुए) जीव भी (विषयों के पीछे भटक कर) दुःखी होंगे ।[3]

इस प्रकार से गोस्वामी जी ने 'मानस' में वर्णित उपकरणों का सचित्र चित्रण प्रदर्शित किया है । वास्तव में उनका 'मानस' भक्तों, सन्तों और जिज्ञासुओं के लिए संजीवन बूटी सदृश है ।

महत्ता :

गोस्वामीजी कृत 'रामचरितमानस' संसार में अपने ढंग की निराली कृति है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र--चारों वर्णों और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास चारों आश्रम वालों के लिए वेद, स्मृति, पुराण के उपदेशों का सारभूत धर्मग्रंथ है । अपनी कुछ निजी विशेषताओं के कारण यह इतना प्रचार पा गया है कि जनता की जिह्वा पर चाहे वह विद्वान 'प्राज्ञ' हो या अनपढ़ 'निरक्षर' कुछ चौपाईयाँ स्वतः ही नृत्य कर उठती हैं और वह उन्हें प्रायः गुनगुना उठता है । यही नहीं, प्रत्येक हिन्दू परिवार में इसकी एक प्रति अवश्य मिलेगी । यह हिन्दुओं का पावन ग्रंथ है जो कि आज विश्व में अपनी श्रेष्ठताओं के लिए विख्यात है ।

---

1. सुनि अनुकथन परस्पर होई । पथिक समाज सोई सरि सोई ।।
घोर धार भृगुनाथ रिसानी । घाट सुबद्ध राम बर बानी ।।
सानुज राम विवाह उछाहू । सो सुभ उमंग सुखद सब काहू ।।
राम तिलक हित मंगल साजा । परब जोग जनु जुरे समाजा ।।
काई कुमति केकई केरी । परी जासु फल बिपत्ति घनेरी ।।
समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग ।।
कलि अघ खल अवगुन कथन ते जल मल बग काग ।।
--बा. का. 41.2, 3, 4 ।

2. कीरति सरित छहूँ रितु रूरी । समय सुहावनि पावन भूरी ।
--बा. का. 42.1 ।

3. जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए । ते कायर कलिकाल बिगोए ।।
तृषित निरखि रवि कर भव बारी । फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ।।
--बा. का. 43.4 ।

इसमें रामकथा सिर्फ ऐतिहासिक कथा भर नहीं है वरन् मोह, संदेह और भ्रम को हरने वाली तथा भवसागर पार करा देने वाली है। मोह दूर करने के लिए साधारणत: वैराग्य, भ्रम दूर करने के लिए भगवत्कृपा अथवा भक्ति का सहारा लिया जाता है।[1]

इस कृति की सराहना पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने मुक्त कंठ से की है।

कारपेन्टर साहब अंग्रेजी विश्वकोश का उद्धरण देते हुए लिखते हैं--

'गोस्वामी तुलसीदास जी की रचना जन-समाज के लिए इतनी अनुकूल बन पड़ी है कि उनके वचनों को जनता कहावतों की तरह इस्तेमाल करती है। इतना ही नहीं बल्कि सैद्धान्तिक दृष्टि से भी उनकी रचना बड़ी उत्कृष्ट है। वर्तमान समय में हिन्दूत्व के अन्दर उनके उपदेशों का जो प्रभाव है, वह अन्य किसी का नहीं। अन्य साम्प्रदायिक साधुओं की तरह उन्होंने अपना कोई निज का सम्प्रदाय नहीं चलाया तथापि उनको भारत की तमाम हिन्दू जनता अपने चरित्र-निर्माण और धार्मिक कार्यों में एक बहुत ही आप्त और प्रामाणिक पथ प्रदर्शक मानती है।'[2]

बहुभाषाविज्ञ श्री ग्रियर्सन का कथन है—

'तुलसीकृत रामायण का उत्तर भारत की करोड़ों पढ़ी-लिखी और बे-पढ़ी-लिखी जनता में इतना अधिक मान और प्रचलन है कि जितना सामान्य ईसाइयों में बाइबिल का नहीं है।'[3]

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा है कि—तुलसी की रामायण मुझे अत्यन्त प्रिय है और उसे मैं अद्वितीय ग्रन्थ मानता हूँ। मानस का प्रत्येक पृष्ठ भक्ति से भरपूर है। वह अनुभवजन्य ज्ञान का भण्डार है। मैं तुलसीदासजी की रामायण को भक्ति मार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ। गीता और तुलसीदास की रामायण के संगीत से जो स्फूर्ति और उत्तेजना मुझे मिलती है, वैसी और किसी से नहीं मिलती।

हिन्दुओं के जितने भी धर्मग्रन्थ हैं, उसमें हिन्दू-जीवन, हिन्दू-आचार-विचार पर किसी एक ग्रन्थ का इतना व्यापक तथा चिरस्थायी प्रभाव नहीं पड़ा जितना तुलसीकृत रामायण का।[4]

---

1. निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करऊँ कथा भव सरिता तरनी।

—बाल. का. 31।

विरति विवेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी॥
बिनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल॥

—उत्तर का. 122।

2. थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास, पृ. 2।
3. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, पृ. 472।
4. रामायण और हिन्दू संस्कृति पर प्रभाव (डॉ. मुहम्मद हाफिज सय्यद), कल्याण, 13.3।

गोस्वामी जी का 'रामचरितमानस' हमारे लिए एक साथ ही काव्य, दर्शन तथा धर्मशास्त्र है। यह उस आध्यात्मिक त्रिवेणी का प्रतीक है जिनमें पुण्य सलिल गंगा भक्तिरस से आप्लावित काव्य का अन्तः सलिला सरस्वती पडितकगम्य दर्शन का तथा नील सलिला यमुना आपामरगम्य धर्मशास्त्रीय आचार अनुष्ठान का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार यह ग्रन्थ भक्ति, ज्ञान तथा कर्म तीनों तत्वों का तथ्य प्रतिपादित करता हुआ त्रिविध मानवों के परम कल्याण, ऐहिक तथा आमुष्मिक मंगल की विशद रूप से अभिव्यंजना करता है।'[1]

'मानस' अपने युग की महत्ता का निर्देश करने के साथ ही साधना, संस्कृति, नीति शास्त्र और धर्म का विश्वकोश है।'[2]

श्री रामदास शास्त्री का कहना है कि गोस्वामी का 'रामचरितमानस' अपने निर्माण काल से आजतक किसी सम्प्रदाय विशेष का धार्मिक ग्रंथ नहीं, अपितु मानव मात्र के स्वाध्याय का विषय रहा है। व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति समाज का समाज के प्रति देश का देश के प्रति, स्वजनों बन्धु बान्धवों के प्रति, गुरुओं और पूज्यों के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए, इसके लिए 'मानस' भारतीय विचारधारा का पथ प्रदर्शक रहा है। इसमें तार्किकों को तर्क की उच्च भूमिका, साहित्यज्ञों को कवित्व रस और अलंकार का भण्डार, भक्तों को अनन्य अलौकिक भक्ति की पावन सुर सरि धारा तथा अध्यात्मिक तत्वों का मधुर महासागर, समाज शास्त्रियों को समाज कल्याण के उपाय और नीतिज्ञों को नीति एवं सभ्याचरण का सरम उत्कर्ष मिलेगा। यह ज्ञान का वह सरोवर है जिसकी धवल धाराएँ विभिन्न मार्गों से प्रवाहित होती हुई मानव मन के कलमष को परिष्कृत कर उसे निर्मल स्वच्छ दर्पण की भाँति निखार देती है। 'मानस' भारतीय जीवन और संस्कृति का जीता जागता चित्र है हमारी उपासना के भाजन राम, हमारे संस्कारों की द्योतक पद्धति, हमारे नित्य के जीवन में घटित होने वाली सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाएँ एवं उनका मार्ग निर्देश तथा मानस मस्तिष्क को प्रेरित करने वाली विचारधाराओं का ज्ञान-सागर मानव-गागर में संयोजित करने का एक मात्र श्रेय गोस्वामी जी को प्राप्त हो।'[3]

---

1. मानस धर्म की आधार भूमि : आचार्य पं. बल्देव उपाध्याय, पृ 6। 'मानसभ यूख' त्रैमासिक शोध पत्रिका-सम्पादक, रामदास शास्त्री, 30 जून, 1964 ई.।
2. दे. मानस पर नयी दृष्टि : पं. पद्मनारायण आचार्य निहित 'मनस मयूख' त्रैमासिक शोध पत्रिका, सं. रामदास शास्त्री, 30 जून 1964, पृ. 51।
3. मानस का पाठानुसंधान 'निहित' : 'मानस मयूख' त्रैमासिक शोधपत्रिका, सं. रामदास शास्त्री, पृ. 91 (30 जून 1964)

तुलसी की प्रतिभा और काव्य कला इतनी उत्कृष्ट प्रमाणित हुई कि उनके बाद किसी भी कवि की राम चरित सम्बन्धी रचना उनके मानस की समानता में प्रसिद्धि प्राप्त न कर सकी।[1]

कुछ आलोचकों का कहना है कि तुलसी ने परिस्थितियों से प्रेरित होकर 'मानस' नहीं लिखा, उन्होंने तो भारतीय परम्परा का निर्वाह करते हुए श्रुति स्मृति एवं पुरान-प्रतिपादित मार्ग का ही अनुसरण किया है। ठीक है, यही किया होगा, किन्तु तत्कालीन परिस्थिति को उन्होंने अवश्य ही प्रभावित किया है। उस समय के भग्नाथ हिन्दुओं के लिए उनका मानस बहुत बड़े संबल के रूप में था। साथ ही रूप में था। साथ ही 'मानस' में मानवता का भी ऐसा शुभ संदेश है कि इस प्रकार की संकट कालीन परिस्थिति न रहने पर भी वह व्यक्ति, परिवार एवं समाज को युग-युग तक प्रेरणा देता रहेगा।

भारत की साधारण जनता को भी ज्ञान-विज्ञान-शास्त्र आदि का ज्ञान कराने वाला मानस ही है। घर-घर में इसकी एक प्रति मिल जायगी, कंठ-कंठ में इसकी चौपाइयों का वास है।

वस्तुतः तुलसीदास जी ने उत्तर भारत को 'सीयाराममय' ही बना दिया। उन्होंने हिन्दी भाषी शेत्र में प्रचलित सभी काव्य पद्धतियों एवं लोकगीतों में राम कथा का समावेश कर रामभक्ति का प्रचार किया। उसी का फल है कि व्यक्ति जमुहाई लेते वक्त राम के नाम का उच्चारण कर उठेगा क्योंकि ऐसा विश्वास है कि राम कहते वक्त पाप प्रायः विनष्ट हो जाते है। 'रा' के उच्चारण से जो अन्दर गया, 'म' उसको बाहर नहीं आने देता है, यथा—

राम राम कह जे जमुहाई। तिन्हहि न पाप पुंज सम आही॥

अभिवादन में भी सर्व प्रथम 'जै रामजी की' कहा जाता है। इस तरह राम को सदैव स्मरण रखा जाता है। 'मानस' के कारण राम यहाँ के जीवन में घुल-मिल गये हैं।

अपढ़ किसान जो कि वैज्ञानिक आविष्कारों से अनभिज्ञ सा है, हल जोतते वक्त, घुमड़ते बादलों को देखकर 'मानस' की इन चौपाइयों को गुन-गुना उठेगा—

घन वमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा॥'

अथवा प्रसंग आने पर दार्शनिक की भाँति यह कह देगा—

होइ है सोइ राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावहिं साखा॥

एक तो राम कथा इतनी मार्मिक है कि स्वयं प्रचार पा जाती है, दूसरे तुलसीदासजी ने उसे बस तन्मयता के साथ इतनी सरल शैली में वर्णित किया है कि

---

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ रामकुमार वर्मा, पृ. 340।

उनका महत्त्व चतुर्गुण हो गया है। ऐसा कोई प्रसंग नहीं जिस पर कि विद्वान अथवा निरक्षर व्यक्ति मानस की चौपाई को सूक्ति रूप में प्रयोग न कर सके।[1]

किसी भी साहित्य में कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं है जो 'मानस' के समान लोकप्रिय हो और उसका धनी-गरीब सभी समान रूप से आदर करते हों। इसकी प्राणपूरक प्रेरणा और आनन्द विधायनी मधुरता ऐसी है कि संसार के किसी अन्य साहित्य में खोजे नहीं मिल सकती। ऐसा कोई भारतवासी व्यक्ति न होगा जिसने जीवन में रामायण की महान घटनाओं तथा दिव्य भावों से प्रेरणा न पाई हो।

3. मानस की संरचना में सूक्तियों की स्थिति

जैसा कि हम पूर्व कह आये हैं कि गोस्वामी तुलसीदास भक्तिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि माने गये हैं और उनकी कृति-वाटिका में 'रामचरितमानस' ही सबसे उत्कृष्ट पुष्पराज ठहरता है। अब यह देखना होगा कि 'रामचरितमानस' में जहाँ गोस्वामी जी ने सूक्तियों का इतना व्यापक प्रयोग किया है, उसकी उपादेयता क्या है! यदि इनका व्यापक प्रयोग न किया जाता तो 'मानस' पर क्या असर पडता? इसके अलावा तुलसी की कला पर इसका क्या प्रभाव पड़ सका है इनके प्रयोग से उनका पांडित्य तो बाधित नहीं हुआ, आदि प्रश्नों का समाधान करने के पूर्व हमें सर्वप्रथम यह देखना होगा कि 'मानस' में कुल कितने काण्ड हैं, व एक काण्ड में कितने छन्द हैं और उनमें कितनी सूक्तियाँ हैं। वे किस विषय की है, उनका क्या अनुपात है तथा किस पात्र ने उनका प्रयोग किया है।

इन सबके विवेचन हेतु हमने निम्नलिखित मुख्य दो आधार मानकर विस्तृत तालिका प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है—

1. प्रत्येक काण्ड में कुल कितने छंद व कितनी सूक्तियाँ हैं एवं उनका क्या अनुपात है।

2. वर्ण्य विषय की दृष्टि से कुल कितनी सूक्तियाँ हैं व किस सन्दर्भ में किस पात्र ने उनका प्रयोग किया है।

---

1. डॉ. रमा नाथ त्रिपाठी : बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन।

1. काण्ड-परक तालिका[1]

संख्या	काण्ड	कुल छन्द संख्या	सूक्ति संख्या	सूक्तियों का प्रतिशत
1	बालकाण्ड	3405	213	6.255 प्रतिशत
2	अयोध्याकाण्ड	2954	117	3.96 "
3	अरण्यकाण्ड	590	67	11.355 "
4	किष्किन्धाकाण्ड	339	64	18.879 "
5	सुन्दरकाण्ड	596	35	5.873 "
6	लंकाकाण्ड	1342	44	3.278 "
7	उत्तरकाण्ड	1426	285	19.98 "
8	योग	10652	825	7.745 "

1. 'मानस' में प्रयुक्त सूक्तियों का अनुपात ज्ञात करने की सुविधा की दृष्टि से हमने श्लोक, दोहा, सोरठा, छन्द आदि को एक छन्द माना है और दोहान्तर्गत आई हुई चौपाइयों के दो चरणों को एक छन्द स्वीकार किया है। तालिका में जो कुल छन्द-संख्या दी गई है, उनका आधार यही रहा है। इसी आधार पर हमने सूक्ति संख्या व उनके प्रतिशत का निर्धारण किया है।

उनका महत्त्व चतुर्गुण हो गया है। ऐसा कोई प्रसंग नहीं जिस पर कि विद्वान अथवा निरक्षर व्यक्ति मानस की चौपाई को सूक्ति रूप में प्रयोग न कर सके।[1]

किसी भी साहित्य में कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं है जो 'मानस' के समान लोकप्रिय हो और उसका धनी-गरीब सभी समान रूप से आदर करते हों। इसकी प्राणपूरक प्रेरणा और आनन्द विधायनी मधुरता ऐसी है कि संसार के किसी अन्य साहित्य में खोजे नहीं मिल सकती। ऐसा कोई भारतवासी व्यक्ति न होगा जिसने जीवन में रामायण की महान घटनाओं तथा दिव्य भावों से प्रेरणा न पाई हो।

3. मानस की संरचना में सूक्तियों की स्थिति

जैसा कि हम पूर्व कह आये हैं कि गोस्वामी तुलसीदास भक्तिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि माने गये हैं और उनकी कृति-वाटिका में 'रामचरितमानस' ही सबसे उत्कृष्ट पुष्पराज ठहरता है। अब यह देखना होगा कि 'रामचरितमानस' में जहाँ गोस्वामी जी ने सूक्तियों का इतना व्यापक प्रयोग किया है, उसकी उपादेयता क्या है! यदि इनका व्यापक प्रयोग न किया जाता तो 'मानस' पर क्या असर पडता? इसके अलावा तुलसी की कला पर इसका क्या प्रभाव पड़ सका है इनके प्रयोग से उनका पांडित्य तो बाधित नहीं हुआ, आदि प्रश्नों का समाधान करने के पूर्व हमें सर्वप्रथम यह देखना होगा कि 'मानस' में कुल कितने काण्ड हैं, व एक काण्ड में कितने छन्द हैं और उनमें कितनी सूक्तियाँ हैं। वे किस विषय की है, उनका क्या अनुपात है तथा किस पात्र ने उनका प्रयोग किया है।

इन सबके विवेचन हेतु हमने निम्नलिखित मुख्य दो आधार मानकर विस्तृत तालिका प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है—

1. प्रत्येक काण्ड में कुल कितने छंद व कितनी सूक्तियाँ हैं एवं उनका क्या अनुपात है।

2. वर्ण्य विषय की दृष्टि से कुल कितनी सूक्तियाँ हैं व किस सन्दर्भ में किस पात्र ने उनका प्रयोग किया है।

---

1. डॉ. रमा नाथ त्रिपाठी : बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन।

1. काण्ड-परक तालिका[1]

संख्या	काण्ड	कुल छन्द संख्या	सूक्ति संख्या	सूक्तियों का प्रतिशत
1	बालकाण्ड	3405	213	6.255 प्रतिशत
2	अयोध्याकाण्ड	2954	117	3.96 "
3	अरण्यकाण्ड	590	67	11.355 "
4	किष्किन्धाकाण्ड	339	64	18.879 "
5	सुन्दरकाण्ड	596	35	5.873 "
6	लंकाकाण्ड	1342	44	3.278 "
7	उत्तरकाण्ड	1426	285	19.98 "
8	योग	10652	825	7.745 "

1. 'मानस' में प्रयुक्त सूक्तियों का अनुपात ज्ञात करने की सुविधा की दृष्टि से हमने श्लोक, दोहा, सोरठा, छन्द आदि को एक छन्द माना है और दोहान्तर्गत आई हुई चौपाइयों के दो चरणों को एक छन्द स्वीकार किया है। तालिका में जो कुल छन्द-संख्या दी गई है, उनका आधार यही रहा है। इसी आधार पर हमने सूक्ति संख्या व उनके प्रतिशत का निर्धारण किया है।

2. विषय एवं संदर्भ-परक तालिका

विषय शीर्षक	संदर्भ (काण्ड सहित)	सूक्ति सं०
1	2	3
अग्नि स्वभाव	कामदेव से भस्म करने के अवसर पर शिव-कथन—देवताओं से (बालकाण्ड)	1
अवतार हेतु	प्रभु प्रकटीकरण के अवसर पर शिव-कथन पार्वती से (बालकाण्ड)	3
असंभव कार्य	सीता का श्रीराम के गले में जयमाल डालने पर समस्त राज-समाज की बौखलाहट एवं सीता की चाहना रखने वालों के प्रति कवि कथन (बालखण्ड)	4
	शूर्पनखाँ के विवाह प्रश्न पर लक्ष्मण का उत्तर (अरण्यकाण्ड)	2
असंभवता	माता केकैयी के कृत्य पर भरत की ग्लानि (अयोध्याकाण्ड)	1
	निज अनुभव वर्णन के सन्दर्भ में काकभुशुण्डि का कथन—गरुड से (उत्तरकाण्ड)	2
	पूर्वजन्म कथा वृत्तान्त वर्णन के सन्दर्भगत काक भुशुण्डि कथन गरुड से (उत्तरकाण्ड)	11
अहिंसा	गरुड़ के प्रश्नों पर काक का कथन (उत्तरकाण्ड)	1
अंग छत हीन	राम के राज्याभिषेक प्रसंग पर मंथरा	1
व्यक्ति-प्रवृत्ति	के अनुचित कह देने पर केकैई का उत्तर (अयोध्याकाण्ड)	1
आंख	परशुराम को उग्रित देखकर लक्ष्मण का स्वागत कथन (बालकाण्ड)	1
आर्त	चित्रकूट में मुनि वशिष्ट एवं राम की वार्ता के बीच कवि कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	चित्रकूट में गुरु एवं रामाज्ञा सुनकर भरत-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
आपत्ति	पतिव्रत्य धर्म-महिमा के अन्तर्गत अनुसुइया कथन-सीता से (अरण्यकाण्ड)	1
ईश कृपा फल	मंगलाचरण के सन्दर्भ में कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	प्रभु महिमा के सन्दर्भ में कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	राम महिमा वर्णन के अन्तर्गत शिव-कथन पार्वती से (बालकाण्ड)	1

1	2	3
	सुग्रीव-कथन श्रीराम से सीता की खोज में विलम्ब के सन्दर्भगत (किष्किन्धाकाण्ड)	6
	लंकिनी-कथन हनुमान से लंका में प्रवेश करने के सन्दर्भगत (सुन्दरकाण्ड)	2
	स्वयं के अपना लेने के सन्दर्भगत विभीषण-कथन राम से (सुन्दरकाण्ड)	
	निज अनुभव वर्णन के सन्दर्भगत काक०-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	2
ईश-महिमा	नारद शाप की बात सुनकर पार्वती के प्रश्न पर शिवजी का उत्तर (बालकाण्ड)	1
ईश के अधीन	वन-गमन हेतु जाते श्रीराम-लक्ष्मण-सीता को देखकर दशरथ का कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	माता पर दोषारोपण के सन्दर्भगत राम का कथन भरत से (अयोध्याकाण्ड)	1
ईश-गुण महिमा	बालवध के सन्दर्भगत काक०-कथन गरुड़ से (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	अंगद रावण वार्ता के सन्दर्भगत शिव-कथन—पार्वती से (लंकाकाण्ड)	2
ईश चरणानुभक्ति	चित्रकूट गमन पर बशिष्ट राम वार्ता के सन्दर्भगत वशिष्ठ कथन (अयोध्याकाण्ड)	2
	वशिष्ठ राम वार्ता के सन्दर्भगत वशिष्ठ-कथन (उत्तरकाण्ड)	4
	निज अनुभव वर्णन के सन्दर्भगत काक० कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	2
ईश-भजन	धर्म निर्वाह के सन्दर्भगत विभीषण-कथन श्रीराम से (सुन्दरकाण्ड)	1
	पूर्वजन्म वृत्तान्त वर्णन के सन्दर्भ में काक०-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	1
	राम-कथन काक० से वर याचना के सन्दर्भ में (उत्तरकाण्ड	1
ईश्वर जीव-भेद	उपर्युक्त सन्दर्भगत कथित उक्ति (उत्तरकाण्ड)	3

1	2	3
एकांकी-जीव की वृत्ति	पार्वती के प्रारण की अडिगता को देखकर सप्तऋषियों का कथन (बालकाण्ड)	1
कर्म	वन-गमन हेतु जाते श्रीराम, सीता और लक्ष्मरण को देखकर दशरथ-कथन (अयोध्याकाण्ड)	2
	श्रीराम को भूमि पर शयन करते देख निषाद का खेद, इस पर लक्ष्मरण का कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	गुरु बृहस्पति का कथन देवराज इन्द्र से (अयोध्याकाण्ड)	1
	कौशल्या-सुनयना संवाद के सन्दर्भगत कौशल्या कथन (अयोध्याकाण्ड)	2
	समुद्र के रास्ता न देने पर लक्ष्मरण-कथन श्रीराम से (सुन्दर-काण्ड)	1
कनक-स्वभाव	सप्तऋषियों के प्रश्न पर पार्वती-कथन—शिव के साथ विवाह करने के सन्दर्भगत (बालकाण्ड)	1
कवि-कविता	कवि कविता के सन्दर्भ में कवि-कथन (बालकाण्ड)	9
काक-वृत्ति	संतअसंत-वन्दना के सन्दर्भगत कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
कामी-लोभी-वृत्ति	नारद-तपस्या को देखकर इन्द्र की मनोवृत्ति पर शिव-कथन पार्वती से (बालकाण्ड)	2
काम-क्रोध-लोभ-मोह	विरही राम का लक्ष्मरण से कथन कामदेव के क्रियाकलाप को देखकर (अरण्यकाण्ड)	3
	नारद राम संवाद के अन्तर्गत राम-कथन नारद के प्रश्न पर (अरण्यकाण्ड)	1
	विभीषरण-कथन —रावरण से सीता को लोटने के सन्दर्भगत (सुन्दरकाण्ड)	1
काररण-कार्य	गुरु वशिष्ठ के उपदेश को सुनकर भरत कथन (अयोध्या-काण्ड)	1
काल	मन्दोदरी-रावरण वार्ता के सन्दर्भगत मन्दोदरी-कथन रावरण से (लंकाकाण्ड)	1
कुपंथ की ओर अग्रसर व्यक्ति प्रवृत्ति	सीता-हररण प्रसंग पर काक० का कथन (अरण्यकाण्ड)	1
कृषि-किसान तथा क्यारी	वर्षा ऋतु वर्णन के सन्दर्भगत कवि-कथन (किष्किन्धा काण्ड)	2

1	2	3
खिचाव	ज्ञान-भक्ति-महिमा निरूपण के सन्दर्भगत काक०-कथन गरुड़ से	1
ग्रंथि-विघ्न	पूर्व जन्म कथा वृत्तान्त वर्णन के सन्दर्भ में काक०-कथन गरुड़ से (अरण्यकाण्ड)	12
ग्रंथि-मुक्ति-युक्ति	उपर्युक्त सन्दर्भगत ही कथित (उत्तरकाण्ड)	17
गृह-गमन नीति	पार्वती के गृह-गमन आग्रह पर शिव-कथन (बालकाण्ड)	1
गुण-महिमा	प्रभु स्वभाव वर्णन के सन्दर्भगत काक०-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	4
	पूर्व जन्म कथा वर्णन के सन्दर्भगत काक०-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	1
गुणगान	पार्वती को राम कथा सुनाने के सन्दर्भगत शिव-कथन (बालकाण्ड)	1
गुण-अवगुण ग्राह्यता	संत-असंत वन्दना के सन्दर्भगत कवि-कथन (बालकाण्ड)	5
	सीता को लौटाने के सन्दर्भगत विभीषण-कथन रावण से (सुन्दरकाण्ड)	1
गुरु	राम-महिमा की जानकारी भारद्वाज-कथन याज्ञवल्क्य से (बालकाण्ड)	1
	सप्तऋषियों के प्रश्न पर पार्वती-कथन (बालकाण्ड)	1
	राजा प्रतापभानु एवं कपटी मुनि की वार्ता के दौरान प्रतापभानु का कथन (बालकाण्ड)	
	राम-राज्याभिषेक के सन्दर्भगत दशरथ-कथन (अयोध्या-काण्ड)	1
	भरत-महिमा के सन्दर्भगत चित्रकूट गमन पर राम-कथन वशिष्ठ से (अयोध्याकाण्ड)	1
	वर्षा ऋतु-वर्णन के संदर्भगत कवि-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	मन्दोदरि रावण वार्ता के बीच कवि-कथन (लंकाकाण्ड)	1
	निज अनुभव वर्णन के संदर्भगत काक. कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	1
	निज अनुभव वृत्तान्त वर्णन सुनकर गरुड़-कथन काक. से (उत्तरकाण्ड)	1

1	2	3
	कलि वर्णन के सन्दर्भगत काक०-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	1
	पूर्व जन्म कथा वृत्तान्त वर्णन के सन्दर्भ में काक०-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	1
गिरी	वर्षा ऋतु वर्णन के सन्दर्भगत कवि-कथन (किष्किन्धा काण्ड)	1
चरण-वन्दना	पार्वती को रामकथा सुनाने के सन्दर्भगत शिव-कथन (बालकाण्ड)	1
चक्रवाक	वर्षा ऋतु वर्णन पर कवि-कथन (किष्किन्धा काण्ड)	2
चन्द्रमा	उपर्युक्त सन्दर्भगत (किष्किन्धाकाण्ड)	1
चातक-हंस-मीन-प्राण	भरत-विनय तीर्थ राज प्रयाग से (अयोध्याकाण्ड)	2
	चित्रकूट-गमन पर भरत-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	भरत की अनासक्त भावना को देखकर कवि-कथन (अयोध्या-काण्ड)	1
चोर-वृत्ति	राम राज्याभिषेक की बात सुनकर देवताओं की षडयन्त्र-योजना, इस पर कवि-उक्ति (अयोध्याकाण्ड)	1
जगत्	राम-कथन काक. से वरयाचना के संदर्भगत (उत्तरकाण्ड)	3
जगत्-जंजाल	निषाद-खेद पर लक्ष्मण-कथन (अयोध्याकाण्ड)	5
जलद	वर्षा ऋतु वर्णन पर कवि-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	1
जाति-अपमान	दक्ष के घर शिव-अपमान पर कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
जीव	संत-असंत वन्दना के संदर्भगत कवि-कथन (बालकाण्ड)	2
	राम को राज्य न मिलने हेतु देवताओं का कुचक्र एवं सरस्वती को अयोध्या जाने का आग्रह, इस पर देवताओं का कथन सरस्वती से (अयोध्याकाण्ड)	1
	निषाद-खेद पर लक्ष्मण-कथन (अयोध्याकाण्ड)	3
	भरत-आगमन के समाचार सुनकर (कोल भीलों द्वारा) लक्ष्मण कथन (अयोध्याकाण्ड)	
	राम-भेंट हेतु चित्रकूट-गमन पर वशिष्ठ-कथन राजा जनक से। (अयोध्याकाण्ड)	1
	हनुमान-कथन श्रीराम से-ऋष्यमूक पर्वत पर भेंट के संदर्भगत (किष्किन्धाकाण्ड)	1

1	2	3
	वालि-वध पर तारा-रुदन, इस पर श्रीराम का उसको ज्ञानोपदेश (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	पूर्व जन्म कथा वृत्तान्त वर्णन के संदर्भगत काक०-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	1
	श्रीराम-कथन—पुरवासियों से (उत्तरकाण्ड)	1
	पूर्वजन्म कथा वृत्तान्त वर्णन के संदर्भगत काक.-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	1
	ज्ञान-भक्ति महिमा के संदर्भगत काक.-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	2
जीव-ईश्वर	पार्वती-बिबाह के संदर्भगत नारद-कथन—हिमवंत से (बालकाण्ड)	2
जीव-धर्म	राम-कथा वर्णन के संदर्भगत शिव-कथन—पार्वती से (बालकाण्ड)	1
जुगनू	वर्षा-ऋतु-वर्णन के अन्तर्गत कवि-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	1
जोंक-वृत्ति	वर-याचना के अवसर पर राम-कैकेई वार्ता के बीच कवि-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
ज्ञान-भक्ति-अन्तर	राम-भेंट हेतु चित्रकूट गमन पर वशिष्ठ-कथन राजा जनक से (अयोध्याकाण्ड)	1
	राजा राम का कथन पुरवासियों से (उत्तरकाण्ड)	4
	ज्ञान-भक्ति महिमा के सन्दर्भगत काक.-कथन—गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	8
	भक्ति रूपी मणि की महिमा प्रदर्शित करते हुए काक०-कथन—गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	4
तप-महिमा	स्वप्न में नारद का पार्वती को तप-महिमा समझाना तथा पार्वती का माता को स्वप्न वृत्तान्त सुनाना (बालकाण्ड)	4
	राजा प्रतापभानु के पूछने पर कपटी मुनि का कथन अपने नाम के अर्थ को स्पष्ट करते हुए (बालकाण्ड)	3
दामिनि	वर्षा-ऋतु वर्णन पर कवि-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	1
दुष्ट	सन्त-असन्त बन्दना पर कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	रावण के मारीच के घर आने पर शिव-कथन पार्वती से (अरण्यकाण्ड)	1

1	2	3
	श्रीराम को समुद्र के रास्ता न देने पर काक०-कथन—गरुड़ से (सुन्दरकाण्ड)	1
	निज ग्रनुभव वृत्तान्त वर्णन के सन्दर्भगत काक.-कथन गरुड़ से (उत्तरकांड)	2
दूत	हनुमान को दण्ड देने के सन्दर्भ में विभीपरण-कथन रावरण से (सुन्दरकांड)	1
धर्म	राम-कथन सुमन्त्र से वन-गमन के सन्दर्भगत (ग्रयोध्याकांड)	4
धर्म-शील	श्री राम-लक्ष्मरण की लग्न पत्रिका के सन्दर्भगत—वशिष्ठ-कथन—दशरथ से (बालकाण्ड)	2
धीर-पुरुष	राम, सीता, लक्ष्मरण—के बारे में दशरथ के पूछने पर सुमंत्र का कथन (ग्रयोध्याकांड)	4
नदी	वर्षा ऋतु वर्णन के सन्दर्भगत कवि-कथन (किष्किन्धाकांड)	2
नारी	कैकेई के कृत्य को देखकर दशरथ-कथन (ग्रयोध्याकांड)	3
	वन गमन हेतु सीता-कथन—राम से (ग्रयोध्याकांड)	4
	राम वन गमन की बात सुनकर भरत का ग्राक्रोश माता कैकेई पर (ग्रयोध्याकांड)	1
	राम वन गमन ग्रौर दशरथ-मरण की कथा कहते हुए वशिष्ठ का कथन—भरत से (ग्रयोध्याकाण्ड)	1
	पातिव्रत्य धर्म-महिमा के ग्रन्तर्गत पतिव्रता के लक्षरण एवं प्रकार बतलाते हुए ग्रनुसुइया का कथन—सीता से (ग्ररण्यकाण्ड) ।	15
	नारद-राम संवाद पर राम-कथन (विवाह के संदर्भगत) (ग्ररण्यकाण्ड)	1
	श्रीराम के संत-लक्षरण वर्णन पर कवि-कथन (ग्ररण्यकाण्ड)	1
	समुद्र-कथन राम से रास्ता न देने के संदर्भगत (सुन्दरकाण्ड)	2
नारी-स्वभाव	मन्दोदरी के भीरु स्वभाव को देखकर रावरण-कथन (लंकाकाण्ड)	2
नाम-महिमा तथा जप	राम नाम महिमा के सन्दर्भगत कवि-कथन (वालकाण्ड)	27

1	2	3
	हनुमान-कथन रावण से श्रीराम से वैर न करने के संदर्भगत (सुन्दरकाण्ड)	2
	भरत-निषाद-मिलन पर कवि-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	राम-नारद संवाद के अन्तर्गत नारद की उक्ति (अरण्यकाण्ड)	3
परख	भरत-महिमा पर कौशल्या द्वारा प्रयुक्त उक्ति (अयोध्याकाण्ड)	1
परहित	शिव-विवाह के प्रसंग पर कामदेव का कथन--देवताओं से (बालकाण्ड)	2
	असन्त लक्षण वर्णन के संदर्भगत राम-कथन—भरत से (उत्तरकाण्ड)	1
	सीता-हरण के संदर्भगत राम-कथन---जटायु से (अरण्यकाण्ड)	1
पराधीनता	पार्वती को विदा करते समय मैना का कथन--विवाह के अन्तर्गत (बालकाण्ड)	1
पल्लव	वर्षाऋतु-वर्णन के संदर्भगत कवि-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	3
पाप-पुण्य	बालि-कथन राम से (वध करने के संदर्भगत) (किष्किन्धाकाण्ड)	2
	अंगद-रावण वार्ता के दौरान अंगद का कथन रावण से (लंकाकाण्ड)	4
पुत्र-धर्म	पार्वती के साथ विवाह करने के प्रश्न पर शिव का उत्तर श्रीराम से (बालकाण्ड)	1
	वर-याचना के संदर्भगत दशरथ की दशा को देखकर श्री राम का कथन--कैकेई से (अयोध्याकाण्ड)	2
	वनवास-प्रसंग पर श्रीराम-कथन दशरथ से (अयोध्याकाण्ड)	2
	सीता के वन में साथ चलने के संदर्भगत राम-कथन सीता से (अयोध्याकाण्ड)	2
	वनगमन के संदर्भगत सुमित्रा का कथन लक्ष्मण से (अयोध्याकाण्ड)	1
	राम-वन-गमन और दशरथ मरण की कथा कहते हुए वशिष्ठ का कथन—भरत से (अयोध्याकाण्ड)	1

1	2	3
	गुरु वशिष्ट के उपदेश को सुनकर भरत का कथन (अयोध्याकाण्ड)	2
	वर्षा-ऋतु-वर्णन के संदर्भगत कवि-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	वरयाचना के संदर्भगत राम-कथन काकभुशुण्डि से (अयोध्याकाण्ड)	5
प्रजा	राम के वन में पदार्पण से वन की शोभा में बढ़ोत्तरी, इस संदर्भगत कवि-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	राम राज्याभिषेक के संदर्भगत कैकेई के प्रश्न पर मंथरा-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
प्रभुधाम	प्रभु-निवास के स्थान की खोज के संदर्भगत शिव-कथन देवताओं से (बालकाण्ड)	4
	श्री राम के आगमन पर भील कोलों द्वारा अतिथि-सत्कार, इस पर कवि-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
बाल-स्वभाव	लक्ष्मण की चपलता से क्रोधित परशुराम को देखकर श्रीराम का कथन (बालकाण्ड)	1
बैर-प्रीति के भाजन	रावण-मारीच वार्ता के बीच मारीच का स्वगत कथन कपट मृग रूप धारण कर राम को छलने के संदर्भ में (अरण्यकाण्ड)	2
ब्रह्म	प्रभु-महिमा के संदर्भगत कवि-कथन-पार्वती से (बालकाण्ड)	11
	ब्रह्म वर्णन के संदर्भगत शिव-कथन—पार्वती से रामकथा वर्णन के संदर्भगत शिव-कथन—पार्वती से (बालकाण्ड)	11
	राममहिमा वर्णन के संदर्भगत शिव-कथन पार्वती से (बालकाण्ड)	5
	प्रभुचरित्र को देखकर कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	निषाद खेद पर लक्ष्मण कथन (अयोध्याकाण्ड)	2
	सुग्रीव-राम वार्ता के बीच काक०-कथन गरुड़ से (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	श्रीराम के विश्वरूप की झाँकी प्रस्तुत करते हुए मन्दोदरी-कथन रावण से (लंकाकाण्ड)	1
	माया के संदर्भगत काक०-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	7

1	2	3
भक्त	विभीषण-कथन राम से स्वयं को अपना लेने के संदर्भगत (सुन्दरकाण्ड)	1
भक्त-प्रवृत्ति	वर्षा-ऋतु-वर्णन के संदर्भगत कवि-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	1
भक्ति	पार्वती को रामकथा सुनाने के संदर्भगत शिव-कथन (बालकाण्ड)	1
	सुग्रीव-कथन श्री राम से--बालि के संदर्भगत (अरण्यकाण्ड)	1
	वशिष्ठ-राम वार्ता के संदर्भगत वशिष्ठ-कथन (उत्तरकाण्ड)	2
	निज अनुभव वर्णन के सन्दर्भगत काक०-कथन, (उत्तरकाण्ड)	2
	रामकथा सुनाने के पश्चात् गरुड़-कथन काकभुशुण्डि से (उत्तरकाण्ड)	1
भक्ति-महिमा	भक्ति की श्रेष्ठता बतलाते हुए राम-कथन लक्ष्मण से (अरण्यकाण्ड)	4
	काक०-कथन गरुड़ से श्री राम के वर माँगने के सन्दर्भ में (उत्तरकाण्ड)	1
	पूर्व जन्म कथा वृत्तान्त वर्णन के अन्तर्गत काक०-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	5
	भक्ति रूपी मणि की महिमा निरूपण के सन्दर्भगत काक०-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	11
भावी	श्री राम की परीक्षा हेतु सती हठ के सन्दर्भगत शिव-कथन (बालकाण्ड)	2
	पार्वती के गुण-दोष वर्णन पर कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	मैना के प्रश्न पर पार्वती का उत्तर विवाह के सन्दर्भगत (बालकाण्ड)	1
	राजा प्रतापभानु को कपटी मुनि के व्यूह-चक्र में उलझते देख कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	मांस परसे जाने पर ब्राह्मणों का श्राप, राजा प्रताप भानु से इस विषय पर ब्राह्मणों का कथन (बालकाण्ड)	1
	राम-वन-गमन और दशरथ मरण की कथा कहते हुए वशिष्ठ का कथन--भरत से (अयोध्याकाण्ड)	1
भुक्त-भोगी	शिव-बारात एवं उनके रूप को देखकर मैना का कथन--पार्वती से (नारद के कृत्य पर) (बालकाण्ड)	1

1	2	3
भ्रम	काक भुशुण्डि का कथन गरुड़ से माया के सन्दर्भगत (उत्तरकाण्ड)	11
भ्राता (अग्रज-अनुज)	कपटी मुनि के प्रण की बात सुनकर राजा प्रताप भानु का कथन—मुनि से (बालकाण्ड)	1
	राम राज्याभिषेक के प्रसंग पर मंथरा के अनुचित कह देने पर कैकेई का उत्तर (अयोध्याकाण्ड)	1
	चित्रकूट में राम-भरत-मिलन पर राम की उक्ति (अयोध्याकाण्ड)	1
	लक्ष्मण की मूर्छा पर राम-कथन (लंकाकाण्ड)	2
मंत्री	प्रहस्त-रावण वार्ता के बीच प्रहस्त का कथन (लंकाकाण्ड)	1
मंत्री, वैद्य, गुरु धर्म	रावण-मन्त्री वार्ता के बीच कवि-कथन (सुन्दरकाण्ड)	1
मनुष्य-कोटि	श्री राम का कथन रावण से युद्ध के दौरान (लंकाकाण्ड)	4
मनुष्य-योनि	बालिवध पर तारा-रुदन, इस पर श्री राम का उसको ज्ञानोपदेश (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	सीता की खोज के सन्दर्भगत सुग्रीव-कथन, अंगद, नल, हनुमान योद्धाओं से (किष्किन्धाकाण्ड)	2
	असन्त लक्षण-वर्णन के सन्दर्भगत श्री राम का कथन—भरत से (उत्तरकाण्ड)	4
	श्रीराम का कथन पुरवासियों से (उत्तरकाण्ड)	11
	पूर्व जन्म वृत्तान्त वर्णन के सन्दर्भगत काक भुशुण्डि का कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	3
	गरुड़ के प्रश्नों पर काक भुशुण्डि का उत्तर (उत्तरकाण्ड)	4
मही	वर्षा ऋतु वर्णन के सन्दर्भगत कवि-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	5
माता-पिता	वन-गमन के सन्दर्भगत सुमित्रा का कथन लक्ष्मण से (अयोध्याकाण्ड)	2
	मुनि वशिष्ठ एवं भरत-वार्ता के संदर्भगत भरत-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	माता पर दोषारोपण के सन्दर्भ में राम-कथन—भरत से (अयोध्याकाण्ड)	1
माया	सन्त-असंत वन्दना के सन्दर्भगत कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	राम-महिमा वर्णन के अन्तर्गत शिव-कथन पार्वती से (बालकाण्ड)	4

1	2	3
	नारद का कामदेव-विजय कथा वर्णन (राम के समक्ष) के प्रसंग में कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	नारद की भ्रमित बुद्धि पर शिव-कथन (बालकाण्ड)	1
	माया वर्णन के सन्दर्भगत श्री राम-कथन लक्ष्मण से (अरण्यकाण्ड)	8
	सुग्रीव का कथन श्रीराम से बालि के प्रसंग में (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	हनुमान-कथन रावण से वन उजाड़ने के सन्दर्भगत (सुन्दरकाण्ड)	3
	असंत लक्षण वर्णन के सन्दर्भगत राम-कथन भरत से (उत्तरकाण्ड)	1
	काक भुशुण्डि-कथन गरुड़ से माया के सन्दर्भगत (उत्तरकाण्ड)	3
	पूर्व जन्म वृत्तान्त वर्णन पर काक भुशुण्डि-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	2
माया-भक्ति	ज्ञान-भक्ति महिमा के संदर्भगत काक भुशुण्डि-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	2
मित्र-धर्म	श्रीराम-कथन सुग्रीव से मित्र धर्म लक्षण वर्णन करते हुए (किष्किन्धाकाण्ड)	9
मीन	वर्षा ऋतु वर्णन के सन्दर्भगत कवि कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	2
मुक्ति	सीता की खोज के संदर्भगत जाम्बंत-कथन अंगद से (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	विमान द्वारा अयोध्या जाते समय श्रीराम का दशरथ से स्वर्ग लोक में मिलन, इस पर शिव-कथन (उत्तरकाण्ड)	1
	पूर्व जन्म कथा वृत्तान्त वर्णन के संदर्भ में काक भुशुण्डि का कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	4
युग-धर्म	कलि वर्णन के सन्दर्भगत काक भुशुण्डि कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	9
राजपद	कोल भीलों द्वारा चतुरंगिणी सेना सहित भरत-आगमन के समाचार को सुनकर लक्ष्मण का कथन (अयोध्याकाण्ड)	2
राजा एवं उसके कर्तव्य	राम वन गमन और दशरथ मरण की कथा कहते हुए वशिष्ठ का कथन भरत से (अयोध्याकाण्ड)	1

1	2	3
	राम-भरत संवाद के संदर्भगत राम की उक्ति (अयोध्याकाण्ड)	1
	सीता-हरण पर राम-कथन (अरण्यकाण्ड)	2
	शूर्पणखा-कथन रावण से अपमान के सन्दर्भगत (अरण्यकाण्ड)	5
	प्रभु महिमा के संदर्भगत कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
राज्य	वन गमन के सन्दर्भगत राम-कथन लक्ष्मण से (अयोध्याकाण्ड)	1
राम-विमुख	स्वयं के राज्याभिषेक के प्रश्न पर भरत का कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	वशिष्ठ का कथन भरत से राम को लौटाने के सन्दर्भगत (अयोध्याकाण्ड)	1
	चित्रकूट आगमन पर राम के पुन: अयोध्या लौट चलने के संशय को देखकर कैकेई का स्वगत-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	जयन्त का कुटिल व्यवहार एवं कहीं भी शरण न मिलने पर काकभुशुण्डि-कथन गरुड़ से (अरण्यकाण्ड)	1
	हनुमान का कथन रावण से श्रीराम से वैर न करने के संदर्भ में (सुन्दरकाण्ड)	2
	राम-कथा सुनने के पश्चात् गरुड़ का कथन काकभुशुण्डि से (उत्तरकांण्ड)	3
वंशगत वैशिष्ट्य	राम द्वारा कथित उक्ति लक्ष्मण से गौरी पूजन हेतु जाती हुई सीता को देखकर (बालकाण्ड)	1
	वर याचना के संदर्भगत कैकेई के प्रश्न पर दशरथ का कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
वर्णाश्रम धर्म	राम वन गमन और दशरथ मरण की कथा कहते हुए वशिष्ठ का कथन भरत से (अयोध्याकाण्ड)	6
विद्वान्	राजा प्रतापभानु को कपटी मुनि के जाल में उलझते देख, कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	भरत-आगमन पर लक्ष्मण के कथन को सुनकर राम का उत्तर (अयोध्याकाण्ड)	2
	वशिष्ठ-कथन भरत से (चित्रकूट गमन के संदर्भ में राम को लौटाने हेतु) (अयोध्याकाण्ड)	1

1	2	3
	भरत-ग्रागमन पर लक्ष्मरण का कथन—इस पर देववाणी (ग्रयोध्याकाण्ड)	1
	वशिष्ठ-राम वार्ता के सन्दर्भगत वशिष्ठ-कथन (उत्तरकाण्ड)	2
विरले	संत-ग्रसंत वन्दना के सन्दर्भगत कवि-कथन (बालकाण्ड)	3
	दक्ष के ग्रभिमान पर कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	राम-कथन लक्ष्मरण से गौरीपूजन हेतु जाती हुई सीता को देखकर (बालकाण्ड)	2
	प्रहस्त-रावरण वार्ता के सन्दर्भगत प्रहस्त-कथन (लंकाकाण्ड)	2
	काकभुशुण्डि को काक शरीर पाकर भी भक्ति युक्त देखकर पार्वती का प्रश्न शिवजी से (उत्तरकाण्ड)	7
वैद्य धर्म	नारद की याचना पर श्रीराम-कथन कन्या-वरण के सन्दर्भगत (बालकाण्ड)	1
व्यर्थ-श्रम	समुद्र के विनय स्वीकार न करने पर श्रीराम की उक्ति (सुन्दरकाण्ड)	3
	राम-रावरण युद्ध के दौरान श्रीराम-कथन (लंकाकांड)	1
व्याधि	शिव-कथन पार्वती से सुग्रीव की मदद करने के सन्दर्भ में (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	काकभुशुण्डि-गरुड़ वार्ता के बीच काक.-कथन (उत्तरकाण्ड)	11
	मानस-रोग वर्णन के सन्दर्भगत काक भुशुण्डि का कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	19
शत्रु	तपस्वी के व्यूह-चक्र एवं राजा प्रताप-भानु की सरलता को देखकर कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	कोल भीलों द्वारा चतुरंगिरणी सेना सहित भरत-ग्रागमन के समाचार को सुनकर लक्ष्मरण-कथन (ग्रयोध्याकाण्ड)	1
	खरदूषरण के प्रश्न पर श्री राम-कथन युद्ध के संदर्भगत (ग्ररण्यकाण्ड)	1
	श्रीराम से शत्रुता न ठानने के सन्दर्भगत मन्दोदरी कथन—रावरण से (लंकाकाण्ड)	2
	ग्रंगद-रावरण वार्ता के सन्दर्भगत ग्रंगद-कथन (लंकाकाण्ड)	1

1	2	3
शरदकालीन अनुभूति	वर्षा ऋतु वर्णन के सन्दर्भगत कवि-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	5
शरणागत-रक्षा	विभीषण के शरण में आने पर राम-कथन सुग्रीव से (सुन्दरकाण्ड)	3
शासक-नीति	मुकुट फेंकने के संदर्भगत राम का प्रश्न अंगद से (लंकाकाण्ड)	1
	राम-राज्य के संदर्भगत कवि-कथन (उत्तरकाण्ड)	1
शूरवीर	धनुभँग पर लक्ष्मण का कथन क्रोधित परशुराम से (बालकाण्ड)	1
संगति-प्रभाव (सत्संग-कुसंग)	संत-असंत लक्षण-वर्णन के सन्दर्भ में कवि-कथन (बालकाण्ड)	19
	राम-कथा श्रवण-आग्रह के सन्दर्भ में पार्वती-कथन शिवजी से (बालकाण्ड)	1
	राम राज्याभिषेक समाचार पर कैकेई की ईर्ष्या इस पर कवि-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	वर्षा ऋतु वर्णन के सन्दर्भगत कवि-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	लंकिनी-कथन हनुमान से लंका में प्रवेश करने के सन्दर्भगत (सुन्दरकाण्ड)	1
	खल मण्डली में रहने पर भी विभीषण के धर्म निर्वाह कर पाने के सन्दर्भगत राम-कथन (सुन्दरकाण्ड)	1
	मुनियों के आगमन पर श्रीराम का कथन (उत्तरकाण्ड)	1
	पूर्व जन्म कथा वृत्तान्त-वर्णन के सन्दर्भगत काकभुशुण्डि-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	6
सन्त-असन्त करनी	सन्त-असन्त लक्षण बर्णन के सन्दर्भगत राम-कथन भरत से (उत्तरकाण्ड)	3
सन्त-असन्त लक्षण	सन्त-असंत लक्षण वर्णन के सन्दर्भगत कवि-कथन (बालकाण्ड)	16
	रामकथा-श्रवण-आग्रह के सन्दर्भगत पार्वती-कथन शिव से (बालकाण्ड)	1
	सन्त लक्षण वर्णन के सन्दर्भगत राम-कथन नारद से (अरण्यकाण्ड)	12
	विभीषण पर चरण-प्रहार करने के सन्दर्भगत शिव-कथन पार्वती से (सुन्दरकाण्ड)	1

1	2	3
	सन्त-असन्त लक्षण वर्णन के सन्दर्भगत राम-कथन भरत से (उत्तरकाण्ड)	26
	गरुड़ के प्रश्नों पर काकभुशुण्डि का उत्तर (उत्तरकाण्ड)	8
	राम-कथा सुनने के पश्चात् गरुड़ का कथन काकभुशुण्डि से (उत्तरकाण्ड)	2
सन्तोष	निज अनुभव वर्णन के सन्दर्भगत काकभुशुण्डि-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	2
सत्य-असत्य	वर-याचना के सन्दर्भगत कैकेई के प्रश्न पर दशरथ-कथन (अयोध्याकाण्ड)	4
समथ	धनुभंग के संदर्भगत सीता की विकलता को देखकर राम का स्वगत-कथन (बालकाण्ड)	2
समर्थ	पार्वती विवाह के सन्दर्भगत नारद-कथन हिमवन्त से (बालकाण्ड)	
सामान्य धर्म	राम को विना रथ के देखकर विभीषण द्वारा शंका प्रस्तुत करने पर राम का कथन (लंकाकाण्ड)	9
सामान्य विवेक	सन्त-असन्त लक्षण वर्णन के सन्दर्भगत कवि-कथन (बालकाण्ड)	3
	राज्याभिषेक प्रश्न के सन्दर्भगत मंथरा-कथन कैकेई से (अयोध्याकाण्ड)	1
	चित्रकूट में राम-भरत मिलन के सन्दर्भगत राम-कथन भरत से (अयोध्याकाण्ड)	1
सृष्टि-उपकरण	सन्त-असन्त लक्षण वर्णन के सन्दर्भगत कवि-कथन (बालकाण्ड)	6
सेवक-स्वामी धर्म	धनुभंग पर परशुराम का कथन राम से (बालकाण्ड)	1
	गुरु वशिष्ठ का राम के महल में पदार्पण पर श्रीराम-कथन वशिष्ठ से (अयोध्याकाण्ड)	2
	रामदर्शन हेतु की गई तैयारियों के सन्दर्भगत भरत-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	राम-भरत वार्ता के बीच भरत का कथन राम से (अयोध्याकाण्ड)	3
	चित्रकूट गमन के संदर्भगत जनक के प्रश्न पर भरत का उत्तर (अयोध्याकाण्ड)	2

1	2	3
	राम-भरत मिलन के संदर्भगत कवि-कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	हनुमान का कथन श्री राम से ऋष्यमूक पर्वत पर भेंट के सन्दर्भगत (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	सीता की खोज के सन्दर्भगत सुग्रीव का कथन अंगद, नल, हनुमान आदि योद्धाओं से (किष्किन्धाकाण्ड)	1
सोचनीय-जन	राम-वन-गमन और दशरथ मरण की कथा कहते हुए वशिष्ठ का कथन भरत से (अयोध्याकाण्ड)	3
स्नेह	शिव का सती त्याग पर सती स्वगत-कथन (बालकाण्ड)	1
	धनुर्भंग के सन्दर्भगत सीता की मनःस्थिति को देखकर कवि-कथन (बालकाण्ड)	1
	भरत को सेना सहित आते देखकर निषाद का कथन (अयोध्याकाण्ड)	1
	चित्रकूट में राम-भरत मिलन के संदर्भगत राम-कथन भरत से (अयोध्याकाण्ड)	1
	समुद्र के विनय स्वीकार न करने पर श्री राम कथन (सुन्दरकाण्ड)	1
स्वप्रशंसा	सन्त-असन्त लक्षण-वर्णन के संदर्भगत कवि-कथन (बालकाण्ड)	3
स्वार्थ	अंगद को युवराज पद प्रदान करने के प्रसंग पर शिव-कथन (किष्किन्धाकाण्ड)	1
	काक.-गरुड़ वार्ता पर काकभुशुण्डि का कथन (उत्तरकाण्ड)	1
हरि-कथा	पार्वती को राम-कथा सुनाने के संदर्भगत शिव-कथन (बालकाण्ड)	5
	हरिलीला के सन्दर्भगत कवि-कथन (उत्तरकाण्ड)	1
	राम कथा श्रवण करने के पश्चात् पार्वती-कथन शिव से (उत्तरकाण्ड)	2
हरि-भजन	सीता हरण के सन्दर्भगत शिव-कथन पार्वती से (अरण्यकाण्ड)	3
	निज अनुभव वर्णन के सन्दर्भगत काकभुशुण्डि-कथन गरुड़ से (उत्तरकाण्ड)	3
	राम कथा सुनने के बाद गरुड़-कथन काकभुशुण्डि से (उत्तरकाण्ड)	1

उक्त विस्तृत सन्दर्भ तालिका को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

विषय	बाल कांड	अयो. कांड	अर. कांड	किष्कि. कांड	सुन्दर कांड	लंका कांड	उत्तर कांड	योग
समाजपरक	7	44	17	13	3	5	11	100
राजनीतिपरक	3	9	8	—	4	5	1	30
धर्मपरक	9	8	1	2	—	13	10	43
दर्शनपरक	61	19	11	16	12	13	128	260
भक्तिपरक	42	7	11	2	5	—	40	107
मनोविज्ञानपरक	53	8	19	2	5	6	60	153
प्रकृतिपरक	--	4	---	28	—	—	—	32
विविध-विषयक	38	18	—	1	6	2	35	100
योग	213	117	67	64	35	44	285	825

निष्कर्ष :

उक्त तालिका से ज्ञात होता है कि गोस्वामीजी ने संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक सूक्तियों का प्रयोग उत्तरकाण्ड में (285) किया है, उसके बाद क्रमशः बालकाण्ड (213), अयोध्याकाण्ड (117), अरण्यकाण्ड (67), किष्किन्धाकाण्ड (64), लंकाकाण्ड (44) तथा सुन्दरकाण्ड (35) में। छंदों के अनुपात की दृष्टि से प्रयुक्त सूक्तियों का प्रतिशत सबसे अधिक उत्तरकाण्ड में 19.18 रहा है। उसके बाद

क्रमशः किष्किन्धाकाण्ड (18.879), अरण्यकाण्ड (11.355), बालकाण्ड (6.255), सुन्दरकांड (5.873), लंकाकांड (3.278) तथा अयोध्याकाण्ड (3.96) में 'मानस' की संरचना में कुल सूक्तियों का प्रतिशत 7.746 रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कुल 10652 छंदों में 825 सूक्तियाँ प्रयुक्त हुई हैं।

ये सूक्तियाँ विविध पक्षों से सम्बन्धित हैं। सबसे अधिक दर्शनपरक सूक्तियों का (260) प्रयोग हुआ है जो कि अधिकांशतः उत्तरकाण्ड (128) एवं बालकाण्ड (61) में प्रयुक्त की गई हैं। उसके बाद क्रमशः मनोविज्ञानपरक सूक्तियाँ (153), उत्तरकाण्ड (60) एवं बालकाण्ड (53) में विशेषतः आई हैं जिनका यथेष्ठ प्रयोग संत-असंत लक्षण एवं प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत किया है। भक्ति (107) एवं धर्म (43)–परक सूक्तियों का सर्वाधिक प्रयोग क्रमशः बालकाण्ड (42) एवं उत्तरकाण्ड (40) तथा लंकाकाण्ड (13) एवं उत्तरकाण्ड (10) किया गया है। समाजपरक सूक्तियाँ (100) का प्रयोग भी अयोध्याकाण्ड (44) तथा अरण्यकाण्ड (17) में ही अधिक रहा है। विविध-विषयक सूक्तियाँ (100) भी बालकाण्ड (38) एवं उत्तरकाण्ड (35) में अधिक प्रयुक्त हुई हैं। प्रकृति के बारे में सूक्तियाँ (32) सिर्फ उपदेशक एवं उपमान के रूप में किष्किन्धाकाण्ड (28) में ही प्रयुक्त की गई हैं। इनमें प्राकृतिक उपकरणों द्वारा मनुष्यों की वृत्तियों (दुष्ट-सज्जन-धर्मशील-विद्वान आदि) का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। राजनीतिपरक सूक्तियाँ (30) अयोध्याकाण्ड (9) एवं अरण्य काण्ड (8) में ही विशेषतः प्रयुक्त हुई हैं।

सर्वाधिक सूक्तियों का प्रयोग संवाद के अन्तर्गत पात्रों द्वारा रहा है। इन पात्रों में शिवजी तथा काक भुशुण्डिजी ही प्रमुख हैं। कवि द्वारा कथित सूक्तियाँ संवादों के बीच कहीं-कहीं ही प्रयुक्त हुई हैं (राम-नाम महिमा वर्णन 'कवि-वन्दना' 'तुलसी-विनय' आदि के सन्दर्भगत) श्रीराम मुखारविन्द से भी संत-असंत लक्षण वर्णन, सीता-हरण, एवं पुरवासियों की सभा योजना में अधिक सूक्तियों का प्रयोग कराया गया है। दशरथ-मरण प्रसंग एवं राज्याभिषेक के संदर्भगत वशिष्ठ-भरत ने भी सूक्तियों को अपनाना नहीं छोड़ा है। सामान्यतः 'मानस' के प्रत्येक पात्र (सत्-असत्) ने कहीं न कहीं इन सूक्तियों का प्रयोग अवश्य किया है। नारी ने भी नारी-स्वभाव की चर्चा करते हुए सूक्ति का प्रयोग किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'मानस के हर पृष्ठ पर ये सूक्तियाँ अंकित हैं। वस्तुतः इन सूक्तियों का प्रयोग कहीं अपनी बात की पुष्टि हेतु, कहीं कथा को विराम देने के लिए, कहीं नई बात प्रस्तुत करने के लिए, कहीं तथ्य निरूपण के दौरान, कहीं मनोवृत्तियों की झाँकी प्रस्तुत करने के लिए तो कहीं दूसरों के पथ-प्रदर्शन करने के लिए किया गया है।

यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि सूक्तियों का इतना व्यापक प्रयोग होते हुए भी कवि का पाण्डित्य कहीं भी बाधित होता प्रतीत नहीं होता। वह इनसे और अधिक निखर उठा है। कारण, इसके यथेष्ट प्रयोग से कवि के सूक्ष्म निरीक्षण, सतत चिन्तन-मनन, व्यापक लोकानुभव एवं उसके उपयुक्त अवसर पर तालमेल बैठाने की कला का भास होता है। यदि मानस में सूक्तियों का इतना व्यापक प्रयोग न किया जाता तो शायद वह लोक-जीवन के इतना अधिक निकट न पहुँच पाता।

4. 'मानस' की सूक्तियों का वर्गीकरण और अध्ययन

श्री वियोगी हरि ने अपनी पुस्तक 'तुलसी सुक्ति-सुधा' में तुलसी के बारह ग्रंथों की सूक्तियों का संकलन किया है। उनका यह प्रयास सराहनीय होते हुए भी सूक्ति विषयक किसी दृष्टिकोण से उत्प्रेरित नहीं है। उन्होंने जो कुछ अपने को अच्छा लगा, उन सब काव्य-पंक्तियों को सूक्ति मान लिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके द्वारा संकलित बहुत से कथन हमारी दृष्टि में सूक्ति नहीं ठहरते।[1]

श्री वियोगी हरि ने अपने सूक्ति-संकलन-कार्य के सम्बन्ध में लिखा है—रामचरितमानस अर्थात् रामायण को ही आज हम सबसे अधिक प्रकाश में देखते हैं, वास्तव में रामायण का भारतवर्ष ही क्या संसार भर में आशातीत प्रचार हुआ है और हो रहा है इसके बाद, प्रचार की दृष्टि से, विनयपत्रिका का नाम आता है। तदनंतर कवितावली, गीतावली और दोहावली की ओर हमारी दृष्टि जाती है। यों तो बाईस ग्रंथों तक का आज नामोल्लेख पाया जाता है, किन्तु गोसाईं जी के बारह ग्रन्थ ही प्रसिद्ध हैं, जिनमें छह बड़े हैं और छह छोटे। बारह ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(1) रामचरितमानस	(2) विनयपत्रिका
(3) कवितावली	(4) गीतावली
(5) रामाज्ञा	(6) दोहावली
(7) पार्वती मंगल	(8) जानकी मंगल
(9) बरवै रामायण	(10) रामलला नच्छ
(11) कृष्णगीतावली	(12) वैराग्य संदीपनी

इन्हीं बारह ग्रन्थों में से कुछ सरस सूक्तियों का साधारण चयन करके 'तुलसी सूक्ति सुधा' नामक यह ग्रन्थ आज मैं आपके प्रीत्यर्थ प्रस्तुत कर रही हूँ।[2]

सूक्तिसुधा रूपी यह घट ग्यारह बिन्दुओं से भरा गया है—

	पृ० सं०
(1) चरित बिन्दु	1–222
(2) ध्यान बिन्दु	222–234

1. इस सम्बन्ध में आगे विचार किया गया है।
2. श्री वियोगी हरि : तुलसी सूक्तिसुधा : पृ० 1–2 (प्रस्तावना से)

(3) विनय बिन्दु 235–279
(4) तीर्थ बिन्दु 280–295
(5) अध्यात्म बिन्दु 296–319
(6) साधन बिन्दु 319–354
(7) पुरुष परीक्षा बिन्दु 355–378
(8) उद्बोध बिन्दु 379–386
(9) व्यवहार बिन्दु 387–411
(10) निज निवेदन बिन्दु 412–417
(11) विविध सूक्ति बिन्दु 418–437

(1) चरितार्थ बिन्दु :

इसके अन्तर्गत राम, कृष्ण, और शिव चरित सम्बन्धी सूक्तियों का संकलन किया गया है। इनमें सबसे बड़ा रामचरित से ही सम्बन्धित है। 'रामायण', 'जानकी मंगल', 'कवितावली', 'गीतावली' और 'बरवै रामायण' की कतिपय सूक्तियों का चरित के क्रम से इसमें समावेश किया गया है। शिव चरित रामायण और पार्वती मंगल से लिया गया है। इस चरित में हास्य का भी अच्छा वर्णन रहा है।

(2) ध्यान बिन्दु :

इस बिन्दु में भगवान राम, शिव और हनुमान के ध्यान की कुछ सूक्तियों का संग्रह किया गया है। 'रामायण', 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'दोहावली' आदि में राम ध्यान की अनेक सरस सूक्तियाँ हैं। नखशिख वर्णन करने में गोसाईं जी महाकवि सूरदास जी के एक प्रकार से समकक्ष बैठते हैं। शिव ध्यान के बारे में काफी लिखा गया है। रामायण के अलावा 'कवितावली' और 'विनयपत्रिका' से भी भगवान आशुतोष का भव-भयहारी ध्यान चित्रित किया है।

(3) विनय बिन्दु :

इस बिन्दु के अन्तर्गत मुख्यतः राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान, शिव-शक्ति, गणेश, सूर्य आदि की विनय-विषयक सूक्तियों का संकलन किया गया है।

(4) तीर्थ बिन्दु :

इस बिन्दु में अयोध्या, चित्रकूट, काशी, रामेश्वर, गंगा, प्रयाग आदि तीर्थों की महिमामयी सूक्तियाँ संकलित की गई हैं। काशी एवं चित्रकूट के विशद् वर्णन हेतु 'रामायण', 'गीतावली' एवं 'विनयपत्रिका' का सहारा लिया गया है।

(5) अध्यात्म बिन्दु :

इस विमल बिन्दु के अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, माया, अवतार, विराट आदि का निरूपण समाविष्ट है। सगुण-निर्गुण ब्रह्म और पूर्ण ब्रह्म राम में, जीव और ईश्वर में, क्या भेद है—इस पर भी प्रकाश डाला गया है। द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत आदि से

सम्बद्ध सूक्तियों का अच्छा संकलन कर दिया गया है। इसके लिए 'रामचरितमानस' एवं 'विनयपत्रिका' का सहारा लिया गया है। वैराग्य संदीपनी' से भी सरस सूक्तियाँ चुनी गई हैं।

(6) साधन बिन्दु :

इस बिन्दु में साधन धाम, मुक्ति लाभ के अन्य साधन, राम नाम स्मरण की अनिवार्यता एवं अन्य साधनों से सुलभनीय है, इन सबों के बारे में यथेष्ट प्रकाश डाला है। इसके अलावा भक्ति-प्रेम, पराभक्ति, भक्ति-ज्ञान, शान्ति इत्यादि का अध्यात्मवाद में क्या स्थान है, इसका विवेचन तथा ज्ञान-दीपक एवं भगवत्कृपा का सुन्दर निरूपण, सूक्तियों के माध्यम से चित्रित किया गया है। मुख्यतः 'रामचरित-मानस', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' और 'दोहावली' की ही सूक्तियों का संकलन इस बिन्दु में द्रष्टव्य रहा है।

(7) पुरुष परीक्षा बिन्दु :

इस बिन्दु में संत-सत्संग, रागद्वेषरहित, सहज सफल जीवन, अधिकारी, भगवत प्रिय, सन्मित्र, विरक्त, अंगीकृत, असंत, विकल जीवन, अनधिकारी, कुमित्र, पाखण्डी आदि के अलावा क्रूर कलियुग के पाखंडियों के बारे में कही गई सूक्तियों का सचय किया गया है। यह अत्यन्त सराहनीय बन पड़ा है।

(8) उद्बोध बिन्दु :

इस बिन्दु में वैराग्य सम्बन्धी सूक्तियाँ रखी गई हैं। संसार की असारता और अनित्यता क्षण-भंगुरता को जानते हुए भी जड़ जीवों का न जागना, इन विषयों पर चेतावनीस्वरूप सूक्तियों का संकलन किया गया है। अधिकतर 'विनयपत्रिका' की सूक्तियों का ही इस बिन्दु में समावेश रहा है।

(9) व्यवहार बिन्दु :

इस बिन्दु के अन्तर्गत लोकहित, समाज चिन्तन, राजधर्म, राजनीति, सुराज्य-कुराज्य, परोपकार, सेवाधर्म, नारीधर्म तथा साधारण नीति सम्बन्वी सूक्तियों का संकलन रहा है। अधिकांशतः 'रामचरितमानस', 'दोहावली' एवं 'कवितावली' से उनका चयन किया गया है।

(10) निज निवेदन बिन्दु :

इस बिन्दु में गोस्वामी जी के आत्म-निवेदन, आत्म-परिचय सम्बन्धी सूक्तियों का संकलन किया गया है। इनमें तुलसी की निरभिमानता एवं विनयशीलता का पता चलता है।

(11) विविध सूक्ति बिन्दु :

'तुलसी सूक्ति सुधा' के इस अंतिम बिन्दु में विविध सूक्तियों का संकलन रहा है। कलियुग वर्णन, काशी कदर्पना, भारत भक्ति, गुरु, वेद महिमा, संतोष, मूर्तिपूजा, निश्चिन्त निन्द्रा, भक्त विरोध, गर्व गगन, आदर्श प्रेम, द्रोपदी साहाय्य, भगवत्कृपा

एवं अकृपा, आरती, लवकुश, बालिवध आदि के संदर्भों में कथित सूक्तियाँ इस बिन्दु में समाविष्ट हैं।

श्री वियोगी हरि द्वारा 'तुलसी सूक्ति सुधा' में संकलित समस्त सूक्तियों की विवरण तालिका, तुलसीकृत ग्रंथों के संदर्भ में इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है—

	ग्रन्थ नाम	सूक्ति संख्या
(1)	गीतावली	45
(2)	कवितावली	50
(3)	जानकी मंगल	7
(4)	बरवै रामायण	9
(5)	रामाज्ञा	1
(6)	पार्वती मंगल	3
(7)	कृष्ण गीतावली	6
(8)	दोहावली	27
(9)	विनयपत्रिका	36
(10)	रामचरितमानस	178

उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि सूक्ति-प्रयोग की दृष्टि से उनका 'मानस' ही सबसे अधिक समृद्ध है।

जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि वियोगी हरि ने वे सब कथन भी सूक्ति मान लिए हैं जो हमारी दृष्टि में सूक्ति की संज्ञा पाने योग्य नहीं हैं। उनके अनुसार अच्छी उक्ति ही सूक्ति है।[1]

यही नहीं, उन्होंने उन चौपाइयों को भी सूक्ति के अन्तर्गत समाविष्ट कर लिया है जो किसी एक सूक्ति के साथ प्रसंगवसात आई हैं। यथा—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुन सठ कन्या सम ए चारी॥

इस सुक्ति के साथ रहे हुए सन्दर्भगत छन्दों (बालि-सुग्रीव संग्राम) को भी उन्होंने तुलसी सूक्तिसुधा में संकलित कर लिया है, यथा—

असकहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानीं॥
मिटै उभौ बाली अति तरजा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा॥
तब सुग्रीव विकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार वज्र सम लागा॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥
एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रमते नहिं मारेउ सोऊ॥

---

1. उन्होंने वे सब कथन भी सूक्ति माने हैं जो केवल सुकथन भर हैं। नीति-उपदेश, तत्वज्ञान, आदि उनके प्रेरक हेतु नहीं। लेखिका की वियोगी हरि से बातचीत अपने दिल्ली प्रवास में।

कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा ।।
मेली कंठ सुमन के माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला ।।
पुनि नाना विध भई लराई । बिटप ओट देखहिं रघुराई ।।
बहुछल बल सुग्रीव करि हिय हारा भय मानि ।
मारा बाली राम तब हृदय मांझ सरतानि ।।
परा बिकल महि सरके लागे। पुनि उठि बैठि देखि प्रभु आगे ।।
पुनि-पुनि चितब चरन चित दीन्हा। सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा ।।
हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा ।।
धरम हेतु अवतरेहु गोसाईं । मारेहु मोहि व्याध की नाईं ।।
मैं बैरी सुग्रीव पियारा । कारन कवन नाथ मोहि मारा ।।
अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुन सठ कन्या समए चारी ।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकहि जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई ।।
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करेसि न काना ।।
मम भुज बल आसित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी ।।
सुनहु राम स्वामी सकल चलन चातुरी मोरि ।
प्रभु अजहुं मैं पातकी अंत काल गति मोरि ।।
सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निजपानी ।।

× × ×

गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए ।।
राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठते गिरत न जानइ नाग ।

× × ×

लक्ष्मण तुरत बोलाए सुरजन विप्र समाज ।
राज दीन्ह सुग्रीव कँह अंगद कहे जुवराज ।।[1] ।।रामचरितमानस।।

इसी प्रकार 'प्रिय वियोग सम दुःख जग नाहीं' तथा 'जिय बिनु देहि नदी बिनु बारी, तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी' सूक्ति के साथ के समूचे प्रसंग को उद्धृत कर दिया गया है।

वस्तुतः इन सूक्तियों के दिग्दर्शन हेतु संदर्भगत चौपाइयों के संकलन की (जिन्हें वियोगी हरि ने संकलित की है) कोई आवश्यकता नहीं थी। वे तो केवल इतिवृत्त को सूचित करती हैं।

इसी प्रकार चरित बिन्दु में श्री रामचरित के सन्दर्भगत कही गई निम्नलिखित चौपाइयाँ सूक्ति के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकतीं—

---

1. श्री वियोगी हरि : तुलसी सूक्ति सुधा. 'चरितबिन्दु' प. 119–121।

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना । ग्यान नयन निरखत मन माना ।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा । बरनब सोइ बर बारि अगाधा ।।
रामसीय जस सलिल सुधासम । उपमा बीचि बिलास मनोरम ।।

× × ×

पुलक वाटिका बाग बन सुज सुबिहंग बिहारु ।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु ।।[1]
नवमी तिथि मधुमास पुनीता । सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता ।।
मध्य दिवस अति सीत न घामा । पावन काल लोक बिस्रामा ।।
सीतल मन्द सुरभि बह बाऊ । हरषित उर सतन्ह मन पाऊ ।।
बन कुसुमित गिरिगन मनियारा । स्रवहि सकल सरिता मृत धारा ।।
अस्तुति करहि नाग मुनि देवा । बहुविधि लावहिं निज-निज सेवा ।।
सुरसमूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम ।
जग निवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिस्राम ।।

बिप्रधेनु सुर संतहित लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार ।।[2]

श्री वियोगी हरि ने अनेकानेक स्थलों पर यही क्रम अपनाया है ।[3] इसका प्रमुख कारण यही है कि उन्होंने सूक्ति को सु-कथन भर माना है, जो हमारी दृष्टि से उचित नहीं है ।

हमने मानस की सूक्तियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत करना अभीष्ट समझा है ताकि हर पक्ष उभर कर प्रकाश में आ सके —

(1) समाजपरक सूक्तियाँ
(2) राजनीतिपरक सूक्तियाँ
(3) धर्मपरक सूक्तियाँ
(4) दर्शनपरक सूक्तियाँ
(5) भक्तिपरक सूक्तियाँ
(6) मनोविज्ञानपरक सूक्तियाँ
(7) प्रकृतिपरक सूक्तियाँ
(8) विविध विषयक

---

1. श्री वियोगी हरि : तुलसी सूक्ति सुधा 'चरित बिन्दु' पृ. 3 (रामचरितमानस)
2. वही, पृ. 4–5 ।
3. वही, पृ. 99, 35, 27 तथा 27–28 ।

(1) समाजपरक सूक्तियाँ :

गोस्वामीजी के प्रादुर्भाव के समय जो सामाजिक स्थिति थी एवं आदर्श समाज की जो कल्पना उनके मन में थी उसका आभास इन सूक्तियों में मिलता है। इनके अध्ययन से वर्णाश्रम धर्म, पारिवारिक सम्बन्ध, गुरु-शिष्य धर्म, नारी-स्थिति आदि विषयों पर प्रकाश पड़ता है।

(2) राजनीतिपरक सूक्तियाँ :

गोस्वामी जी कोई नेता तो थे नहीं जो राजनीति के बारे में विस्तृत व्याख्या करते। वे तो सन्त महात्मा भक्त थे और 'रामचरित्र—गुणगान' ही उनका परम ध्येय था। फिर भी समाज में रहने के कारण वे समाज से भिन्न नहीं थे। जिस युग में वे जी रहे थे वह बड़ा विश्रृंखल था और पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ा हुआ था।

उनके इष्ट राम 'राजा' भी थें। इस कारण प्रसंगानुसार 'मानस' में राजनीतिक सूक्तियों के भी दर्शन हो जाते हैं। इन सूक्तियों से राजा के कर्तव्य, शासननीति, राजपद, मंत्री, प्रजा, राज्य, शरणार्थी दूत, शरणागत रक्षा, शत्रु आदि विषयों पर प्रकाश पड़ता है।

(3) धर्मपरक सूक्तियाँ :

गोस्वामीजी के आविर्भाव के समय धार्मिक दशा बड़ी शोचनीय थी। परस्पर सामञ्जस्य भाव बनाए रखने की महती आवश्यकता थी। प्रसंगानुसार प्रयुक्त इन धार्मिक सूक्तियों से धर्म-निरूपण, युगधर्म लक्षण, धर्मसाधना, धर्मफल-उद्देश्य, धर्म-परीक्षा-काल, श्रद्धा, पाप-पुण्य, तप, सत्य-असत्य, परोपकार आदि विषयों पर प्रकाश पड़ता है।

(4) दर्शनपरक सूक्तियाँ :

गोस्वामीजी ने 'मानस' में 'रामगुण कीर्तन' के साथ-साथ अपना दार्शनिक चिन्तन भी प्रकट किया है। प्रसंगानुसार प्रयुक्त दार्शनिक सूक्तियों में ब्रह्मरूप (सगुण-निर्गुण), ईशाधीन, ईशकृपा-फल, जीव, जीव-प्रकार, जीव-स्वरूप, जीव-धर्म, जीव-ईश्वर, बन्धन-मुक्ति, ग्रन्थि-विघ्न, मनुष्य-योनि, सृष्टि, जगत्-जंजाल, माया, ज्ञान-भक्ति, काम-क्रोध-लोभ-मोह वृत्तियों, व्याधि, मुक्ति भावी आदि विषयों पर दार्शनिक दृष्टि से चिन्तन प्रकट किया गया है।

(5) भक्तिपरक सूक्तियाँ :

गोस्वामी जी स्वयं भक्त थे। राम भक्त होने के कारण ही उन्होंने प्रचलित भक्ति के रूप की झाँकी प्रस्तुत करने के साथ ही साथ अपने इष्ट के नाम, रूप, लीला-गुण, धाम आदि के बारे में प्रकाश डाला है। भक्तिपरक सूक्तियों से अवतार का हेतु, भक्ति के आवश्यक उपादान, भक्त, भक्त-लक्षण, भक्ति-महिमा, भक्ति प्राप्त करने के साधन, राम से विमुख जीव की दशा आदि विषयों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

(6) **मनोविज्ञानपरक सूक्तियाँ** :

तुलसीदासजी ने व्यक्ति की मनः प्रवृत्ति का भी गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसके अन्तर्गत मनुष्य कोटि, सन्त-असन्त-उत्पत्ति, गुण-अवगुण ग्राह्यता, सन्त-असंत लक्षण, सन्त-असन्त करनी, दुष्ट-नीच, जड़ प्रवृत्ति, कामी-लोभी प्रवृत्ति, भक्त प्रवृत्ति, नारी प्रवृत्ति, अंग-छत हीन व्यक्ति प्रवृत्ति, चोर प्रवृत्ति, जोंक वृत्ति, काक वृत्ति, समान वृत्ति, बक्रगति, बाल स्वभाव, सामान्य विवेक, धर्म शील विरले, समय, असंभव कार्य, शूरवीर, वैर प्रीति के पात्र, जाति-अपमान, खिंचाव, पवित्र स्नेह, परख, आपत्ति, कुपंथ की ओर अग्रसर वृत्ति, स्वार्थ, स्व-प्रशंसा, आदि विषयों से सम्बद्ध प्रभावशाली सूक्तियाँ कही गई हैं।

(7) **प्रकृतिपरक सूक्तियाँ** :

गोस्वामीजी का मन जितना समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, भक्ति, मनोविज्ञान आदि चित्रण करने में रमा है उतना प्रकृति के सौन्दर्य में नहीं। जहाँ कहीं भी प्रकृति उनके समक्ष आई है, आराध्य के रूप-गुण-वर्णन में उपमान बनकर या शील-निरूपण में सहयोगी बनकर। इस परिप्रेक्ष्य में प्रकृतिपरक सुन्दर सूक्तियाँ प्रयुक्त हुई हैं।

(8) **विविध विषयक** :

उक्त विषयों के अतिरिक्त जिन विषय-बिन्दुओं के सम्बन्ध में सूक्तियाँ कही गई हैं उन्हें हमने विविध सूक्तियाँ कहा है। ये सूक्तियाँ कर्म, काल, कारण, कार्य, कवि-कविता, गृह-गमन, नीति, आर्त, धीर पुरुष, संगति, भ्रम, असंभवता, सन्तोष, सोचनीय-जन, व्यर्थ श्रम, कनक स्वभाव, एकाकी जीव की वृत्ति, अग्नि-स्वभाव आदि विषयों पर प्रकाश डालती हैं।

आगे के अध्यायों में उक्त वर्गीकृत सूक्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

5. समाजपरक सूक्तियाँ

तुलसीकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ :

गोस्वामीजी का युग न तो साम्प्रतिक समाज की भाँति अत्यधिक प्रगतिशील ही था, और न प्रतिक्रियावादी ही। उस समय वह बड़ा विश्रृंखल हो गया था। कलियुगी समाज के चित्र द्वारा सामान्य लोगों—सधवा-विधवा, गुरु-शिष्य, पुत्र, लोभी, कामी, आर्त, सन्त-असन्त आदि के बारे में जो नीति की बातें 'व्यंग्य रूप से' कही गई हैं वे पूर्णतः तत्कालीन समाज से ही उद्भूत हैं। वस्तुतः उनकी संस्कार मूलक विचारणा में हमें बौद्धिक तथा सामाजिक सदेशों की ही झलक नहीं दिखाई पड़ती, अपितु उनके पीछे नैतिक धार्मिक, एव आध्यात्मिक विचारों की प्रतिच्छाया भी दृष्टिगोचर होती है।

उस समय सामन्तवादी विचारधारा पनप चुकी थी। उच्चासनारूढ़ व्यक्ति सर्वेसर्वा बन गया था। समाज की दशा दयनीय बन गई थी। ऐसे समय जनता को सन्मार्ग की ओर उन्मुख करने हेतु एक ऐसे चरित्र को अंकित करना वांछनीय हो गया था जो आदर्श की कोटि में रखा जा सके। तुलसी ने श्री राम के चरित्र में उन सब आचरणों को अंकित कर दिखाया जो कि एक आदर्श पात्र (मनुष्य) में होने चाहिए। इसी हेतु मानस की रचना सम्भव रही। गोस्वामी जी ने अपने 'मानस' में कलियुग के लक्षण पूर्व ही निर्धारित कर दिए जो कि तत्कालीन समाज में द्रष्टव्य थे। उन्होंने कलियुग के धर्म को इस प्रकार व्यक्त किया है—

कलियुग में न वर्ण धर्म रहता है, न चारों आश्रम। सब स्त्री पुरुष वेद के विरोधी रहते हैं, ब्राह्मण वेदों को बेचने वाले तथा राजा प्रजा को खा डालने वाले बन जाते हैं यानी कि प्रजा का शोषण ही प्रमुख रहता है। जो डींग मारे वही पंडित समझा जाता है, जो मिथ्याडम्बर-युक्त है वही सन्त योगी है। धन का शोषण करने वाला बुद्धिमान है, झूठ बोलने वाला, हँसी-दिल्लगी करने वाला गुणवान है, लम्बी जटा तथा बड़े-बड़े नख वाला ही तपस्वी है। अमंगल वेषधारी तथा भक्ष्याभक्ष्य खाने वाला ही योगी है। सभी पुरुष नटमर्कट की भाँति स्त्रियों के अधीनस्थ रहेंगे। स्त्रियाँ पथभ्रष्ट रहेंगी, सुहागिनें आभूषणों से रहित तथा विधवाएँ युक्त होंगी। शूद्र जप-तप, हवन आदि कर्म करेंगे तथा अन्य धर्मच्युत होंगे। तपस्वी, धनवान तथा गृहस्थ दरिद्र होंगे। कुलवन्ती सती नारी का निष्कासन होगा एवं आचरणहीन कुलटा को प्रश्रय मिलेगा।[1]

ऐसे समाज से घबराकर उन्होंने एक नवीन आदर्श समाज की स्थापना 'रामराज्य' में की। राम का राज्य एक आदर्श राज्य रहा। वहाँ का समाज एक ऐसा समाज था जहाँ न कोई गरीब था न दुःखी, न लक्षणहीन था न बुद्धि विहीन, सब विद्वान-ज्ञानी थे। कपटी सयानों का तो काम ही नहीं।[2] उनके समाज में सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए वेद मार्ग पर चलते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है न शोक है, और न कोई रोग ही सताता है।[3] प्रत्येक अपने-अपने कर्म में रत हैं। उनकी दृष्टि में शोचनीय वही है जो अपने धर्म से च्युत है। एक स्थल पर गुरु वशिष्ठ मुनि भरतजी को समझाते हुए कहते हैं—

वही ब्राह्मण शोचनीय है जो अपने धर्म को त्याग कर विषयों में रत है। यानी ब्राह्मण का धर्म विषयों का भोगी बन जाना नहीं है। वैश्य का धर्म—पालन करना, खेती करना, अतिथि सत्कार तथा भक्तिरत होना बताया है। क्षत्रिय वर्ण राजा को बताया

---

1. उत्तर का., 98-102।
2. वही, 21।
3. वही, 20।

है जिसका धर्म प्रजा-पालन एवं नीति-निपुण होना है। शूद्र का धर्म सबकी सेवा करना है। अगर वह ब्राह्मणों का अपमान करता है तो मान बड़ाई चाहने वाला तथा बहुत बढ़ कर बात करने वाला है तथा घमण्डी है तो वह शूद्र नहीं, अपने धर्म से च्युत है।[1]

नर और नारी समाज की आधारशिला हैं। नारी में लज्जा, भय, दया, करुणा, शील, सौन्दर्य आदि गुण होने वांछनीय हैं। सबसे बढ़कर वह पतिव्रता होनी चाहिए। सीताजी को अनुसुइया जी यही समझाती हैं कि सबसे श्रेष्ठ नारी वही है जिसने स्वप्न में भी परपुरुष का दर्शन नहीं किया।[2]

इसके प्रतिकूल स्वेच्छाचारिणी, कलहप्रिय, पति को छलने वाली नारी समाज में शोचनीय हैं।[3]

गोस्वामीजी ने प्रत्येक स्थिति को एक आदर्श रूप में ढालने का प्रयत्न किया है। उनकी दृष्टि में प्रत्येक वस्तु सीमाबद्ध होनी चाहिए। अपनी इस भावना को 'रामराज्य' चित्रण द्वारा व्यक्त किया है।

श्रीराम के राज्य में प्रत्येक सीमा बद्ध है। चन्द्रमा अपने कार्य मे रत है। वह सुधा-वर्षा कर पृथ्वी को सरस बना देता है, सूर्य भी उतना ही तपता है जितनी आवश्यकता है और बादल जब जितना चाहिए पानी देने में तत्पर है।[4] उनके राज्य में न कोई लक्षणहीन है, न अल्पायु है, न दुःखी है, दैहिक, दैविक, भौतिक—कोई सा भी प्रकोप नहीं। राजा, प्रजा, ब्राह्मण, गुरु सभी नीति धर्म से युक्त हैं।[5]

गोस्वामीजी ने समाज संघटनात्मक विचारणा के अधीनस्थ किसी न किसी रूप में धर्म, एवं नीति के सोपानों का आश्रय ग्रहण किया है। समाज की विभिन्न इकाइयों के बीच राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, अग्रज-अनुज, वर्ण, आश्रम, गृही, बैरागी, लोभ, मोह, काम, क्रोध, मान, मर्यादा, दंभ, ममता, करुणा, बैर, प्रीति आदि के पारस्परिक सम्बन्धों को समझाने हेतु धर्म एवं नीति को ही माध्यम बनाया है।

व्यवहार में व्यक्ति को किस प्रकार का सम्पर्क स्थापित करना चाहिए, इसके औचित्य अनौचित्य को ध्यान में रख कर अपने जीवनानुभवों के द्वारा सिद्धवाणी के

---

1. अयो. का. 172।
2. अरण्य. का. 5।
3. अयो. का 172/4।
4. उत्तर का. 23।
5. उत्तर का. 21।

कलाकार ने अपनी रचना में उच्चकोटि की सूक्तियों की सरसता को विकीर्ण कर दिया है। यह सब बीते युगों के अनुभवों पर आधारित है।

गोस्वामी जी ने मानस में वैदिक संस्कारों की झाँकी प्रस्तुत की है। अवतार रूप श्री राम को भी संस्कारों से बँधा पाना अभीष्ट माना है। जातकर्म से लेकर वेदारम्भ तक एवं विवाह-संस्कार, पुत्रोष्टि यज्ञ, दाह-संस्कारादि सभी वैदिक रीति से सम्पन्न हुए हैं।

जातकर्म,[1] नामकरण,[2] चूड़ा कर्म,[3] विद्यारम्भ,[4] पाणिग्रहण,[5] आदि सब संस्कार चारों भाइयों (राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न) के किए गए हैं। शिव-पार्वती का पाणिग्रहण भी वैदिक रीति से युक्त ही दर्शाया है। यज्ञ-मन्त्रोच्चारणादि इसी के उपादान हैं।

दाह संस्कार की क्रिया भी तीन जगह सम्पन्न रही है। दशरथ मरण की बात सुनकर श्रीराम के द्वारा दो दिन का निर्जल उपवास करा, समस्त दाह क्रिया विधि-विधानवत सम्पन्न कराई है।[6]

जटायु मरण पर भी श्री राम ने स्वयं उसका दाह संस्कार विधिवत् किया है।[7] रावण की मृत्यु पर भी श्रीराम के आदेशानुसार विभीषण ने देश, काल को ध्यान में रखते हुए संस्कार क्रिया की है।[8]

सर्वत्र कार्य विधिवत रहा है। इससे ज्ञात होता है कि गोस्वामीजी पुरानी परम्परा के अनुयायी थे। वेद, शास्त्रादि की नीति पर चलना ही उन्हें अभीष्ट था; वस्तुतः वे लीक से बँधकर चले हैं। यही कारण है कि अपने 'मानस' में सब वेद, शास्त्र, निगमों का निचोड़ सार रूप में रखा है।[9]

समाजपरक सूक्तियाँ :

सामाजिक सूक्तियों के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार व्यक्त किए गए हैं :

(1) वर्ण व्यवस्था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

---

1. बाल का., 193।
2. वही, 197.1,2,3,4।
3. वही, 203.2।
4. वही, 204.2।
5. वही, 100-101, 323-324।
6. अयो. का. 247.4।
7. अर. का., 32।
8. लंका का., 105.4।
9. बाल का., श्लोक 7।

(2) आश्रम व्यवस्था--ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास ।

(3) माता-पिता ।

(4) पुत्र ।

(5) पुत्रधर्म—आज्ञापालन ।

(6) अग्रज-अनुज सम्बन्ध ।

(7) भ्राता

(8) गुरु-शिष्य धर्म

(9) स्वामी-सेवक धर्म

(10) मित्र-धर्म

(11) वैद्य धर्म

(12) विद्वान

(13) नारी--तुलसी का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण, नारी-रूप, पातिव्रत्य महिमा, पतिव्रता-लक्षण, नारी अवगुण ।

(1) वर्ण व्यवस्था :

समाज के अन्तर्गत गोस्वामीजी ने वर्ण-व्यवस्था स्वीकारी है । इसके अन्तर्गत प्रमुख चार वर्ण माने गए हैं :

(1) ब्राह्मण

(2) क्षत्रिय

(3) वैश्य

(4) शूद्र

इनमें वर्णित तीन वर्ण पूज्य हैं और चतुर्थ वर्ण सेवक है ।

ब्राह्मण का धर्म वेद, यज्ञादि तथा विद्यादान करना बताया गया है ।

गोस्वामीजी की दृष्टि में वही ब्राह्मण शोचनीय है जो अपने धर्म का पालन नहीं करता तथा विषय-भोग में ही रत रहता है ।

सोचिअ विप्र जो वेद विहीना । तजि निज धरमु विषय लयलीना ।।[1]

क्षत्रिय :

क्षत्रिय का कर्म राज्यादि करना, युद्ध करना (देश की रक्षा हेतु) आदि है । इसी वर्ग को शासन की सत्ता सौंपी गई है लेकिन जो शासक अपने धर्म से च्युत है तथा प्रजा रक्षक नहीं, वह क्षत्रिय या राजा नहीं—

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ।[2]

---

1. अयो. का. 172.2 ।
2. वही ।

वैश्य :

तीसरा वर्ग वैश्य का है जिसका प्रमुख पेशा खेती करना, व्यापार करना, देश को धन-धान्य युक्त बनाना तथा सेवा आदि (अतिथि सत्कार) करना माना गया है, लेकिन जो अपने इन कर्तव्यों का परिपालन नहीं करता वह वस्तुतः वैश्य कहलाने का अधिकारी नहीं, उसकी अवस्था शोचनीय ही रहेगी।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू।।[1]

वशिष्ठ-भरत वार्ता में प्रयुक्त यह कथन भरत को आश्वासन देने के लिए कहा है। यहाँ ऐसा लगता है कि गोस्वामीजी ने उपदेश देने के लिए ही इनकी सर्जना की है।

शूद्र :

चतुर्थ वर्ग में शूद्र आते हैं जिनका प्रमुख धर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करना तथा इनकी आज्ञा का पालन करना आदि है। उनसे बढ़कर आगे चलने वाला, अपना मान चाहने वाला तथा ज्ञान का गरूर रखने वाला शोचनीय है।

सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी।।[2]

(2) आश्रम व्यवस्था :

आश्रम धर्म को भी हिन्दू संस्कृति में उच्चासन दिया गया है। प्रमुख चार आश्रम इस प्रकार बताए गए हैं—

(1) ब्रह्मचर्याश्रम।
(2) गृहस्थाश्रम।
(3) वानप्रस्थाश्रम।
(4) संन्यासाश्रम।

गोस्वामी जी ने आश्रम-व्यवस्था को अपने मानस में महत्व दिया है।

ब्रह्मचर्य आश्रम की अवस्था 25 वर्ष की उम्र तक मानी गई है। इस काल में ब्रह्मचारी का प्रमुख धर्म विद्याध्ययन करना, गुरु-सेवा तथा गुरु-आश्रम में ही सब शिक्षा प्राप्त करना है। यदि वह इससे च्युत है तो उसकी दशा शोचनीय है।

सोचिअ बटु निज ब्रतु परि हरई। जो नहि गुर आयसु अनुसरई।।[3]

गृहस्थ :

द्वितीय श्रेणी में गृहस्थ आते हैं जिनका प्रमुख धर्म गृहस्थी का परिपालन, अतिथि सत्कार, गुरु, सन्तों तथा ईश-भजनादि है। उसे अपने इन कर्मों से विमुख नहीं होना चाहिए।

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।[4]

---

1. अयो. का., 172.3।
2. वही।
3. वही, 172.4।
4. वही, 172।

वानप्रस्थ :

वानप्रस्थ की अवस्था 50 वर्ष की उम्र के बाद आती है। इस काल में व्यक्ति गृहस्थी का सत्कर्मों द्वारा परिपालन करता हुआ अन्त में ज्येष्ठ पुत्र को राजकार्य सौंप स्वयं तपस्था-रत रहता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसकी अवस्था शोचनीय है —

बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ।।[1]

संन्यासाश्रम :

अन्त में संन्यासाश्रम आता है जो कि 75 वर्ष की उम्र के बाद माना गया है। इस काल में व्यक्ति संसार, घर, राजकाज आदि से ममत्व को हटा कर अपना सम्पूर्ण जीवन ईश स्मरण, तपादि में व्यतीत करता है। अपने समस्त अनुराग को विषयों से समेट कर ईशोन्मुख कर देता है। ऐसा नहीं करता है तो उसकी दशा भी शोचनीय है।

सोचिअ जती प्रपंचरत, बिगत बिवेक बिराग ।[2]

वशिष्ठ-भरत वार्ता में कथित उक्त सूक्तियाँ आश्रम व्यवस्था की ओर संकेत मात्र करती हैं। यहाँ उनके कर्तव्यों का व्यौरा प्रस्तुत नहीं किया गया है।

(3) माता-पिता :

परिवार में सर्वप्रथम बच्चे का सम्पर्क माता से ही होता है। उसके बाद पिता, भाई-बहिन, आदि अन्य सदस्यों से। सबसे ज्यादा कष्ट सहकर माँ ही बच्चे का लालन-पालन करती है। यदि उसके प्रति उसका बच्चा घृणा भाव रखता है या दोष देता है तो वह उचित शिक्षा युक्त नहीं है। राम के शब्दों में जननी को तो वही दोष देता है जिन्होंने गुरु एवं साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया—

दोषु देहि जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ।[3]

इस पृथ्वी पर उसी का जन्म सार्थक है जिसके चरित्र को सुनकर माता-पिता को परमसुख हो। राम ने यही कहा है—.

धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू ।।[4]

यदि उसके विपरीत आचरण हो यानि जिससे माँ-बाप को अपयश का पात्र बनना पड़े, तो निस्सन्तान रहना ही ज्यादा अच्छा। गोस्वामीजी ने संसार में उसी

---

1. अयो. का. 173.1।
2. वही, 172।
3. अयो. का., 263.4।
4. वही, 46.1।

नारी को पुत्रवती बताया है जिसका पुत्र प्रभु-भक्त हो, इसके विपरीत जो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती हो, वह तो बाँझ ही भली । पशु की भाँति उसका प्रसव करना व्यर्थ ही है—

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुपति भगत जासु सुत होई ।
नतरु बाँझ भलि बादि बि आनी । राम विमुख सुत ते हित जानी ।।[1]

वैसे तो माँ-बाप सिर्फ जन्म के कारक ही माने गए हैं । शील, गुण आदि के दाता नहीं । भरत के शब्दों में—

जनम हेतु सब कंह पितु माता । करम सुभासुभ देइ विधाता ।।[2]

सभी के जन्म के कारक माँ-बाप हैं लेकिन कर्मों का शुभाशुभ प्रदान करना विधाता के हाथ ही है ।

तभी तो एक पिता के अनेक पुत्र पृथक-पृथक गुण, शील आचरण युक्त होते हैं । कोई पण्डित होता है, तो कोई तपस्वी निकल जाता है, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी, कोई सर्वज्ञ और कोई धर्म-परायण होता है ।

एक पिता के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ।
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता । कोउ धनवन्त सूर कोउ दाता ।।
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई ।[3]

लेकिन, पिता की सभी पर समान प्रीति रहती है । उनमें से यदि कोई मन, वचन, कर्म से पिता का भक्त होता है तो वह पुत्र पिता को प्राणों के समान प्रिय लगता है, चाहे वह सब प्रकार से अज्ञान (मूर्ख) ही क्यों न हो —

''''सब पर पितहि प्रीति सम होई ।
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा । सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा ।।
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । जद्यपि सो सब भाँति अयाना ।।[4]

यहाँ पितृ-भक्ति को ही श्रेयष्कर ठहराया गया है । अज्ञान पितृभक्त अधिक प्रियकर है अपेक्षाकृत ज्ञानी, तपस्वी, दानी, शूरवीर, धनवान आदि के ।

(4) पुत्र :

पुत्र को कुल-दीपक माना गया है । वंश वृद्धि इसी पर निर्भर है । पुत्र भी दो प्रकार के होते हैं—सुपुत्र एवं कुपुत्र । सुपुत्र गुणवान, शील-सम्पन्न, विनीत, पितृभक्त

---

1. अयो. का., 75.1 ।
2. वही, 255.3 ।
3. उत्तर का. 87.1,2 ।
4. वही, 87.2,3 ।

आज्ञाकारी, एवं साधु वृत्ति युक्त होता है। इसके विपरीत कुपुत्र इन सब गुणों से वंचित रहता है। जहाँ सुपुत्र कुल को तारने वाला बताया गया है वहाँ कपूत सारे कुल को अपनी करनी के बल डुबो देता है। गोस्वामीजी का कुपुत्र के बारे में यह भाव सही प्रतीत होता है—

जिमि कपूत के ऊपजै, कुल सद्धर्म नसाहि ।।[1]

वैसे तो एक पिता के अनेक पुत्र हो सकते हैं लेकिन उनकी वृत्तियाँ समान हों, यह सम्भव नहीं। उनके शील, गुण, व्यवहार में अन्तर आ ही जाता है—

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहि पृथक गुन सील अचारा ।।[2]

वस्तुतः पुत्र को सुपुत्र ही बनाना चाहिए। उसे माता-पिता की सेवा सच्ची लगन से करनी चाहिए। उनकी आज्ञा को ही शिरोधार्य कर अमल करना चाहिए।

(5) पुत्र-धर्म :

आदर्श पुत्र में जो गुण होने चाहिए या जो लक्षण हुआ करते हैं, उन सब गुणों का समावेश तुलसी ने अपने चरितनायक श्रीराम में कर दिया। जो पुत्र माता-पिता, गुरु, स्वामी आदि के वचनों का यथावत पालन करता है, वही आदर्श पुत्र की कोटि में आता है :

गुरु पितु मातु स्वामि हितवानी।
सुन मन मुदित करिय भलि जानी ।।[3]

उन्हीं की शिक्षा-दीक्षा पर आचरण करने वाले का जन्म सार्थक है, अन्यथा व्यर्थ ही उसने जन्म लिया—

मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर, नतरु जनमु जग जाय ।।[4]

इसके अलावा जो उचित-अनुचित का ध्यान न रखते हुए पिता के वचनों का पालन करते हैं वे ही सुख, सुयश एवं ऐश्वर्य प्राप्त करने के अधिकारी हैं—

अनुचित उचित विचारु तजि जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमर पति ऐन ।।[5]

---

1. किष्कि. का. 15।
2. उत्तर का. 87.1।
3. अयो. का. 177.2।
4. वही, 70।
5. वही, 174।

गुरु, पिता. माता और स्वामी की शिक्षा का (आज्ञा) पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने से पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)—

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले। चलेहु कुमग पग परहिं न खाले।[1]

तथा जिसे माता-पिता प्राण सम प्रिय हैं उसके हाथ में तो चारों ही पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) रहते हैं।

चारि पदारथ करतल ताके प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥[2]

इन सब गुणों का समावेश श्रीराम के चरित्र में देखा जा सकता है। पर आज उक्त सूक्तियाँ सिर्फ सूक्ति मात्र रह गई हैं उन पर आचरण करने वाले विरले ही होंगे।

आज्ञा-पालन :

वेद, शास्त्र, सभी धार्मिक ग्रन्थ इस बात की चेतावनी देते हैं कि प्रत्येक छोटे को बड़ों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। माता-पिता, गुरु, पति एवं सच्चा स्नेही, इन सबका कहना तो बिना किसी विरोध के सबको शिरोधार्य कर लेना चाहिए, क्योंकि इनसे अधिक कोई अन्य शुभचिंतक नहीं हो सकता।

वन-गमन प्रसंग में सीताजी राम का अनुगमन करना चाहती हैं। इस पर श्रीराम उन्हें निम्न कथन द्वारा समझाने का प्रयत्न करते हैं—

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न धरहिं सिर आनि।
सो पछताय अघाय उर, अवसि होत हित हानि॥[3]

जिन्होंने हठ करके उक्त कथन पर आचरण न किया उसका परिणाम सामने है —

हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस॥[4]

(6) **अग्रज-अनुज सम्बन्ध :**

बड़े-छोटों का पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठतायुक्त होना चाहिए। अग्रज को तो आदर्शमय बनना चाहिए ताकि छोटे उसका अनुकरण कर सकें। उसे क्षमाशील, उदार, विनम्र, दयालु आदि वृत्तियों से युक्त होना चाहिए।

प्रत्येक की सीमा निर्धारित कर देना गोस्वामीजी का ही कार्य है। उन्होंने 'मानस' में ऐसे परिवार का चित्रांकन किया है जहाँ बड़े का आदर एवं उसकी उदारता सराहनीय है। कुल की यही रीति है—

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥[5]

---

1. अयो. का., 315.3।
2. वही, 46.1।
3. वही, 63।
4. वही, 61।
5. वही, 15.2।

बड़े को स्वामित्व एवं छोटे को दासत्व तो अवश्य दिया गया है, लेकिन बड़े अपने से छोटों पर स्नेह-दृष्टि ही करते हैं, वे छोटों के कृत्यों के दायित्व को स्वयं वहन कर लिया करते हैं। उनसे भिन्न वे अपना अस्तित्व नहीं रखते—

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं।
जलधि अगाध मौलि बहफेनू। संतत धरनि धरत सिरफेनू ॥[1]

वस्तुतः उनका स्वामी सेवक भाव का यह आदर्श अनुकरणीय बन पड़ा है।

(7) भ्राता :

भाई भी परिवार का एक सदस्य होता है। भ्रातृत्व प्रेम की चाहना हर किसी के हृदय में हिलोरें लेती है, चाहे अपना सगा भाई हो या रिश्ते का। रिश्ते का भाई तो बन भी सकता है या हो सकता है, लेकिन सहोदर किसी कीमत पर नहीं खरीदा जा सकता। संसार में पुत्र, धन, घर और परिवार सभी पुनः मिल सकते हैं या प्राप्त किए जा सकते हैं लेकिन सहोदर (भाई) बार-बार नहीं मिला करता। श्रीराम के शब्दों में--

सुतवित नारि भवन परिवारा। होंहि जाहि जग बारहिं बारा।
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता ॥[2]

भाई कैसा भी हो, बुरे वक्त में वही काम आता है। कष्ट पड़ने पर उसे आगे बढ़ना पड़ता है। जिस प्रकार बज्र के आघातों को रोकने के लिए सर्वप्रथम हाथ ही ऊपर की ओर (रक्षार्थ) उठते हैं उसी प्रकार भाई को ही भाई की व्यथा व्यापती है।

होंहि कुठायं सुबंधु सहाए। ओडि अहिं हाथ असनिहु के धाए ॥[3]

यह सत्य है कि सहोदर पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता, यह भी सत्य है कि आघातों से रक्षा करने के लिए प्रथम हाथ ही आगे बढ़ते हैं लेकिन आज इस तथ्य को पूर्ण सत्य के साथ में नहीं स्वीकारा जा सकता कि विपत्ति पर भाई ही सहायक होता है या वह दुर्दिन में मददगार बन सकता है।

(8) गुरु-शिष्य-धर्म :

गुरु का सदैव से सम्मान्य पद रहा है। कबीर ने भी गोविन्द की अपेक्षा गुरु को पूज्य माना है।[4] गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय शुद्ध नहीं होता और ज्ञान की प्राप्ति नहीं की जा सकती—

---

1. बाल का., 167.4।
2. लंका का., 61.4।
3. अयो. का. 306.4।
4. कबीर दोहावली।

सन्त कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव ।
होइ न विमल विवेक उर गुर सन किए दुराव ।।[1]

जिनको गुरु के वचनों में श्रद्धा नहीं, उनको स्वप्न में भी सुख नहीं—

गुरु के वचन प्रतीत न जेही । सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही ।।[2]

ऐसा नहीं कि केवल शिष्य श्रद्धालु या योग्य हो, गुरु का भी योग्य होना आवश्यक है । गुरु ऐसा होना चाहिए जो अन्धकार को हर कर ज्ञान की ज्योति जगा सके तथा शिष्य का धन हरण न कर उसके शोक, दुख, अज्ञान आदि का हरण करे—

हरहिं शिष्य धन शोक न हरहीं । सो गुरु घोर नरक मह परहीं ।।[3]

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध अटूट होता है । गुरु को चाहिए कि शिष्य को सम्पूर्ण शिक्षा का असली ज्ञान कराए तथा शिष्य का कर्तव्य है कि वह मन वचन कर्म से गुरु के प्रति ही श्रद्धा रखे और स्वयं जाग्रत बना रहे ।

फूलइ फरइ न बेंत, जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहि विरंचि सम ।।[4]

दरअसल दोनों को ही योग्य होना चाहिए । गुरु यदि शिष्य को समस्त ज्ञान गरिमा का वैभव दिखाना चाहे और शिष्य चेतना युक्त न हो, इसके विपरीत यदि शिष्य सही मार्ग के खोज की जिज्ञासा रखे पर गुरु उसको सही मार्ग न दिखाए, ये दोनों ही स्थितियाँ खतरनाक और हानिप्रद हैं । गुरु की चापलूसी न कर यथार्थता का बोध करना चाहिए । यदि वह ऐसा न करेगा तो धर्म का नाश अवश्यंभावी है । गोस्वामी जी ने तभी तो कहा है—

सचिव वैद गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहि भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर, होय बेगिही नास ।।[5]

वस्तुतः गुरु सोच-समझकर ही करना चाहिए । कहावत भी तो है, 'पानी पीजे छान, गुरु कीजे जान' । शिष्य भी मूढ़, बेंत के पेड़ सदृश न हो । मानसकार ने आदर्श गुरु-चेले की सृजना ही अपने मानस में की है । जो गुरु के साथ ईर्ष्या भाव रखते हैं वे नरक मार्ग होकर दारुण यातनाएँ सहन करते हैं--

जे सठ गुरु सन इरिषा करहीं । रौरव नरक कोटि जुग परहीं ।।[6]

---

1. बाल का., 45 ।
2. वही, 80.4 ।
3. उत्तर का., 99.4 ।
4. लंका का., 16 'ख' ।
5. सु. का., 37 ।
6. उत्तर का., 107.3 ।

गुरु के प्रति पूर्ण सेवा-भाव तथा मनःशुद्धि आवश्यक है, क्योंकि बिना गुरु के ज्ञान नहीं हुआ करता और बिना ज्ञान के वैराग्य नहीं होता —

बिनु गुरु होयकि ग्यान ग्यानकि होइ बिरागु बिनु ।.[1]

सद्गुरु मिल जाने पर तो बेड़ा पार है ही । वहाँ फिर सन्देह-भ्रम आदि नहीं ठहरते—

सदगुरु मिलें जाहि जिमि संसय भ्रम समुदाय ।[2]

बिना सद्गुरु के कोई भी चाहे वह ब्रह्म और शिव के समान ही क्यों न हो, भव सागर नहीं तर सकता ।

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई । जो बिरंचि संकर सम होई ।।[3]

अतः गुरु चरणों में अनुराग का होना इस लोक और परलोक दोनों ही के लिए शुभप्रद है ।

जे गुरुपद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ बेदुहं बड़ भागी ।।[4]

(9) स्वामी-सेवक-धर्म :

सच्चे स्वामी एवं सच्चे सेवक का कर्तव्यनिष्ठ बन पाना कठिन कार्य है । स्वामी का धर्म है वह अपने सेवक के अपराधों पर दृष्टिपात न कर, उसकी उसी प्रकार सम्भाल रक्खे जिस प्रकार माँ अपने पुत्र की रखती है ।

सेवक वह जो सेवा का काम करे । सेवक सो जो करे सेवकाई ।।[5]

साथ ही उसका यह धर्म है कि वह अपने स्वामी की आज्ञा के खिलाफ कोई अनुचित कदम न उठाए । 'मानस' में स्वामी-सेवक धर्म का अच्छा चित्र खींचा गया है । सच्चे सेवकों में हनुमान अग्रगण्य हैं । स्वामी के आदर्श रूप में श्रीराम आते हैं । गोस्वामी जी की दृष्टि में सेवक धर्म सबसे कठिन धर्म है । भरत जी के शब्दों में—

सिर बल जाऊँ उचित अस मोरा । सबते सेवक धरम कठोरा ।।[6]

सेवकत्व का यह भाव आदर्श की चरम सीमा पर पहुँच गया है जहाँ सेवक स्वामी की ही इच्छा सर्वोपरि रखता हुआ उसी के भरोसे रहता हो । ऐसी स्थिति में स्वामी को माँ की भाँति उसका पालन-पोषण करना पड़ता है—

---

1. उत्तर का., 89 'क' ।
2. किष्कि. का., 17 ।
3. उत्तर का , 93.3 ।
4. अयो. का., 259.3 ।
5. बाल का., 271.2 ।
6. अयो. का., 203.4 ।

सेवक सुत पति मातु भरोसे । रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे ।।[1]

जहाँ स्वामी ऐसा करे, वहाँ सेवक को उससे दुराव न कर, अपने कर्तव्य का पालन मन, वचन, कर्म से करना चाहिए । ऐसी नीति है कि सूर्य को पीठ से, अग्नि को सामने होकर तथा स्वामी का सर्व-भाव से (छल-कपट, त्याग कर) पालन करना चाहिए—

भानु पीठि सेइअ उर आगी । स्वामीहि सर्व भाव छल त्यागी ।।[2]

सच्चा सेवक वही है जो स्वामी के हितार्थ ही कार्य करे—

करइ स्वामिहित सेवक कोई । दूषन कोटि देइ किन कोई ।।[3]

\+ \+ \+

जो सेवकु साहियहि संकोची । निजहित चाहइ तसु मति पोचा ।।[4]

जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है । सेवक का हित तो इसी में है कि वह समस्त लोभ-सुख छोड़ कर स्वामी की ही सेवा करे—

सेवक हित साहिब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ बिहाई ।।[5]

जो स्वामी की आज्ञा की अवहेलना कर उत्तर-प्रत्युत्तर में संलग्न रहता है, उसे देखकर तो लज्जा भी लजा जाती है—

उत्तरु देइ सुनि स्वामि रजाई । सो सेवकु लखि लाज लजाई ।[6]

सेवक का गौरव तो स्वामी के प्रति पूर्ण प्रेम से ही बढ़ता है । जिस प्रकार सोने को तपाने पर ही उस पर आब (चमक) आती है उसी प्रकार प्रियतम के (स्वामी) चरणों में प्रेम का नियम निबाहने पर ही प्रेमी-सेवक का गौरव बढ़ता है ।

कनकहि बान चढ़ई जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ।।[7]

वस्तुतः सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान तथा स्वामी मुख के समान होना चाहिए । स्वामी सेवक की यही रीति प्रशंसनीय है ।

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होय ।
तुलसी प्रीति की रीति सुन सुकवि सराहहिं सोइ ।।[8]

---

1. किष्कि का., 3.2 ।
2. वही, 23.2 ।
3. अयो, का, 186.3 ।
4. वही, 268.2 ।
5. वही ।
6. वही, 269.3 ।
7. वही, 205.3 ।
8. वही, 306 ।

जिस प्रकार हाथ पैर नेत्र श्रम कर वस्तु प्रदान करते हैं तब मुख ग्रहण कर फिर उसका पोषण करता है, उसी प्रकार सेवक के श्रम द्वारा स्वामी को प्रतिफल प्राप्त होता है तथा उसी प्रतिफल के स्वरूप स्वामी सेवक को पुनः शक्तिमय बना देता है।

वस्तुतः सेवाधर्म बड़ा कठिन है। स्वामी-धर्म में (स्वामी के प्रति कर्तव्य पालन में) और स्वार्थ में विरोध है (दोनों एक साथ नहीं निभ सकते) वैर अंधा होता है और प्रेम को ज्ञान नहीं रहता। अतः स्वार्थवश या प्रेमवश दोनों ही तरफ भूल होने का भय बना रहता है। सेवक वहाँ प्रभु (स्वामी) की इच्छा पर निर्भर रहता है।

इस विषयक भरत का यह कथन देखिए -

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जग जाना।
स्वामि धरम स्वारथहि विरोधू। वैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू ॥[1]

'मानस' में स्वामी सेवक आदर्श अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। आज तो इस भावना से युक्त न तो स्वामी ही है न सेवक ही। वस्तुतः दासत्व किसी को भी स्वीकार नहीं, फिर इन भावनाओं के अनुकरण का प्रयोजन ही क्या ? फिर भी, आदर्श दृष्टान्त के अन्तर्गत इसकी उपयोगिता है।

(10) **मित्र-धर्म** :

प्रत्येक व्यक्ति समाज के अन्तर्गत रहता हुआ एक दूसरे का पूरक है, और जीवन-पथ पर अग्रसर होने हेतु एक दूसरे का सहारा वांछनीय है। इस संसार में कौन अपना सगा है, कौन पराया है, कौन शत्रु है, कौन मित्रता के योग्य है—इन सबकी जानकारी हेतु विद्वानों ने कुछ प्रमुख लक्षण निर्धारित कर दिए हैं ताकि प्रत्येक की प्रमुख प्रवृत्ति के बारे में व्यक्ति परिचित हो सके।

गोस्वामीजी ने भी सच्चे मित्र में किन्हीं प्रमुख गुणों का होना आवश्यक बताया है। 'मानस' में सच्ची मित्रता के द्योतक राम-सुग्रीव हैं। राम ने सुग्रीव से पावक की साक्षी के साथ इस दृढ़ता से हाथ मिला कर मैत्री स्थापित की थी कि बीच में कुछ रह न जाए अर्थात् समस्त भेदभाव, छल-कपट त्याग कर सच्ची मैत्री स्थापित की।[2] हाथ से कसकर हाथ मिलाने का यही आशय है। सच्चा मित्र वही है जो अवगुणों को दूर कर ज्ञान के सन्मार्ग पर ला खड़ा कर दे—

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटे अवगुन्हि दुरावा ॥[3]

---

1. अयो. का., 293.4।
2. किष्कि. का., 5.1।
3. वही, 7.2।

अपने मित्र के दुख को अपने दुख की अपेक्षा अधिक महसूस करे—

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना ।।[1]

कपटी मित्र तो शूल के समान पीड़ा पहुँचाने वाला कहा गया है—

सेवक सठ टप कृपन कुनारी । कपटी मित्र सूल सम चारी ।।[2]

वस्तुतः सच्चे मित्र की कसौटी विपत्ति ही है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपदकाल परिखिहि चारी ।।[3]

अंग्रेजी कहावत 'ए फ्रैण्ड इन नीड इज ए फ्रैण्ड इनडीड' का यह अभिप्राय है।

इसके विपरीत जो मित्र के दुख से दुखी नहीं होते वे व्यक्ति त्याज्य हैं। सन्तों, वेदों का कहना है कि ऐसे व्यक्ति आस्तीन के साँप हुआ करते हैं जिन्हें त्यागने में ही हित है--

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ।

जाकर चित अहि गति सम भाई । अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ।।[4]

(11) वैद्य-धर्म :

शारीरिक व्याधि को दूर करने में वैद्य ही सहायक हुआ करता है। वैद्य का धर्म है कि रोगी को फिर से हृष्ट-पुष्ट कर रोग रूपी शत्रु को विनष्ट कर दे। यदि वह रोगी के साथ जरा भी चापलूसी करेगा या अपना स्वार्थ देखेगा, तथा वही राह सुझाएगा जो कि उसके लिए हानिप्रद है, तो वह सच्चे अर्थों में वैद्य नहीं। इससे तन का नाश अवश्यम्भावी है--

सचिव वैद गुरु तीन जो प्रिय बोलहि भय आस ।
राज धर्म तन तीन कर होहिं बेगि ही नास ।।[5]

उसका धर्म है--रोगी के लाख माँगने पर भी उसे अपाच्य पदार्थ न दे। जिससे उसके रोग को हानि पहुँचती हो उन उपकरणों से उसे अछूता रखे—

कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी । बैद न देहि सुनहु मुनि जोगी ।।[6]

गोस्वामीजी द्वारा प्रयुक्त ये सूक्तियाँ आज के सन्दर्भ में भी लागू होती हैं।

---

1. किष्कि. का., 7.1 ।
2. वही, 7.5 ।
3. अरण्य का., 5.4 ।
4. किष्कि. का., 7.1 ।
5. सुन्दर का., 37 ।
6. बाल का., 133.1 ।

(12) विद्वान :

समाज में विद्वान का सम्मान्य पद रहा है । विद्वान किसी का उपहास नहीं करता । प्रत्येक का उपकार करना ही उनका परम लक्ष्य है । गोस्वामीजी ने विद्वानों का भी चित्र खींचा है ।

'मानसकार' ने विद्वान की महत्ता तो स्वीकारी ही है, उसका विनम्र होना भी सराहा है. । विद्वान को बुद्धिमान बनकर विनम्र होना चाहिए—

जथा नवहिं बुध विद्या पाए ।[1]

उनकी बुद्धिमत्ता इसी में है कि वे सर्वस्व जाता देख कर, ग्राधे का भी त्याग कर देते हैं—

ग्ररध तजहिं बुध सरबस जाता ।।[2]

प्रत्येक कार्य सोच-समझकर करना चाहिए । बिना विचारे जल्दी में किसी काम को करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान नहीं—

सहसा करि पाछें पछिताहीं । कहहि बेद बुध ते बुध नाहीं ।।[3]

कभी-कभी सुन्दर वस्तु देख कर यानी उसके वाह्य ग्रावरण को देखकर चतुर जन विद्वान भी धोखा खा जाया करते हैं—

तुलसी देखि सुवेषु, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर ।।[4]

ग्रत: स्वयं को बुद्धिमान समझ बैठना भूल ही है । गोस्वामीजी ने उसी को विद्वान माना है एवं महत्ता दी है जिसका श्री राम के चरणों में ग्रनुराग भी हो । उनके ग्रनुसार--

सोई सर्वग्यतग्य सोई पंडित । सोइ गुनगृह विग्यान ग्रखंडित ।
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाकें पद सरोज रति होई ।।[5]

काकभुशुण्डि ज्ञानी होते हुए भी भगवत्चरणों के ग्रनुरागी थे । सभी पात्र रामचरण ग्रनुरागी हैं यहाँ तक कि ग्रसत् पात्र रावण भी ।

(13) नारी :

नर ग्रौर नारी समाज रूपी भित्ति की ग्राधारशिला हैं । उनका सम्बन्ध ठीक उसी प्रकार का है जैसा दिन ग्रौर रात, सुख ग्रौर दुख, तथा संयोग ग्रौर वियोग । नारी ग्रौर नर रुपये के दो पहलू हैं--एक चित्त तो दूसरा पट । मनुस्मृति में मनु ने नारी के विषय में कहा है—

---

1. किष्कि. का., 14.2 ।
2. ग्रयो. का., 256.1 ।
3. ग्रयो. का., 231.2 ।
4. बाल का., 161 'ख' ।
5. उत्तर का., 49.4 तथा कि. का., 23.4 ।

प्रजनार्थ स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थ च मानवा ।[1]

इसी के साथ--

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीज भूतः स्मृतः पुमान ।
क्षेत्रबीज समायोगात सम्भवः सर्व देहि नाम् ।।[2]

यहाँ नर-नारी का अर्थ संयोग-सक्षम अवस्था विशेष के नर-नारियों से है। बीज और क्षेत्र की उपमा नर-नारी की स्वभाव भिन्नता को लक्षित कर रही है। बीज पितृ प्रधान व क्षेत्र में मातृ प्रधानत्व है। सृष्टि की वृद्धि के हेतु दोनों का पारस्परिक आकर्षण स्वाभाविक है। क्षेत्र योग्य है एवं बीज भोक्ता। बीज की उत्कृष्टता से भारतीय नर समाज पुरुष प्रधान हुआ।

नारी का सर्वदा से सम्मान्य पद रहा है। उसके विषय में तो यहाँ तक कहा गया है कि जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवताओं का वास रहता है। रिद्धि-सिद्धि सम्पन्न कुल रहता है।[3] वेद, उपनिषद्, स्मृति आदि सभी में नारी की मुक्त कंठ से प्रशंसा की गई है। वह उच्चासनारूढ़ रही है। वेद काल में नारी महिमामयी मन्त्र दृष्टि देवी तुल्य समझी जाती थी और उपनिषद् काल में शक्ति रूप ब्रह्मत्व के समकक्ष। इसके बाद स्मृति और पुराणों में नारी पर मर्यादा-पालन के नाम पर अनेकानेक बन्धन लगा दिए गए। बौद्ध धर्म से विकृत रूप में विकसित वज्रयानी सम्प्रदाय में नारी उच्चासन से गिरी तो तुलसी के समकालीनों ने उसे किंचित क्षमा नहीं किया। कबीर, दादू, मलूकदास आदि सन्तों ने नारी को साधना में बाधक ठहराया।

तुलसी का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण :

जिस समय तुलसीदासजी का आविर्भाव हुआ, उस समय समाज की स्थिति दयनीय थी। सामन्तवादी विचारधारा के कारण नारी पुरुष की सहचरी और सहधर्मिणी न होकर आनन्द और सुख को उत्तेजित करने वाली विलास का साधन मात्र मानी जाती थी। जब गोस्वामी जी साहित्य के क्षेत्र में आए तो नारी की स्थिति दयनीय बन चुकी थी। प्रत्येक कवि अपने समकालीन समाज के सन्दर्भों से प्रभावित होता है। तुलसीदास जी ने भी अपने साहित्य में इस प्रभाव को यत्र-तत्र व्यक्त किया है। पर यह स्मरणीय है कि जहाँ तुलसीदास अपने युग के संदर्भ से पराजित थे, वहाँ

---

1. मनुस्मृति : श्लोक सं. 96, अध्याय 9, पृ. 362।
2. वही, श्लोक 33, अध्याय 9, पृ. 350।
3. यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते तत्र रमन्ते देवताः
   तत्रेस्तास्तु न पूजयन्ते सर्वास्तवाफला: क्रिया:।
   —मनुस्मृति, श्लोक 56, अध्याय 3, पृष्ठ 77।

नारी की महिमा से भी प्रभावित थे। इसीलिए उन्होंने अपने 'मानस' में नारी के मनुष्यत्व की ओर ले जाने वाले रूप की प्रशंसा की है और पशुत्व की ओर ले जाने वाले अवगुणों से युक्त नारी रूप की निन्दा। मायामय रूप धारण युक्त नारी से बचाव की चेतावनी दी है।

वे मनुष्य की महिमा के गायक थे इसलिए उन्होंने अपने 'मानस' में महिमा-मण्डित समाज की कल्पना की है, जहाँ पुरुष-नारी सभी पात्र पशुत्व पर ममुष्यत्व की विजय के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। राम वन-गमन विषयक नारी दुर्बलता के लिए भी उन्होंने देवताओं को ही दोषी ठहराया है। तारा की अवहेलना के लिए बालि को ही फटकारा है। शूर्पणखा के समान दुष्ट हृदया नारी को भी 'हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा' सरीखे सुन्दर उपदेश देने वाली बताया है। उन्होंने परमपद के अधिकार में नर और नारी को समान अधिकार दिलाया है।

परन्तु जहाँ नारी की दुर्बलता अथवा हीनता का प्रश्न आया है, वहाँ उन्होंने पुरानी परम्परागत उक्तियों का सहारा लेकर नारी को सर्व-सामान्य रूप से सहज अपावनि नारी,[1] नारि सहज जड़ अज्ञ,[2] विधिहु न नारि हृदय गति जानी, सकल कपट अघ अवगुन जानी,[3] नारि स्वभाव सत्य सब कहहीं अवगुण सदां आढ उर रहहीं,[4] तिन्ह महं अति दारुन दुखद माया रूपी नारि, जिमि स्वतन्त्र भए बिगरहिं नारी,[5] प्रमदा सब दुख खानि,[6] सकल ताड़ना के अधिकारी,[7] गगन समीर अनल जल धरनी, इनकी नाथ सहज जड़ करनी[8] आदि कह दिया है।

नारी को कितना ही नेह के साथ रखा जाए, लेकिन वह वशीभूत नहीं होती। जब बिगड़ गई तो स्थिति शोचनीय बन जाती है। राम का यह कथन—

राखिय नारि जदपि उर मांही। जुवती शास्त्र नृपति बस नाहीं।[9]

सीता-हरण पर दुखी राम की यह उक्ति उनके प्रति किए गए विश्वासघात की सूचक है। नारी के दो रूप हैं—

---

1. अर. का., 5।
2. बाल का., 57।
3. अयो. का., 162।
4. लंका का., 16।
5. कि. का., 15.4।
6. अर. का., 44।
7. सु. का,. 59.3।
8. सु. का., 59.1।
9. अर. का., 37.5।

(1) सती साध्वी शक्ति रूप ।

(2) मायारूपी कुल्टा, दुराचारणी–सामान्य ।

जहाँ सती साध्वी नारी रूप का सवाल है वहाँ गोस्वामी जी श्रद्धावनत् हैं। वे माता पार्वती, सती अनुसुइया, कौशल्या, जनकनन्दनी सीता के प्रति श्रद्धा से सिर झुकाते हैं, परन्तु उद्दण्ड, स्वतन्त्र, शूर्पणखा, मंथरा आदि जैसी नारियों के विषय में कुछ कहने से भी नहीं चूकते । आदेश यही है कि मनुष्य नारी के मायामय रूप से सर्वदा सतर्क रहे—

दीपसिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग[1] का यही अभिप्राय है ।

यह नारी का भोग्य रूप वैराग्य च्युत साधकों के लिए दूर रखने की वस्तु है। श्रीराम के उपासकों को काम के सभी उपकरणों पर ऐसी ही अनास्था रखनी चाहिए। सब उपकरणों में तीव्रतम उपकरण नारी ही है । अतएव गोस्वामी जी ने ही नहीं, सभी संतों ने उसके इस रूप (वासनामय) को ठुकराया है ।

कबीरदास जी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि नारी की छाया से जब सर्प तक अन्धा हो जाता है तो व्यक्ति तो क्या चीज है, उसका क्या हाल होता होगा ।[2]

तब यदि गोस्वामी जी मायारूपी नारी से बचने के लिए सतर्क करते हैं तो कोई असंगत बात नहीं । उनके वे सभी कथन सत्य प्रतीत होते हैं जो उन्होंने ऐसी नारियों के प्रति कहलाए हैं—

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह के धारि ।
तिन मंह अतिदारुन दुखद, माया रूपी नारि ।।[3]
अवगुन मूल सूल प्रद, प्रमदा सब दुख खानि ।[4]

जब नारी अपना मायावी उग्र रूप धारण कर बैठती है तब वह समर्थ है, अबला नहीं, ऐसी स्थिति में वह क्या नहीं कर सकती—इस बात का एहसास गोस्वामीजी ने इन शब्दों में कराया है—

काह न पावक जरि सके, का न समुद्र समाय ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाय ।।[5]

जिस प्रकार प्रज्वलित होने पर अग्नि सब कुछ भस्म कर डालती है, समुद्र डुबो देने में समर्थ है—उसी प्रकार अबला भी जब अपने उग्र रूप को धारण कर

1. अर. का., 46 'ख' ।
2. जा तन की झांई परत अन्धा होत भुजंग ।
कबिरा तिन की कौन गति जो नित नारी के संग ।। —कबीर ग्रंथावली
3. अर. का., 43 ।
4. वही, 44 ।
5. अयो. का., 47 ।

बैठती है तब वह उचित अनुचित का ध्यान न रख कुछ भी कर बैठने की क्षमता रखती है—वह उदण्ड हो जाती है। उस समय किसी की सीख काम नहीं आती। परन्तु इतना होने पर भी नारी को शरण चाहिए। वह किसी भी दशा में स्वतन्त्र नहीं रखी गई। मनीषियों ने उसके लिए बन्धन गवारा किए हैं—

बचपन में उसे माँ-बाप के नियंत्रण में रखा गया, जवानी पर पति तथा बुढ़ापे में पुत्र की संरक्षता में रख दिया। वह प्रत्येक अवस्था में परतन्त्र बना दी गई। नारी की इस शोचनीय अवस्था को देखकर 'मानस' की मैना यह कह उठी है—

कत विधि सृजी नारि जग माँही। पराधीन सपनेहुँ सुख नहीं।[1]

क्योंकि उसे अधीनस्थ रहना पड़ता है और परतन्त्रता में सुख कहाँ ?

नारी को जड़ कहा गया है, क्योंकि निहित अवगुणों के कारण उसे स्वतन्त्र रखना समाज के लिए कल्याणप्रद नहीं है।

ढोल गंवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह की नाथ सहज जड़ करनी।[2]

गोस्वामीजी की यह सूक्ति--'ढोल गंवार सूद्र पसु नारी""अधिकारी' कुछ विवादास्पद रही है। कुछ विद्वान तो इसे प्रक्षिप्त मानते हैं और कुछ नहीं। इसकी प्रभाविकता के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह प्रायः सभी 'रामायण' में मिलती है और प्रक्षिप्त अंश से सभी लिपिकों और टीकाकारों ने इसे अलग ही रखा है।

पातिव्रत्य महिमा :

जहाँ पुरुष वर्ग के लिए धर्मशास्त्रों में जिन कर्तव्यों-क्रियाओं के परिपालन का आदेश दिया गया है, वहाँ नारी वर्ग के लिए कुछ उपदेश दिए गए हैं जिनका पालन करना उसके लिए हितप्रद है।

गोस्वामीजी ने अपने मानस में एक स्थल पर सीताजी को उपदेश देते हुए सती अनुसुइया के द्वारा नारी धर्म की व्याख्या इस प्रकार करवाई है—नारी के लिए पति ही ईश्वर है, वही उसकी गति है, वही उसका सर्वस्व है। इसके अलावा उसके जीवन का प्राप्तव्य पति सेवा ही है।

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि, अजहु तुलसिका हरिहि प्रिय।।[3]

जो नारी मन, वचन, कर्म से पति के चरणों में अनुराग रखती है उसी को अपना व्रत, नियम, धर्म, कर्म आदि मानती है, वही पतिव्रता कहलाने की अधिकारिणी है।

---

1. बाल का., 102.3।
2. सु. का., 58.3,1।
3. अर. का., सो. 5 'क';

वही नारी महान है जो मन, वचन, कर्म से अपने पति-चरणों में ही अनुराग रखती है--

एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा ।।[1]

वस्तुतः औरत का शृंगार, उसका पति ही होता है। बिना पति के नारी का जीवन व्यर्थ है। उसकी महत्ता 'नारी के लिए' उतनी ही है--जितनी जीव की शरीर के लिए। सीताजी की यह उक्ति सत्य ही है--

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिया बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।
तनु धनु धाम धरनि पुर राजू। पति विहीन सब शोक समाजू।।
जिय बिनु देह नदी बिनु नारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।।[2]

संसार में प्रियतम ही सबकी रोशनी हुआ करता है। उसके बिना तो नारी का संसार ही सूना है। प्रिय-वियोग के समान जगत में अन्य दारुण दुख नहीं--

पिय वियोग सम दुःख जग नाहीं।[3]

गोस्वामी जी ने सन्त-असन्तों की तरह पतिव्रता को भी चार श्रेणियों में रखा है—

(1) उत्तम (2) मध्यम
(3) निकृष्ट (4) अधम

प्रथम तो ऐसी पतिव्रता होती है जो स्वप्न में भी पराये पुरुष का दर्शन नहीं करती--

उत्तम के अस बस मन माँही। सपनेहु आन पुरुष जग नांहीं।[4]

ऐसी नारी उत्तम मानी गई है।

मध्यम वह है जो पराये पुरुष को बाप, भाई, पुत्र आदि के रूप में देखती है—

मध्यम परपति देखे कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।[5]

एक वह जो भय के वशीभूत या बन्धनों की बेड़ियों में जकड़े जाने से पतिव्रत्य का पालन करती है। ऐसी नारी अधम व निकृष्ट है--

धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।[6]

---

1. अयो. का., 5.5।
2. वही, 65.2,4।
3. वही, 64.4।
4. अर. का,, 5.6।
5. वही, 5.7।
6. वही, 5.7,8।

गोस्वामीजी ने 'अधम नारी' को भी पतिव्रता की श्रेणी में रख दिया है। शायद इसका कारण युग वैशिष्ट्य हो, क्योंकि--

कलिवर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुण्य होंहि नहिं पापा ।[1]

लेकिन नारी का सबसे घोरतम पाप पतिवंचना है। धोखा देकर पति का अपमान करना या पर-पुरुषरत नारी नरक की अधिकारिणी मानी गई है--

पति वंचक परपपि रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ।
छण सुख लागि जनम सत कोटी । दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ।[2]

नारी के लिए तो उसका पति कैसा भी हो, चाहे वृद्ध हो, रोगी हो, मूर्ख हो, या निर्धन, अन्धा बहरा क्रोधी, कैसा भी हो वह पूज्य है। नारी की परीक्षा एवं सेवा भावना का यही तो अवसर है।

वृद्ध रोग वस जड़ धनहीना । अंध वधिर क्रोधी अतिदीना ॥
ऐसे हु पति कर किय अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
\+ \+ \+
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिख अहि चारी ॥[3]

वह स्त्री अधम है जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती।

अमित दानि भर्ता बै देही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥[4]

पातिव्रत्य को गोस्वामीजी ने श्रम रहित बताया है क्योंकि सदगति प्राप्त करने का यही सबसे सुगम तरीका है। जहाँ पुरुष जंगल की ओर हजारों वर्ष तपस्या रत रहता है, योग साधनाओं का सहारा लेता है, जिसे ज्ञानी ज्ञान से, योगी योग से तथा भक्त भक्ति के बल पर प्राप्त करने की कोशिश किया करता है, नारी उसे सिर्फ पति सेवा द्वारा ही उसे प्राप्त कर सकती है—

बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छाँडि छल गहई ।[5]

यदि वह उसे अपना धर्म समझकर पालन करती है तो सद्गति की अधिकारिनी है वरन् भरी जवानी में ही वैधव्य दुख भोगने योग्य है—

पति प्रतिकूल जनम जंह जाई । विधवा होइ पाइ तरुनाई ॥[6]

आज प्रायः ऐसा ही देखने में आता है। स्त्री अपने धर्म से विमुख होकर यह दुःख अल्पायु में ही भोगने लगती है। जो कुटिल हो, पतिवंचक हो, कलहकारिनी हो ऐसी नारी गोस्वामीजी की दृष्टि में शोचनीय है—

---

1. उत्तर का., 103.4 ।
2. अर. का., 5.8, 9 ।
3. वही, 5.4,5 ।
4. वही, 5.3 ।
5. वही, 5.9 ।
6. वही, 5.10 ।

सोचिअ पुनि पतिवंचक नारी । कुटिल कलह प्रिय इच्छा चारी ।।[1]

क्योंकि ऐसी स्त्री समाज के लिए कल्याणकारी नहीं होती ।

नारी-अवगुण :

पुरुष से भिन्न नारी में कुछ गुण-अवगुण हुआ ही करते हैं। जहाँ उसमें सौंदर्य, कोमलता, मृदुता, ममता, सहनशीलता आदि गुण बताए हैं वहाँ मनीषियों ने उसमें दुस्साहस (बुरे कार्य को करने का), अनृत, माया, मूर्खत्व, अतिलोभ, निर्दयता आदि अवगुण भी बताए हैं । गोस्वामीजी ने इन्हीं अवगुणों की गिनती कुछ इस प्रकार से कर दी है—

नारि स्वभाव सत्य सब कहहीं । अवगुन सदा आठ उर रहहीं ।
साहस अनृत चपलता माया । भय अविवेक असौच अदाया ।।[2]

रावण द्वारा कथित यह सूक्ति बड़ी मार्मिक बन पड़ी है । न जाने क्यों नारी के प्रति इतनी निर्ममता धारण कर गोस्वामीजी ऐसा कर पाए हैं । व्यवहार पक्ष में मानों शूर्पणखा, मन्थरा को ही समक्ष रख दिया है ।

वस्तुतः नारी एक पहेली है । कब कौनसा रूप धारण कर बैठे, यह ज्ञान नहीं रहता । कहा गया है कि समुद्र की थाह पा लेना सम्भव हो सकता है; परन्तु नारी के हृदय की थाह लगा पाना कठिन कार्य है । जननी के गर्हित कृत्य से लज्जित भरत के ये वचन—

विधिहु न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ।[3]

या

जानि न जाय नारि गति भाई ।।[4]

सत्य प्रतीत होते हैं । अतः जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दरयश, सुबुद्धि, शुभगति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह पर-स्त्री के ललाट को चौथ के चन्द्रमा की तरह त्याग दे (अर्थात् जिस प्रकार लोग चौथ के चन्द्रमा को नहीं देखते उसी प्रकार पर स्त्री का मुख ही न देखें) । मन्दोदरी के शब्दों में देखिए—

जो आपन चाहे कल्याना । सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना ।
सो पर नारि लिलार गौसाई । तजहु चउथ कै चंद की नाई ।।[3]

---

1. अयो. का., 172.4 ।
2. लंका का., 16.2 ।
3. अयो. का. 162.2 ।
4. वही, 47.4 ।
5. सु. का., 38.3 ।

लगता है मंथरा की कुटिलता, कैकेई का अविश्वसनीय-कृत्य, शूर्पणखा का व्यूह चक्र आदि 'मानसकार' को ऐसा कहने पर मजबूर कर गया, क्योंकि इन सूक्तियों के औचित्य का प्रमाण यही तो है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोस्वामीजी ने समाज व्यवस्था को पारम्परिक रूप में ही माना है। वर्णाश्रम व्यवस्था उसी की देन है। परिवार के सदस्यों का कर्तव्य, गुरु-शिष्य, वैद्य आदि का धर्म, आदर्श मित्र, विद्वान, परिश्रम आदि के संबंध में भी उन्होंने यथेष्ट प्रकाश डाला है। नारी धर्म पातिव्रत्य धर्म को विस्तार से समझाया है। किसी आदर्श सभ्य समाज को इन्हीं की अपेक्षा होती है।

6. राजनीतिपरक सूक्तियाँ

तुलसीकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ :

गोस्वामी तुलसीदासजी का प्रादुर्भाव मुस्लिम शासन काल में हुआ था। उस समय देश विदेशी विजेताओं से पदाक्रान्त था और हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों का संघात चल रहा था। प्रत्येक जाति (देश) की संस्कृति में ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कुछ विशेषताएँ होती हैं तथा उन्हें ही श्रेष्ठ मानने का आग्रह भी। मुस्लिम योद्धा काफिरों के प्रति सदा के लिए अनुदार एवं असहिष्णु रहे हैं; उधर हिन्दू भी ऐसे विपरीत आचरण करने वाले को मलेच्छ की संज्ञा से अभिहित करते आए हैं।

मुसलमानों के अत्याचार अधिकतर ब्राह्मणों पर ही होते थे। हिन्दू धर्म अथवा संस्कृति की छाप वाली वस्तुएँ उनकी विनाशक नीति का शिकार होने से बच नहीं पाती थीं। हिन्दू लोग पुराण, रामायण आदि में राक्षसी कृत्यों के वर्णन से परिचित थे। राक्षस भी ऋषियों पर ही अधिक अत्याचार करते थे। ऋषियों के यज्ञ से देवता पुष्ट होते थे, इसलिए यज्ञ विध्वंस भी किया जाता था। फलतः हिन्दू समाज ने यदि मुस्लिम समाज एवं राक्षस वर्ग में समानता देखी हो तो उसकी वह दोषी नहीं।

मुगल सम्राटों का शासन—सैनिक शासन था। उनका उद्देश्य प्रजा पालन और प्रजारंजन नहीं था। तभी कहा गया है कि राजनीति की इन दुःखपूर्ण परिस्थितियों से ऊब कर तुलसीदासजी ने अनेक स्थलों पर राजनीति के आदर्शों का निरूपण किया है।

श्री रामरतन भटनागर के शब्दों में तुलसी की रचनाओं से कई बातें स्पष्ट हैं। उन्होंने कई स्थलों पर कलियुग का वर्णन किया है....। उनके काव्य पर यदि राजनीतिक प्रभाव है तो परोक्ष में। उन्होंने अपने समय के विदेशी राज्य में रावण

के राज्य का प्रतिबिम्ब पाया । अतः उन्होंने विशेष उत्साह से उसका चित्रण किया और उसके विरोध में आदर्श राज्य, रामराज्य की कल्पना उपस्थित की ।[1] जिस शक्ति से उन्होंने राम कथा लिखी है और रावण के प्रति विरोध का प्रदर्शन किया है, वह शक्ति प्रच्छन्न रूप से सामयिक व्यवस्था और विदेशी राज्य के प्रति विद्रोह से ही जन्म ले सकती है ।[2]

गोस्वामीजी ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का तो दिग्दर्शन कराया ही है परन्तु उससे भी अधिक उनका लक्ष्य राजनीतिक आदर्श की प्रतिष्ठा करना रहा है । यह कहना असंगत न होगा कि जहाँ उन्होंने समकालीन परिस्थिति का वस्तु-चित्रण करने में सत्य का प्रतिपादन किया है,[3] वहीं रामराज्य के आदर्श की प्रतिष्ठा[4] द्वारा इससे कहीं अधिक शिव तत्व का निरूपण भी किया है जो कि समाज के लिए अनुकरणीय एवं उपादेय है ।

राजनेता न होते हुए भी राजनीति के विषय में विशेषतौर से राजाओं के कर्तव्यों का उन्होंने जो आदर्श उपस्थित किया है, वह उस समय के सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से अद्वितीय बन पड़ा है । वस्तुतः उनका काव्य आध्यात्मिक अधिक है, लौकिक कम ।

'मानस' में जहाँ-जहाँ राजनीति के चित्र उभारे गए हैं, वे प्रासंगिक ही हैं और इसका कारण यही है कि श्रीराम राजा भी थे । इसीलिए उनके आदर्श राज्य का वर्णन करने हेतु राजनीति के सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण भी वांछनीय समझा गया ।

एक रूपक द्वारा गोस्वामीजी ने राजनीति के अंग-प्रत्यंगों का यह कितना अच्छा चित्र प्रस्तुत किया है--

श्रीरामचन्द्रजी के निवास से वन की सम्पत्ति ऐसी सुशोभित हो रही है मानों अच्छे राजा को पाकर प्रजा सुखी हो । सुहावना वन ही पवित्र देश है । विवेक उसका राजा है और वैराग्य उस देश का सुयोग्य मंत्री, यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणी धान) योद्धा हैं, पर्वत राजधानी है, शान्ति तथा सुबुद्धि दो सुन्दर पवित्र रानियाँ हैं । वह श्रेष्ठ राज्य के सब अंगों से पूर्ण है । मोह रूपी राजा को सेना सहित जीतकर विवेक रूपी राजा निष्कंटक राज्य कर रहा है । उसके नगर में सुख-सम्पत्ति और सुकाल वर्तमान है । वन रूपी प्रान्तों में जो मुनियों के बहुत से निवास-स्थान हैं, यही मानों

1. उत्तर का. 20 से.23 तक ।
2. तुलसी साहित्य की भूमिका, पृ. 310-311 ।
3. उत्तर का. (कलि निरूपण प्रसंग) 97 से 102 तक ।
4. वही, (रामराज्य निरूपण) 19 से 31 तक ।

शहरों, नगरों, गाँवों और खेड़ों का समूह है। बहुत से विचित्र पक्षी और अनेकों पशु मानों प्रजाओं का समाज है। गेंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सूअर, भैंसे और बैलों को देखकर राजा के साज को सराहते ही बनता है। वे सब आपस का बैर छोड़ कर जहाँ-तहाँ एक साथ विचरते हैं, यही मानों चतुरंगिनी सेना है। पानी के झरने की ध्वनि मतवाले हाथी की चिंघाड़ है, मानों वे नगाड़े बजा रहे हों। चकवा, चकोर, पपीहा, तोता तथा कोयलों के समूह और सुन्दर हंस प्रसन्न मन से कूज रहे हैं। भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं और मोर नाच रहे हैं; ये ही मानों उस अच्छे राज्य में चारों ओर मंगल हो। बेल, वृक्ष, तृन सब फल फूलों से युक्त हैं। सारा समाज आनन्द और मंगल का मूल बन रहा है।[1]

इन सब तथ्यों से ज्ञात होता है कि उन्हें राजनीति के समस्त उपकरणों की जानकारी थी एवं आदर्श राज्य की योजना तथा उससे प्रजा की हित कामना गोस्वामी भली-भाँति जानते थे, और शायद ऐसा ही राज्य चाहने के वे पक्ष-पाती थे।

राजनीतिपरक सूक्तियाँ :

राजनीतिपरक सूक्तियों के सम्बन्ध में निम्न प्रकार से जानकारी मिलती है—

1. राजा
2. राजा के कर्तव्य—प्रजा-पालक, मुख सदृश करनी, नीति-प्रज्ञ, कर-ग्रहण युक्ति।
3. शासकनीति
4. राजपद
5. मन्त्री
6. शत्रु
7. प्रजा
8. राज्य
9. शरणार्थी दूत
10. शरणागत रक्षा
11. वंशगत वैशिष्ट्य

1. राजा :

देश का सबसे बड़ा शासक राजा होता है, सारी शक्तियाँ उस पर केन्द्रीभूत रहती हैं। राजा को भूप, नृप, महीपति, आदि पर्याय शब्दों से अभिहित किया जाता है। हमारे देश में शासक अथवा राजा को बड़ा महत्त्व दिया गया है। मनु के

---

1. अयो. का., 235-236।

मतानुसार ईश्वर ने सबकी रक्षार्थ ही राजा की सृष्टि की है।[1] नर रूप में वह एक प्रकार से देवता ही है।[2] गोस्वामी जी ने भी उसे ईश्वर का अंश कहा है।[3]

2. राजा के कर्तव्य :

राजा का प्रधान कर्तव्य 'लोकरंजन कार्य' है। उन लोकरंजन कार्यों में वर्णाश्रम धर्म-रक्षा, वाह्य एवं आन्तरिक विघ्न-बाधाओं से सुरक्षा, न्याय-व्यवस्था की स्थापना, राजकर्मचारियों की नियुक्ति की व्यवस्था, उनके कार्यों का निरीक्षण, आर्थिक कल्याण की व्यवस्था, सार्वजनिक कार्यों की देखदेख की व्यवस्था तथा मद्यशाला के निषेध की व्यवस्थादि प्रमुख है।

शुक्रनीति के अनुसार राजा का परम धर्म है—प्रजा का परिपालन और दुष्टों का निग्रह।[4] राजा प्रजा का रंजन करने वाला होता है। दुष्टों को दण्ड देना, प्रजा का परिपालन करना, राजसूय-यज्ञ आदि कराना, न्यायानुसार कोष का अर्जन करना, अन्य राजाओं को वश में रखना, शत्रु का परिमर्दन करना और भूमि-संग्रह करना, ये आठ कार्य राजा के कर्तव्य माने गए हैं।[5] गोस्वामीजी ने 'मानस' में राजनीति के जो चित्र खींचे हैं उनके आधार पर हम कह सकते हैं कि राजा ईश्वर का अंश है।[6] उसका धर्म प्रजा का पालन-पोषण करते हुए उसे सर्व प्रकार से सुखी रखना है।[7] उसका समदृष्टि होना आवश्यक है।[8] राज-कार्य के लिए प्रजा जन की समानता अपेक्षित है।[9]

राजा में चार नीतियाँ होनी चाहिए।[10] उसका सत्यव्रती होना आवश्यक है।[11] जहाँ तक हो, रक्तपात बचाया जाए।[12] वैर उसी से हो जो बुद्धिबल से जीता

---

1. रक्षार्थमस्य सर्वस्व राजानमसृजतप्रभु।
—मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक 3, पृ. 233।
2. महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।
—मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक 8, पृ. 224।
3. बाल. का., 28.4।
4. शुक्रनीति, 1/4।
5. शुक्र की राजनीति : द्वारा डॉ. श्यामलाल पाण्डेय, पृ. 58।
6. बाल का., 28.4।
7. वही, 71.3।
8. वही, 315।
9. वही, 5.2।
10. लंका. का. 38.5।
11. अयो का. 28,2।
12. लंका का., 174, 6 व 7।

जा सके ।[1] राजा को सभी कार्यों का श्रेय अपने सहायकों को देना चाहिए ।[2] उसको आश्रम धर्म का पूर्ण परिपालन करना चाहिए ।[3] उसे स्वदेश स्वर्ग से भी प्रिय होना चाहिए ।[4] उसे प्रजा का निष्पक्ष पालन एवं दुष्टों का दमन करना चाहिए क्योंकि प्रजा की समृद्धि सुराज्य में ही संभव है ।[5] राज-धर्म में आलस्य और असावधानी अक्षम्य है ।[6]

राजा से कितनी ही घनिष्ठता क्यों न हो जाए, लेकिन इससे उसे वश में नहीं समझ लेना चाहिए । स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के भी वश में नहीं आते ।

शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ।
राखिअ नारि जदपि उर माँही । जुवती शास्त्र नृपति बस ताहीं ।।[7]

श्री राम द्वारा कथित उक्त सूक्ति सत्यता लिये हुए दृष्टिगोचर होती है ।

सूक्तियों के माध्यम से राजा के निम्न कर्तव्य ज्ञात होते हैं —

प्रजा-पालक :

प्रजा का परिपालन राजा का प्रमुख कर्तव्य है । जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी हो वह तो नरक का अधिकारी बताया गया है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।[8]

यहाँ प्रजा का हित ही सर्वोपरि माना गया है । राजा का अस्तित्व प्रजा के लिए ही है । राम ने भरत को सभास रूप में यही बताया है कि गुरुजनों के मंत्रानुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का विवेकपूर्वक पालन-पोषण करना ही राज-धर्म का सर्वस्व है ।[9]

मुख सदृश करनी :

राजा को मुख सदृश होना चाहिए । जिस प्रकार मुख पदार्थ ग्रहण कर समस्त अंगों का परिचालन करता है, सभी को समान रूप से पोषता है उसी प्रकार राजा को सभी उपकरणों पर समान ध्यान देना चाहिए—

---

1. लंका का. 6.3,5 ।
2. सु. का., 32.3,4 ।
3. लंका का., 7.2,3,4 ।
4. उत्तर का., 4.2 ।
5. किष्कि. का., 15.6 ।
6. अर. का., सो., 21.4,5,6 ।
7. अर. का., 37.5 ।
8. अयो. का., 71.3 ।
9. अयो. का., 315.4 ।

मुखिया मुख सो चाहिए खान पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक ।।[1]

नीतिप्रज्ञ :

गोस्वामीजी ने जहाँ राजा की शक्ति दृप्ति को महत्ता दी है वहाँ नीति का अंकुश उसके ऊपर सदैव रखा है । उन्होंने उसे कर्त्तव्यों की पुष्पमाल पहिना कर ही सिंहासनारूढ़ किया है । गुरु सदैव नीति का प्रवचन कर उसे राजधर्म का रास्ता दिखाते चले हैं । जो राजा नीतिप्रज्ञ नहीं, वह शोचनीय है । गुरु वशिष्ठ के शब्दों में—

सोचिय नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ।।[2]

बिना नीति के शासन व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं चल सकती—

राज कि रहइ नीति बिनु जाने ।।[3]

जहाँ ऐसा नहीं, वहाँ समस्त क्लेश और विघ्न-बाधाओं से जूझना पड़ा है । रावण राज्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । इस सम्बन्ध में शूर्पणखा द्वारा कही गई यह उक्ति कितनी सटीक है—

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहि समर्पे बिनु सत्कर्मा ।।
बिद्या बिनु बिवेक उपजाए । श्रम फल पढ़े किए अरु पाए ।।
संग ते जती कुमंत्र ते राजा । मान ते ग्यान पान ते लाजा ।।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अस गुनी ।।[4]

यह सत्य है कि विषय संग से संन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मान से ज्ञान मदिरा पान से लज्जा, नम्रता के बिना प्रीति और मद से गुणवान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । राजा को इन बातों से सतर्क रहना चाहिए ।

श्रेष्ठ राजा को वही कार्य करना चाहिए जो अनुकरणीय हो । इससे वह स्वयं तो सुयश का पात्र बनता ही है, अनुकरण करने वाला भी उससे पर्याप्त लाभ प्राप्त कर सकता है । गोस्वामी जी ने एक स्थल पर कहा है कि जो अत्यन्त बड़ी नदियाँ हैं, यदि राजा उन पर पुल बाँध देता है तो अत्यन्त छोटी चींटिया भी उन पर चढ़कर बिना ही परिश्रम के पार चली जाती हैं—

अति अपार जे सरित बर जो नृप सेतु कराहिं ।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहिं ।।[5]

---

1. अयो का., 315 ।
2. वही, 172.2 ।
3. उत्तर का., 112.3 ।
4. अर. का., सो. 21.4,5,6 :
5. बाल का., 13 ।

उनके कहने का आशय यही है कि श्रेष्ठ राजा की करनी सबको फलदायक हुआ करती है। उससे उचित लाभ उठाकर अपने कर्म में रत रह सकते हैं।

कर-ग्रहण-युक्ति :

राजा को प्रजा से कर अप्रत्यक्ष रूप में लेना चाहिए ताकि प्रजा को इस कर भार का अहसास न हो और राज्यकार्य हेतु राजस्व की समस्या—समस्या न बनी रहे। वह सूर्य के सदृश्य तेजस्वी भी होना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य अकेला अप्रत्यक्ष रूप में अपनी बलवती किरणों द्वारा समुद्र के पानी को अपनी ओर खींचता जाता है और बादल द्वारा जल वृष्टि कर (प्रत्यक्ष रूप में) जीवन दान देता है--उसी प्रकार राजा को अप्रत्यक्ष रूप में जनता से ग्रहण कर उसे जनहितार्थ करणीय कार्यों में व्यय करना चाहिए। अपने ऐश-आराम हेतु उसका उपयोग नहीं करना चाहिए।

गोस्वामीजी ने दोहावली में यही भाव व्यक्त किया है।[1] पृथ्वी तभी धन धान्य सम्पन्न होती है। उनके राज्य में यही स्थिति थी।

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी के सम्पत्ति जैसी ।।[2]

जिस प्रकार उपकारी व्यक्ति की सम्पत्ति पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं होता; वह सबके लिए भोग्य है, उसी प्रकार उर्वरा मेदिनी पर बिखरी इस राशि को उपभोग करने का सबको अधिकार है। वह सबके हितार्थ ही फली-फूली है।

3. शासक-नीति :

राजा की धर्म-नीति के चार चरण हैं--साम, दाम, दण्ड और भेद। ये चारों भूप-गुण हैं। यद्यपि गोस्वामीजी ने उपर्युक्त चतुर्विध राजनीति का परिपालन करने की श्रेयस्करता को स्वीकार किया है तथापि उनकी दृष्टि में वही राजा श्लाघ्य है, जिसे दण्ड प्रयोग करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती हो।

राम के आदर्श राज्य में दण्ड केवल यतियों के करों में ही दृष्टिगोचर होता है, दूसरी ओर कलियुग के गंवार, गौड, और यंवन राजा केवल कराल दण्ड के बल पर ही शासन करते हैं।

दण्ड जातिन्ह कर भेद जह नर्तक नृत्य समाज।
साम न दान न भेद कलि केवल दण्ड कराल ।।[3]

'मानस' में अंगद का रावण से यह कथन कि 'राजा साम, साम, दण्ड, भेद नीति युक्त होना चाहिए', द्रष्टव्य है—

---

1. वरखत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोय।
तुलसी प्रजा सुभागते भूप भानु सौ होय ।। दोहावली, दो. सं. 508।
2. किष्कि. का. 15.3।
3. उत्तर का., 22।

सास दाम अरु दण्ड विभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा ।।[1]

सामादि चारों उपायों का व्यवहृत रूप भी 'मानस' में यथास्थान मिलता है।

सुग्रीव के प्रति 'साम', विभीषरा के प्रति 'दान', बालि के प्रति 'भेद' तथा रावरा के प्रति 'दण्ड' इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

4. राज-पद :

राजा गद्दी पर बैठकर अपने कर्तव्यों की ओर देखता रहे तभी सुराज्य बन सकता है, नहीं तो प्रजा सदैव खिन्नमना रहती है। राज मद सबसे बड़ा मद है जिसे पाकर सबकी बुद्धि चकरा जाती है, उसने किसको कलंकित नहीं किया ?

केहि न राज मद कीन्ह कलंकू ।।[2]

× × ×

सबते कठिनु राज मदु भाई ।।[3]

राजपद पा जाने पर सारा जगत ही पागल (मतवाला) हो जाता है।

जग बौराइ राजुपदु पाए ।[4]

अतः राजपद प्राप्त कर राज-मद से बचना चाहिए।

5. मन्त्री :

वस्तुतः शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने में मन्त्रियों का बड़ा हाथ हुआ करता है। मन्त्री राजा का दायाँ हाथ माना गया है। यदि यह कहें कि मन्त्री के बल पर ही राजा की गाड़ी चलती है तो असंगत न होगा। लेकिन राजा को योग्य मन्त्रियों की मन्त्ररगा से ही कार्य करना चाहिए। मन्त्री भी सुयोग्य होने चाहिए। 'जी-हजूरी' करने वाले पतन के गर्त की ओर धक्का दे सकते हैं। गोस्वामीजी की यह सूक्ति कितनी सारगर्भित है—

सचिव बैद गुरु तीनि जौ प्रिय बोलहि भय आस ।
राज धर्म तन तीनु कर, होइ वेगि ही नाश ।।[5]

यह सत्य है। यदि मन्त्री, वैद्य एवं गुरु तीनों अप्रसन्नता के भयवश या लाभ की आशा से अपने धर्म से च्युत होकर अन्यायपूर्ण विधियाँ अपनाने लगें तो राज्य, धर्म, एवं शरीर का पतन अवश्यम्भावी है।

---

1. लंका का., 38.5 ।
2. अयो. का., 229.1 ।
3. वही, 231.3 ।
4. वही, 228.4 ।
5. सु. का. 37 ।

राजा को मन्त्रियों के बल पर ही राज्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे अल्प-बुद्धि युक्त भी तो हो सकते हैं—

नीति विरोध न करिय प्रभु । मंत्रिन्ह मति अति थोरि ।।[1]

उनकी मंत्रणा से राज्य को घातक क्षति पहुँच सकती है । कुमंत्रणा से राजा बहक सकता है—

संग ते जती कुमंत्र ते राजा ।

\+ + +

नासहिं बेगि नीति अस सुनी ।।[2]

6. शत्रु :

शत्रु-मित्र भी शीघ्रता में प्रत्येक को नहीं बना लेना चाहिए । शत्रुता तो खतरनाक बला है । इसके लिए कहा गया है कि जिसे बुद्धि, बल से जीत सको उसी से शत्रुता ठानी । मन्दोदरी की यह उक्ति कितनी सार्थक है —

नाथ बयरु कीजै ताही सो । बुधि बल सकइ जीति जाही सो ।[3]

कहावत भी तो है—

लायक ही सौ कीजिए वैर व्याह अरु प्रीति ।

ऋण एवं शत्रु को तनिक भी शेष नहीं रहने देना चाहिए —

रिपुरिनु रंच न राखब काऊ ।।[4]

तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तब भी उसको कम शक्तिवान् नहीं मानना चाहिए । सिर मात्र बचा राहु आज तक सूर्य, चन्द्रमा को दु:ख दे रहा है—

रिपु तेजसी अकेलि अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।
अजहु देत दुख रबि ससिहि सिर अव सेषित राहु ।।[5]

वस्तुत: शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी, सर्प को छोटा करके नहीं समझना चाहिए —

रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि ।।[6]

कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिनसे भूल कर भी वैर नहीं ठानना चाहिए । मारीच का यह कथन कि जो शस्त्रधारी हो, भेद जानने वाला हो, समर्थ, स्वामी, मूर्ख, धनवान्, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया हो, इन नौ व्यक्तियों से विरोध (वैर) करने में कल्याण नहीं होता ।

---

1. लंका का. 8 ।
2. अर. का. सो., 21.5,6 ।
3. लंका का. 6.3 ।
4. अयो. का. 229.1 ।
5. बाल का. 170 ।
6. अर. का., सो. 21 ।

तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहि विरोधे नहिं कल्याणा ।
शस्त्री मर्मी प्रभु सठधनी । बैद बंदि कवि मानस गुनी ।।[1]

इसके अलावा जिसके हाथ में काल, कर्म, जीव सभी हो उससे विरोध करना भी उचित नहीं । मन्दोदरी की रावण को यही सीख है—

तासु विरोध न कीजिअ नाथा । काल कर्म जिव जाकें हाथा ।।[2]

प्रीति-बैर बराबरी वाले (समान हैसियत वाले) से ही करना चाहिए । सिंह यदि मेंढकों को मारे तो क्या उसे कोई भला कहेगा ? अंगद रावण से यही बात कहता है—

प्रीति विरोध समान सन करिअ नीति असि आहि ।
जौ मृगुपति वध मेडुकन्हि भलकि कहइ कोइ ताहि ।। [3]

7. प्रजा :

'मानस' में प्रसंगवश प्रजा का जो भी चित्र अंकित हुआ है, उससे सूचित होता है कि उस युग की प्रजा राजाज्ञा का उल्लंघन कर सकने में असमर्थ है, चाहे वह अन्यायपूर्ण ही हो । वह राजभक्त है, रामभक्त है । परन्तु उसका जैसे अपना कुछ भी व्यक्तित्व नहीं है । उसमें कहीं भी तेज नहीं, दर्प नहीं, जागृति नहीं । वह मूक पशु मात्र है जो राजाज्ञा के डण्डे पर नाचती है । उसकी बला से राजा कोई भी हो, उसे कोई हानि नहीं । मंथरा के कथन में यह खीझ स्पष्ट व्यक्त हो रही है—

कोई नृप होय हमें का हानी । चेरि छांडि अब होउ कि रानी ।[4]

यदि राजनीतिक जागृति तुलसीदास का ध्येय होता है, तो वे तेजस्वी प्रजा की अवतारणा करने में नहीं चूकते । सच तो यह है कि भारतीय 'स्मृति' ग्रन्थों में भी प्रजा का कहीं उभरा हुआ व्यक्तित्व नहीं है ।

8. राज्य :

राजा की शासन व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए जहाँ सबको उन्नति के समान अवसर प्राप्त हों, कोई दुखी न हो, प्रजा भयभीत न रहे तथा सबको समानता का अधिकार प्राप्त हो । इस दृष्टि से 'मानस' का रामराज्य सुराज्य की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है । राम राज्य की कल्पना कवि कल्पना नहीं, यह करोड़ों वर्ष पूर्व भी विख्यात था । एक ऐसा राज्य जहाँ सब नियमबद्ध हैं, सब अपने-अपने धर्म पर स्थित हैं, वेदानुकूल ही कार्य करते हैं, कोई किसी से वैर नहीं करता, जहाँ ईर्ष्या-द्वेष पास तक नहीं झाँक सके हैं । सब त्रिताप से मुक्त हैं यानि कि

---

1. अर. का., 26.2 ।
2. लंका का., 6.5 ।
3. लंका का., 23 'ग' ।
4. अयो. का., 16.3 ।

दैहिक, दैविक, एवं भौतिक व्याधि से कोई भी संतप्त नहीं है। सब अपने धर्म में रत हैं। धर्म भी अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत् में परिपूर्ण हो रहा है।

जिसके राज्य में प्रीति, सदाचार, न्याय, ज्ञान-विज्ञान आदि की प्रतिष्ठा हो, जिसके राज्य में चारों ही पदार्थ सुलभ हों, वह राजा महान है।[1]

इसके विपरीत जिसके शासन में प्रजा दुःखी हो, जहाँ अन्याय, अत्याचार, आदि पनप उठे हों, वह राजा राज्योपयोग के अयोग्य है और नरक का अधिकारी है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥[2]

सुराज्य में ही प्रजा फलती-फूलती है। उसकी बढ़ोत्तरी भी इस अवस्था में सम्भव है—

सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजू ॥[3]

\+ \+ \+

पाइ सुराज सुदेश सुखारी ॥[4]

विविध जंतु सकुल महि भ्राजा। बढ़ प्रजा जनु पाई सुराजा ॥[5]

यहाँ बढ़त्तरी से अर्थ प्रगति शीलता से है। न कि पैदायश से।

सुराज्य में विरोधी दल लुप्त प्रायः हो जाते हैं। ठीक वैसे जैसे—

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥[6]

और यहाँ अत्याचारियों के दमन से सब लोग सुख की नींद सोते हैं। जहाँ प्रजा को अपने धन जन की चिन्ता ही नहीं हो, वह राज्य कितना सराहनीय होगा।

इसके विपरीत जहाँ कु-शासन का बोलबाला होता है, वहाँ प्रजा तो पीड़ित रहती ही है उसे नाना प्रकार के कष्टों, 'दैविक' का भी सामना करना पड़ता है। अकाल, महामारी, अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि लगी ही रहती है—

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिविध ताप पीड़ित ग्रह भारी ॥[7]

अधिक जल बरसना, न बरसना, चूहों का उत्पात, टिड्डियों, तोते और दूसरे राजा की चढ़ाई, खेतों में बाधा देने वाले इन छह उपद्रवों को ईति कहते हैं और इन सबका कारण राजा का अनीति, दुराचारी, तथा पथ-भ्रष्ट होना माना गया

1. उत्तर का., 21 से 23 तक।
2. अयो. का., 71.3।
3. अयो. का., 235.3।
4. अयो., का. 235.2।
5. किष्कि. का., 15.6।
6. किष्कि. का., 15.2।
7. अयो. का., 235.2।

है । सत्यप्रज्ञ, विवेकशील तथा नीतिप्रज्ञ राजा के राज्य में ये सब पास तक नहीं फटकते ।

9. शरणार्थी-दूत :

शरणार्थी की रक्षा करना प्रत्येक राजा का धर्म है । चाहे शत्रु हो या उसका 'दूत' जो भी समक्ष आए, राजा का कर्त्तव्य है कि वह उनका उचित सम्मान करे। दूत को दण्डित करना असंगत है । रावण के यहाँ जब हनुमानजी दूत बनकर जाते हैं तब उसे विभीषण यही सीख देते हैं कि दूत को मारना नहीं चाहिए—

नाइ सीस कर बिनय बहूता । नीति बिरोध न मारिय दूता ।।[1]

दूत का महत्त्व आज भी स्वीकारा जाता है । आज इसे राजदूत के नाम से अभिहित किया गया है जिसका सम्बद्ध देशों में उचित सम्मान किया जाता है ।

10. शरणागत रक्षा :

राजा का धर्म है कि वह (चाहे शत्रु हो या मित्र) शरण में आए हुए को अपने प्राणों की तरह रखे । विभीषण के राम की शरण में आने पर श्रीराम का वानर, भालुओं की शंका पर कथन कि जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग कर देता है, वह पामर और क्षुद्र है । उसके अवलोकन में भी हानि है । चाहे उसे करोड़ों ब्रह्म हत्या का पाप लगा हो फिर भी शरण में आने पर उसे नहीं त्यागना चाहिए । भयभीत होकर जो भी शरण में आ जाता है, उसे प्राणों की तरह रखा जाना चाहिए—

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पांवर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ।।[2]
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू । आए सरन तजउ नहि ताहूँ ।
जो सभीत आवा सरनाई । रखिहऊँ ताहि प्रान की नाई ।।[3]

11. वंशगत वैशिष्ट्य :

कुछ गुण-अवगुण वंशगत चले आते हैं जो कालान्तर में उस वंश विशेष की निजी विशेपता बन जाते हैं । जैसे—

राजपूत सर्वदा निडर और लड़ाकू प्रवृत्ति का नजर आएगा तो वैश्य वंशोत्पन्न व्यक्ति अधिकांशतः संकोचशील होगा ।

उस युग के वंशजों का अवलोकन कर गोस्वामी जी ने रघुवंशियों के कुल में यह पाया कि उनका मन कुमार्ग पर स्वपन्न में भी पैर नहीं रख पाया । एक स्थल पर इस कथ्य की पुष्टि श्रीराम के मुखारविन्द से इस प्रकार हुई है—

---

1. सु. का., 24.4 ।
2. सु. का., 43 ।
3. वही, 44.1, 4 ।

रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरिह न काहूँ ।।[1]

फुलवारी-प्रसंग पर सीता दर्शन के बाद मन में उठे भावों को श्रीराम इस कथन द्वारा भाई लक्ष्मण पर व्यक्त कर रहे हैं। वे अपनी वंशगत विशेषता की याद दिला उससे विरक्त होने की युक्ति सोच रहे हैं।

'रघुवंशियों की दूसरी विशेषता सत्यप्रियता या बचन बद्धता' बताई है। वे इतने सत्यवादी होते हैं कि प्राण भले ही चले जाएँ पर कहा हुआ बचन वापस नहीं लिया जाता। दशरथ–कैकेई की वार्ता के सन्दर्भ में इसी कथन की पुष्टि की गई है। दशरथ वचनबद्ध थे। उन्होंने प्राण त्याग दिए पर कैकई को दिए वरदान से विमुख वे न हुए –

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जांय वरु वचन न जाई।[2]

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से कतिपय राजनीतिक आदर्शों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। राजा के सम्बन्ध में कहा गया है कि उचे प्रजा-पालक एवं अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहना चाहिए। वह राजा ही क्या जिसके राज्य में प्रजा दुःखी हो। उसे प्रजा की सम्मति से ही कार्य करना चाहिए। मन्त्री भी वफादार, कर्तव्य-निष्ठ होना चाहिए। वही सुराज्य है जहाँ प्रजा सुखी एवं धन-धान्य सम्पन्न हो। राज्य को यथासम्भव रक्तपात से बचाया जा सके, अन्यथा उसे आर्थिक संकट का सामना करना पड़ेगा। सन्धि-हेतु या अन्य कार्यवश अगर दूत समक्ष आए तो उसके साथ उचित व्यवहार हो। संक्षेप में गोस्वामीजी ने आदर्श राज्य की कल्पना राम-राज्य के रूप में ही साकार देखी है।

7. धर्मपरक सूक्तियाँ

धर्म :

धर्म एक तरह का जीवन व्यवहार और अनुभव है। यह अन्तःकरण की विशिष्ट प्रवृत्ति है। धर्म का अर्थ धारणा से है जिससे मनुष्य की नैतिकता का माप-दण्ड निर्धारित होता है। प्रत्येक पग पर मनुष्य धर्म को किसी न किसी रूप में अंगीकार करता चलता है।

जगत् के सकल नानात्मक रूप व्यापारों की संज्ञा 'धर्म' है। प्राणी के उद्भव से लेकर उसके विकास क्रम की सभी अवस्थाओं में धर्म की व्यापकता सिद्ध है। क्षुद्र प्राणियों (जीवों) का धर्म उनकी भौतिक प्रकृति तक सीमित है, परन्तु मनुष्य में धर्म केवल भौतिक अंशों तक ही सीमित न रहकर उसके जीवन का सम्पूर्ण क्रम बन

---

1. बाल का. 231.3।
2. अयो. का, 28.2।

जाता है, वही उसके कर्त्तव्यों का संचालन करता है। यह हमारे आत्म संयम के विधेयात्मक और निषेधात्मक सभी अंगों का विवेचन करता है। धर्म का सबसे बड़ा सिद्धान्त है कि हमें हर दिशा में अपना कर्तव्य करना चाहिए, परन्तु केवल भोग अथवा स्वार्थ की भावना से नहीं।[1] इसीलिए धर्म नैतिक तथा पारमार्थिक आनन्द का मार्ग माना गया है। 'हिन्दी मानक कोश' में धर्म की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

1. पदार्थ मात्र का वह प्राकृतिक तथा मूल गुण, विशेषता या वृत्ति, जो उसमें बराबर स्थायी रूप से वर्तमान रहती है, जिससे उसकी पहचान होती हो और उससे कभी अलग न की जा सकती हो। जैसे आग का धर्म जलना और जलाना या जीव का धर्म जन्म लेना और मरना है।

2. सामाजिक क्षेत्र में नियम, विधि, व्यवहार आदि के आधार पर नियत तथा निश्चित वे सब काम या बातें जिनका पालन समाज के अस्तित्व या स्थिति के लिए आवश्यक होता है और जो प्रायः सर्वत्र सार्विक रूप से मान्य होती हैं। जैसे अहिंसा, दया, न्याय, सत्यता आदि का आचरण मनुष्य मात्र का धर्म है।

3. लौकिक क्षेत्र में वे सब कर्म तथा कृत्य, जिनका आचरण या पालन किसी विशिष्ट स्थिति के लिए विहित हो। जैसे (क) माता-पिता की सेवा करना पुत्र का धर्म है। (ख) पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ आदि करना ब्राह्मणों का मुख्य धर्म माना जाता है।

4. आध्यात्मिक क्षेत्र में ईश्वर, देवी-देवता, देवदूत 'पैगम्बर' आदि के प्रति मन में होने वाले विश्वास तथा श्रद्धा के आधार पर स्थिति व कर्तव्य, कर्म अथवा धारणाएँ जो भिन्न-भिन्न जातियों और देशों के लोगों में अलग-अलग रूपों में प्रचलित हैं और जो कुछ विशिष्ट प्रकार के आचार शास्त्र तथा दर्शन शास्त्र पर आश्रित होती हैं, जैसे ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म आदि।

'मनु ने धर्म के दस लक्षण—'धैर्य, क्षमा, दम, अर्थात् विषयों में अलिप्तीकरण की भावना, चोरी न करना, वाह्य एवं आन्तरिक शुद्धता (शौच), इन्द्रियों को रोकना, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध' बताए हैं।[3]

---

1. हिन्दी विश्व कोश, खण्ड 6, सं. फूलदेव सहाय वर्मा, पृ. 167–168, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
2. हिन्दी मानक कोश, तीसरा खण्ड, पृ. 157–58।
3. धृतिः छमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यम् क्रोधो दशकं धर्म लक्षणाम्॥
—मनुस्मृति 6/92, 221।

याज्ञवल्क्य का भी यही कथन है ।[1] पुराणों में भी धर्म की चर्चा रही है। 'महाभारत' में व्यासमुनि ने कहा है कि धर्म को किसी भी अवस्था में नहीं छोड़ना चाहिए । न तो किसी कामनावश, न किसी भय से और न लोभ से; यहाँ तक कि जीवन हेतु से भी धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए । इसके अलावा 'अहिंसा परमो धर्मः' तो विख्यात उक्ति मानी ही गई है ।

'पद्मपुराण' में धर्म के दस अंग ब्रह्मचर्य, सत्य-तपस्या, दान, नियम, क्षमा, पवित्रता, अहिंसा, शान्ति तथा अस्तेय बताए गए हैं । 'मत्स्यपुराण' में भी अद्रोह, अलोभ, दम, जीवों के प्रति दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, अनुक्रोश क्षमा और धृति सनातन धर्म के मूल कर्तव्य कहे हैं ।[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कर्तव्य के निरन्तर अभ्यास से जनित कर्तव्य पालन तथा शुभ संकल्पों के चुनने की आदत को 'धर्म' कहते हैं । धर्म कर्तव्यों का आन्तरिक पक्ष है, कर्तव्य धर्म का प्रकाशन या वाह्य रूप है । यह आन्तरिक जगत् या आचरण की संचालिका शक्ति है ।[3]

वास्तव में मनुष्य एवं पशु में यही तो भेद है कि मनुष्य को ईश्वर ने धर्म दिया है और पशुओं को धर्माधर्म का कोई ज्ञान नहीं तभी तो यह कहा गया है[4]——

आहार निद्रा भय मैथुनं च
सामान्य मेतद् पशुभिर्नराणम
धर्महि तेपामधिकोविशेपो,
धर्मणहीनः पशुमः समाना ।।

अर्थात् आहार, निद्रा, भय, मैथुन इत्यादि सांसारिक बातें पशु और मनुष्य दोनों में समान व्याप्त हैं । एक धर्म (ईशभक्ति) ही मनुष्य में विशेष है और इसी हेतु वह अन्य जीवों से एक सीढ़ी ऊपर है । धर्म के लिए कोई निश्चित समय नहीं कि अमुक अवस्था या अमुक वक्त पर ही इसे करना वांछनीय है ।

---

1. अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिद्रिय निग्रह ।
   दान दमो दया क्षान्तिः सर्वेपर धर्म साधनम् ।।

   —याज्ञवल्क्य, 9/92 ।

2. सत्यमस्तेयम क्रोधोहीः शौचे धी धृति दर्मः
   संयतेन्द्रियता विधाधर्मः सर्व उदाहृतः ।।

   —याज्ञवल्क्य 3/66 ।

3. हिन्दी विश्व कोश : भाग 11 —श्री नगेन्द्र वसु, पृ. 103 ।

4. डॉ. ब्रजगोपाल तिवारी एवं डॉ. जे. पी. अत्रे, नीति शास्त्र : पृ. 215 ।

धर्म की धारणा व्यक्ति के हित से जुड़ी हुई है, स्वार्थ से नहीं। धर्म अधर्म के विरुद्ध अधर्म करने में अधर्म नहीं है; श्रीकृष्ण, चाणक्य साधनों की परवाह नहीं करते थे।

गांधी जी अधर्म के विरुद्ध भी धर्म को चलाना चाहते थे। वे मनुस्मृति के अनुसार धर्म की, की गई परिभाषाओं का स्वीकारते थे। शत्रु का हृदय परिवर्तन करना चाहिए, हत्या नहीं—यही उनकी मानवता थी। ईसा मसीह, टालस्टाय, गांधीजी ये सब धर्म को प्रबल मानते थे। साध्य के लिए साधन भी पवित्र होने चाहिए, ऐसा ही उन्हें मान्य था। मनुष्य, आहार, निद्रा, भय, मैथुन से ऊपर उठकर ब्रह्म, ईश्वर, सृष्टि आदि के बारे में भी विचारता है। इसी में रत साधना धर्म की संज्ञा पा जाती है।

तुलसीकालीन धार्मिक परिस्थितियाँ :

तुलसीदासजी का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ था जब भारतवर्ष की धार्मिक परिस्थिति अनेकानेक प्रभावों से पोषित थी। मुगल सम्राटों का शासन धार्मिक दृष्टि से हिन्दुओं के लिए विघातक सिद्ध रहा। अगर कुछ साधु प्रकृति के शासकों ने उन पर अत्याचार नहीं ढाए तो उनके धर्माचार को प्रोत्साहित भी नहीं किया।

सहिष्णुता का परिचायक सिर्फ अकबर बादशाह ही था जिसने हिन्दुओं पर जुल्म प्रायः नहीं के बराबर किए, लेकिन उससे पूर्ववर्ती शासकों के व्यवहार से जनता में विक्षेप की आग भड़क रही थी। छोटे-मोटे अनेक धर्म-सम्प्रदाय उस समय विद्यमान थे। शैव शाक्त, पुष्टिमार्ग, रामभक्त, गोरखपंथी, सूफी, संत आदि में प्रतिस्पर्धा थी। सब एक दूसरे को नीचा या हेय सिद्ध करने में तत्पर थे।

ऐसी विकट स्थिति में तुलसीदास को धर्म पर कुछ लिखने का हौसला रखना पड़ा।

गोस्वामी तुलसीदास जी की दृष्टि में धर्म एक व्यापक तत्व है, आदर्श की पुंजिका है, और महानता की कसौटी है, जिसमें मिलन विरह का ही रंग नहीं अपितु जीवन के हर पहलू को बड़ी सजगता के साथ 'हर रंग से' सजाया गया है—सँवारा गया है। वह चित्र सचमुच अनुपमेय बन पड़ा है।

उनके धर्म में ईश्वर, जीव, प्रकृति, माया और गुरु का ज्ञान संन्निहित है। इसके अलावा उन्होंने माता-पिता, पुत्र, पति-पत्नी, स्वामी सेवक, भाई, राजा-प्रजा आदि के सम्बन्धों, कर्तव्यों और भावनाओं का चित्रण किया है।

इस समय नाना प्रकार के मतमतान्तरों से व्यक्ति भ्रमित हो उठे थे। उन्हें कोई मार्ग सूझ नहीं पड़ रहा था। सर्वत्र वर्ण संकरता का बोलबाला था। प्रत्येक व्यक्ति पाप-रत होता जा रहा था और इसके लिए किसी प्रकार का भय नहीं व्याप्त था।

इसके लिए उन्होंने श्रुति-सम्मत हरि-भक्तिपथ की प्ररूपणा की ।[1]

तुलसी रामभक्त होते हुए भी उदारवादी हैं । उन्होंने शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सब में समन्वय स्थापित किया । एक ओर शिव को राम का भक्त बना दिया तो दूसरी ओर राम से शिव लिंग की स्थापना करा दी ।[2] वहाँ दोनों (शिव--राम। एक दूसरे की वंदना करते हैं । इतना ही नहीं, शिव के द्वारा ही रामचरित्र का बखान किया गया है । उधर राम भी शिव-भक्ति की महिमा को स्वीकारते हैं ।[3]

शक्ति 'स्तुति के लिए भी उपयुक्त स्थल खोजकर 'फुलवारी प्रसंग' पर सीताजी के द्वारा गौरी पूजन कराया गया है ।[4]

वस्तुतः गोस्वामी जी ने 'वैष्णव धर्म' को इतना व्यापक रूप देने का प्रयत्न किया है कि उसमें शाक्त, शैव, सभी सुगमता से सम्मिलित होते से प्रतीत होते हैं ।

श्रीराम के व्यक्तित्व में शैव, शाक्त, वैष्णव के आदर्शों की पूर्ति कर गोस्वामीजी ने राम भक्ति में व्यापकता के साथ शक्ति का भी प्रादुर्भाव कर दिया है । इसी प्रकार सगुण-निर्गुण, ज्ञान-कर्म और भक्ति का अभूतपूर्व सामंजस्य कर दिखाया है ।[5] रामभक्ति तो उनका राजमार्ग है जिस पर चलने का सबको अधिकार है । यही 'श्रुति सम्मत हरि-भक्ति पथ' अभीष्ट है ।

धर्मपरक सूक्तियाँ :

धर्मपरक सूक्तियों के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार व्यक्त किए गए हैं—

1. धर्म के मूल रूप (सामान्य धर्म)
2. युग धर्म
3. धर्म साधना
4. धर्मफल उद्देश्य
5. धर्म का परीक्षा-काल
6. श्रद्धा
7. तप
8. सत्य-असत्य
9. परहित
10. पाप-पुण्य
11. अहिंसा

---

1. किष्कि. का., 14 ।
2. लंका का., 2.3, 4 ।
3. बाल का., 138.3, 4 तथा उत्तर का., 45 ।
4. बाल का., 235–236 ।
5. बाल का., 23, 116, उत्तर का., 84, 110 ।

1. धर्म के मूल रूप (सामान्य धर्म) :

गोस्वामी जी ने अपने धर्म को लिंग, वर्ण, जाति आदि के भेद-भाव से परे सभी के लिए समान रूप से वर्तनीय माना है। उनकी दृष्टि में अहिंसा, क्षमा, धृति, दया, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी--विद्या, सत्य, अक्रोश, दया, दान और काम, क्रोध, लोभ, मोह का दमन धर्म के मूल लक्षण हैं।

गोस्वामी जी ने अपने धर्मरथ के प्रसंग में उक्त गुणों का समावेश किया है। जब रण-क्षेत्र में निःशस्त्र श्रीराम को विभीषण ने देखा तो वे शंकित होकर पूछ बैठे कि आप समर्थ रावण पर विजय किस प्रकार कर सकेंगे ? आप बिना रथ, कवच तथा अस्त्र-शस्त्रों के हैं। तब श्रीराम ने विभीषण की शंका का समाधान करते हुए अपने धर्म-रथ का परिचय इस प्रकार दिया है—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होय सो स्यंदन आना ।।
सौरज धीरज रथ कर चाका। सत्यशील दृढ़ ध्वजा पताका ।।
बल विवेक दम परहित घोरे। क्षमा कृपा समता रजु थोरे ।।
ईस भजनु सारथी सुजाना। विरति चर्म सन्तोष कृपाना ।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। वर बिग्यान कठिन कोदण्डा ।।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिली मुख नाना ।।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा ।।
सखा धर्म मय अस रथ जाके। जीतन कंह न कतहु रिपु ताके ।।

महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो वीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर ।।[1]

धर्म का मूलाधार शौर्य होता है। यह शौर्य क्षत्रियोचित शूर धर्म का ही द्योतक न होकर स्वभाव विजय का भी व्यंजक है। जीव का स्वभाव विषय प्रवृत्ति युक्त है, जिसके वशीभूत होकर वह अधर्म करता है एवं विविध योनियों में भटकता रहता है। अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि के लिए उस पर विजय प्राप्त करना जीव का प्रथम धर्म (कर्तव्य) है। धर्म का दूसरा आधार धैर्य है। 'धीरज' से गोस्वामीजी का अभिप्राय सात्विक धृति से है। अधीर चित से धर्म का पालन संभव नहीं। आपत्काल में धीरज को धर्म आदि परख का संकेत इस तथ्य का द्योतक है।[2] सत्य, शील ही धर्म-रथ की दृढ़ ध्वजा बतलाई गई है। 'शील' का अर्थ है—सदाचार।

---

1. लंका का., 80.3, 4, 5, 6।
2. अर. का., 5.4।

आचार परम धर्म है। धर्म पालन के चार आवश्यक अंग हैं—आत्मबल, विवेक, दम (इन्द्रिय निग्रह) और परहित। इस सम्बन्ध में दया, क्षमा तथा समत्व बुद्धि भी वांछनीय है। ईश्वर का सतत् स्मरण, विषयों में अनासक्ति की भावना रखना तथा संतोष-वृत्ति से ही रक्षा सम्भव है।

इस प्रकार के धर्मरथ से युक्त व्यक्ति के लिए तो संसार में कोई शत्रु है ही नहीं। इन गुणों से युक्त व्यक्ति तो जन्म-मृत्यु रूपी शत्रु को भी परास्त करने में सफल हो सकता है, फिर रावण की तो बात ही क्या है।

2. युग धर्म :

युग चार बताए गए हैं--

(1) सतयुग।

(2) त्रेतायुग।

(3) द्वापरयुग।

(4) कलियुग।

गोस्वामी जी ने भी अपने मानस में इन्हीं चारों युगों का वर्णन किया है। माया से प्रेरित ये युग-धर्म सबके हृदय में समाविष्ट रहते हैं।

सतयुग का लक्षण शुद्ध सत्वगुण समता, विज्ञान और मन का प्रसन्न होना आदि है। जब सतगुण अधिक हो और कुछ रजोगुण हो, कर्मों में प्रीति हो, सब प्रकार से सुख हो, यह त्रेता युग का धर्म बताया गया है। रजोगुण बहुत हो, सत्वगुण बहुत ही थोड़ा हो, कुछ तमोगुण हो, मन में हर्ष और भय हो—यह द्वापर युग का धर्म है। तमोगुण बहुतहो, रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर से बैर, बिरोध हो, यह कलियुग का प्रभाव है। यथा—

नित जुग धर्म होंहि सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे॥
शुद्ध सत्व समत बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥
सत्व बहुत रज कुछ रति कर्मा। सब विधि त्रेता कर धर्मा॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर कर्म हरष भय मानस॥
तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलिप्रभाव विरोध चहुँ ओरा॥[1]

गोस्वामी जी का कहना है कि विद्वजन लोग युगों के धर्म को मन में जान (पहिचान कर), अधर्म को त्याग, धर्म में आस्था रखते हैं।

वुध जुग धर्म जानि मन मांही। तजि अधर्म रति धर्म कराही॥[2]
काल धर्म नहि व्यापहिं ताहीं। रघुपति चरन प्रीति अति जाहीं॥

---

1. उत्तर का., 104.1, 2, 3।

2. वही, 104.3, 4।

धर्म के चार चरण बताए गए हैं जिनमें कलयुग में दान रूपी चरण ही श्रेष्ठ ठहराया गया है ।

प्रगट चारि पद धर्म के, कलि महुँ एक प्रधान ।
जेन केन विधि दीन्हें, दान करइ कल्यान ।।[1]

और इसके लिए ईशभजन को सार्थक ठहराया है ।

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहि ।
भजिय राम तजि काम सब अस विचारि मन मांहि ।।[2]

3. धर्म साधना :

धर्म साधना इतनी दुसाध्य है कि उसे वहन करने की क्षमता विरला ही रख पाता है । कोई एक ही धर्मव्रतधारी होता है--

नर सहस्र महु सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धर्म व्रतधारी ।।[3]

धर्म में सत्य वांछनीय है । धर्म के समान कोई सत्य नहीं है । ऐसा वेद, पुराण आगम, निगम सभी स्वीकार करते हैं--

धरम न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ।।[4]

धर्म रक्षा के लिए ही शिवि, दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने करोड़ों कष्ट सहे । राजा रन्तिदेव और बलि भी अनेकानेक संकटों का सामना कर धर्म पर अडिग रहे । धर्म-त्याग से तीनों लोकों में व्यक्ति अपयश का भागी बनता है ।

शिव दधीचि हरिश्चन्द नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ।।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना । धरमु धरेउ सहि संकट नाना ।।
तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा ।[5]

प्रतिष्ठित पुरुष के लिए धर्मच्युतता करोड़ों मृत्यु से भी भयंकर पीड़ादायक है--

सभावित कहुँ अपजसु लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू ।।[6]

---

1. उत्तर का., 103 ।
2. अर. का., 104 ।
3. उत्तर का., 54. 1 ।
4. अयो. का., 95.3 ।
5. वही, 95.2,3 ।
6. वही, 95.4 ।

4. धर्मफल उद्देश्य :

गोस्वामीजी ने धर्म के अन्तर्गत सामान्य धर्म,[1] राजधर्म,[2] स्त्रीधर्म,[3] वैदिक धर्म[4] एवं युग धर्म[5] को समाविष्ट किया है ।

जप, तप, नियम, योग, अपने-अपने वर्ण धर्म, श्रुतियों से उत्पन्न (वेदविहित) बहुत से शुभ कर्म, ज्ञान, दया, दम (इन्द्रिय निग्रह) तीर्थ स्नान, वेद, तन्त्र और पुराणों का पढ़ना—इन सब को धारण करने का एक ही फल या लक्ष्य प्रभु चरणों में अनुराग है--

जप तप नियम जोग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ।।
ग्यान दया दम तीरथ भज्जन । जँह लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ।।
आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ।।
तव पद पंकज प्रीति निरन्तर । सब साधन कर यह फल सुन्दर ।।[6]

× × ×

जप तप मरव सम दम व्रत दाना । विरति विवेक जोग बिग्याना ।।
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा । तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा ।।[7]

5. धर्म का परीक्षा-काल :

धर्म की परीक्षा आपत्ति आने पर ही होती है--
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहि चारी ।।[8]

यदि व्यक्ति परिस्थिति-विशेष के आगे धर्म से विचलित हो गया या डिग गया तो उसे धर्मच्युत समझिए । धर्म में किसकी कितनी आस्था है, इसकी पहचान विपत्ति आने पर ही की जा सकती है ।

6. श्रद्धा :

धर्म के लिए श्रद्धा--विश्वास का होना वांछनीय है । धर्म विश्वास पर ही आधारित है । बिना श्रद्धा-विश्वास के यह स्थिर नहीं रह सकता—

---

1. लंका का., 80 'क' धर्मरथ निरूपण ।
2. अयो. का., 316.1 ।
3. अर. का., 5 ।
4. उत्तर का., 98 ।
5. वही, 104.1, 2, 3, 4 ।
6. वही, 49.1, 2 ।
7. वही, 95.3 ।
8. अर. का., 5.4 ।

श्रद्धा बिना धरमु नहिं होई । बिनु महि गंध कि पावहिं- कोई ।।[1]

धर्माचरण श्रद्धा पर ही निर्भर है । इसके बिना धर्म उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार पृथ्वी तत्व के बिना गंध पा सकना ।

दया :

दया को भी धर्म में स्थान दिया गया है । दया के समान अन्य धर्म नहीं—

धर्म कि दया सरिस हरि जाना ।।[2]

7. तप :

तप का माहात्म्य इसी से जाना जा सकता है कि ईश-प्राप्ति के लिए ऋषि-मुनि वर्षों तपस्या-रत रहते आए हैं । किसी भी वस्तु या साक्ष्य की प्राप्ति के लिए की गई साधना तप, त्याग कहलाती है ।

तप सुख देने वाला तथा दुःख दोष का नाश करने वाला है । तप के बल से ही ब्रह्मा संसार का सृजन करते हैं, विष्णु जगत् का पालन करते हैं, और शिव (रुद्र रूप से) जगत् का संहार करते हैं । तप के बल से ही शेषनागजी पृथ्वी का भार ग्रहण किए हुए हैं । सारी सृष्टि का आधार ही तप है--

......................................तपु सुख प्रद सब दोषु नसावा ।।
तप बल रचइ प्रपंचु बिधाता । तपबल विष्णु सकल जगत्राता ।।
तपबल संभु करहिं संहारा । तप बल सेषु धरइ महि भारा ।।[3]
तप अधार सब सृष्टि भवानी । ....

तपबल तें जग सृजइ बिधाता । तपबल विष्नु भए परित्राता ।।
तपबल संभु करिय संहारा । तप ते अगम न कछु संसारा ।।[4]

8. सत्य-असत्य :

असत्य को सबने त्याज्य ठहराया है और सत्य की सबने प्रतिस्थापना की है । वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान कोई अन्य धर्म नहीं है ।

धरम न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ।।[5]

सत्य सब सुकृत्यों-पुण्यों की जड़ है--

सत्य मूल सब सुकृत सुहाए ।[6]

---

1. उत्तर का., 90.2 ।
2. वही, 122.5 ।
3. बाल का., 73.1, 2, 3 ।
4. वही, 163.¹, 2 ।
5. अयो. का., 95.3 ।
6. वही, 28.3 ।

इसके विपरीत असत्य सब पापों का मूल है, पाप समूह है—

नहिं असत्य सम पातक पुंजा ।[1]

9. परहित :

दूसरों का हित करना ही परहित या परोपकार कहलाता है। परोपकार के समान कोई धर्म नहीं है तथा दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान कोई नीच कर्म (पाप) नहीं है।

जिनके मन में दूसरों का हित बसता है उनके लिए इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

परहित बस जिन्ह के मन मांही । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।।[2]

परोपकारी सदैव विनयशील होते हैं। अगाध सम्पत्ति पाकर भी वे नम्र बने रहते हैं।

जो अन्य हितार्थ अपना शरीर उत्सर्ग कर देते हैं वे परम धर्म के अधिकारी और लोक में प्रशंसनीय हैं—

.................................श्रुति कह परम धरम उपकारा ।।
परहित लागि तजै जो देही । संतत संत प्रसंसहिं तेही ।।[3]

10. पाप-पुण्य :

वैसे तो आज तक पाप-पुण्य की कोई निश्चित परिभाषा नहीं हो पाई है, फिर भी समाज में नियन्त्रण हेतु कुछ कठोर नियम अवश्य प्रचलित रहे हैं; जैसे—प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है, कोई किसी को विना अपराध के दण्ड नहीं दे सकता। हाँ, किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ऐसा अधिकार मिल जाता है। स्त्री जाति के प्रति अनीति, दुराचार करने पर वह दण्ड का भागी बन जाता है।

गोस्वामीजी ने एक स्थल पर उक्त कथन के औचित्य की पुष्टि की है—बालि ने अपने छोटे भाई सुग्रीव की पत्नी को बलात् हड़प लिया था। सुग्रीव से मैत्री होने पर श्रीराम ने उसे दण्ड का भागी बना कर संग्राम-स्थल पर बालि के पूछने पर कि आपने मुझे किस कारण मारा ? तो श्रीराम ने उत्तर दिया—

अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुन सठ कन्या सम ए चारी ।
इन्हहिं कु दृष्टि बिलोकहि जेही । ताहि बधे कछु पाप न होई ।।[4]

---

1. अयो. का., 28.3 ।
2. अर. का., 31.5 ।
3. बाल का., 84.1 ।
4. किष्कि. का., 9.4 ।

यानि छोटे भाई की पत्नी, बहिन, बेटे की पत्नी तथा कन्या--चारों समान होती हैं। इनको जो बुरी दृष्टि से देखता हो, उसको दण्डित करने में कोई पाप नहीं।

गोस्वामी जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यन्त मूढ़, अति दरिद्री, बदनाम, बहुत बूढ़ा, नित्य का रोगी, निरन्तर क्रोध करने वाला, भगवान विष्णु से विमुख, वेद और संतों का विरोधी, अपना ही पोषण करने वाला (स्वार्थी), पराई निन्दा में रत और पाप की खान (महापापी) ये चौदह प्राणी जीवित ही मरे के समान हैं। इन्हें मारने में कोई पाप नहीं--

कौल काम बस कृपिन विमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥
सदा रोगवस संतत क्रोधी। विष्नु विमुख श्रुति संत विरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत शव सम चौदह प्रानी॥

+ + +

मुएहि वधे नहिं कछु मनसाई॥[1]

11. अहिंसा :

अहिंसा को भारतीय शास्त्रों में परम धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है। दूसरे जीवों को अपने स्वार्थ की खातिर पीड़ित करना या मारना हिंसा है तथा इसके विपरीत आचरण, उन पर अनुकंपा भाव दिखाना अहिंसा का पालन है। वर्तमान युग में गांधीजी आदि महापुरुषों ने भी अहिंसा पर अधिक बल दिया है। 'अहिंसा परमोधर्मः' के सिद्धांत की पुष्टि करता हुआ गोस्वामी जी का यह कथन द्रष्टव्य है--

परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा॥[2]

दूसरों की निंदा न करना भी धर्म का अंग है। पर निंदा के समान अन्य कोई पाप नहीं।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने धर्म को पारम्परिक रूप में ही स्वीकार किया है। श्रद्धा को उसका मूलाधार बनाया गया है। उनके अनुसार धर्म का परीक्षा-काल विपत्ति है। तप, सत्य, दया, दम, परोपकार आदि गुण धर्म के ही अंग हैं। समाज की आचार-व्यवस्था को नष्ट करने वालों को दण्ड देने में भी इन्होंने धर्म-पालन के भाव देखे हैं। यह दृष्टिकोण निश्चय ही धर्म को समाज से जोड़ता है।

---

1. लंका का., 31.1, 2।
2. उत्तर का., 121.11।

8. दर्शनपरक सूक्तियाँ

दर्शन :

नेत्रों के द्वारा होने वाला ज्ञान या बोध 'दर्शन' कहा जाता है। तत्वज्ञान प्राप्ति इसी के द्वारा संभव है।

दर्शन का क्षेत्र व्यापक है। दर्शन, जो दृष्टिगोचर है उसे भी देखता है एवं जो स्थूल दृष्टि से परे है, उसे भी देखता है। अर्थात् दर्शन के क्षेत्र में दृश्यादृश्य दोनों ही आते हैं।

आंग्ल भाषा में इसका समानार्थक शब्द 'Philosophy' है। इसकी व्युत्पत्ति यूनानी भाषा के शब्द Philosophos से हुई है, जिसका अर्थ होता है--ज्ञान से प्रेम। सत्य का दर्शन करके ही तो मनुष्य ज्ञानी कहला सकता है।

भारतीय दर्शन भी इसी तथ्य को इन शब्दों में स्वीकार करता है—

नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते।[1]

डॉ. राधाकृष्णन् का कहना है कि दर्शन का कार्य जीवन को व्यवस्थित बनाना व कर्म को मार्ग प्रदर्शित करते रहना है।[2]

दर्शन का कर्तव्य है कि वह जीवन को समझने का प्रयत्न करे और आवश्यक तथ्यों की जानकारी के आधार पर एक सुव्यवस्थित विवेकपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करे। जब तक जीवन और जगत की विभिन्न समस्याएँ मानव-समाज के समक्ष अवरोध के रूप में उपस्थित रहेंगी तब तक उनके निराकरण हेतु दर्शन की ही शरण लेनी होगी। जब तक दर्शन उन समस्याओं के सत्य का उद्घाटन नहीं कर देता तब तक मानव कर्म-क्षेत्र में प्रवृत्त हो ही नहीं सकता। तभी तो अरस्तू ने दर्शन को वह विज्ञान कहा है जो सत्य की विवेचना किया करता हो।[3]

किन्तु मात्र सत्य की विवेचना कर देने से उन सभी क्रियाओं पर प्रकाश नहीं पड़ पाता जो कि दर्शन के क्षेत्र में प्रमुख स्थान रखती हैं। दर्शन का सम्बन्ध बुद्धि से है। दर्शन सोचना सिखाता है, पर समय इतनी प्रगति कर चुका है कि आज के विचार-वेत्ताओं को विवेचना-सूचक व्याख्याओं से संतोष नहीं है। वे दो कदम और भी आगे बढ़ना चाहते हैं और वर्तमान युग की द्रुतगति से विकासमान सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते हुए माँग करते हैं कि दर्शन का विषय महज बाह्य जगत् की

---

1. गीता, 4/38।
2. Philosophy has for its function the ordering of life and the guidance of action.

   --India Philosophy, Vol. : 2, P. 770
3. "Philosophy is the Science which considers truth—Aristotle

व्याख्या भर कर लेना नहीं है। दर्शन को यह बताना आवश्यक है कि इस बाह्य जगत् पर मानव का नियंत्रण किस प्रकार रखा जा सकता है, पुनः निर्माण कैसे सम्भव हो सकता है और सामने लक्ष्य क्या रखा जाना चाहिए ? आज का युग निर्माण का युग है। जो इस निर्माण में पूर्ण योग दे सके, वही सच्चा ज्ञान है, वही सच्चा दर्शन है।

सामान्य जन से विलग होकर नन्दन-कानन के दर्शन में भटकने वाले दार्शनिक का आजकल इस विश्व में कोई स्थान नहीं। विचारकों के विचारों में विकास उनके जीवन वृत्त की प्रक्रिया में ही सम्भव हो सकता है।[1]

जीवन के विविध अनुभवों के थपेड़े खाते-खाते यदि व्यक्ति का जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण निर्मित हो गया तो उसका जीवन निश्चित रूप से अधिक समृद्ध व सम्पन्न होगा। स्वस्थ दृष्टिकोण, स्वस्थ क्रिया-प्रक्रिया को जन्म देगा जिससे एक स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण हो सकेगा।

प्रकृति हमें जीवन देती है किन्तु दर्शन इस जीवन को सुखी, समृद्ध व उन्नत बनाने का मार्ग निर्देशित करता है।[2]

धर्म और दर्शन भारतीय जीवन गगन के सूर्य और अपनी अनंत शक्ति से अखिल विश्व-मण्डल के नक्षत्र लोक की धारणा करता है, धर्म भी अपने अपार आध्यात्मिक प्रभाव से हमारे लोक जीवन को धारण करता रहा है। वस्तुतः धर्म भारतीय संस्कृति की आत्मा और दर्शनअन्तर्दृष्टि है। दर्शन की दृष्टि आत्मा के दिव्य आलोक से ही अनुप्राणित है।[3]

तुलसी एवं दर्शन : ✓

'मानव' में तुलसीदास जी का दर्शन बहुत विस्तृत, व्यापक एवं परिमार्जित है। उन्होंने घटना-प्रसंग में भी दर्शन का पुट देना नहीं छोड़ा है। जहाँ कहीं भी उन्हें भावनाओं के बीच अवसर प्राप्त हुआ है, दर्शन की ही महिमा वर्णित की है। 'बालकाण्ड' के प्रारम्भ में ईश्वर-भक्ति का निरूपण करते हुए उन्होंने अपनी दार्शनिकता के अंग-प्रत्यंग स्पष्ट कर दिए हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण–निषाद संवाद,

---

1. "The ideas of thinkers are evolved in the process of thier life-history."

   --Dr. S. Radha Krishnan, India Philosophy, Vol : 2, P. 770

2. "It is the bounty of nature that we live but of Philosophy that we live well, which is in truth a greater benefit than life itself." — Seneca

3. भारतीय दर्शन का परिचय, डॉ. रामानन्द तिवारी।

राम नारद संवाद, वर्षा-शरद वर्णन, राम-लक्ष्मण संवाद, गरुड़-काकभुशुण्डि संवाद शिव-पार्वती संवादादि में अपनी दार्शनिकता का अच्छा परिचय प्रस्तुत किया है।

जहाँ तक गोस्वामी जी के दार्शनिक चिन्तन का विषय है, वह किसी भी वाद के पीछे रूढ़ियों में फँस कर नहीं चला है। उन्होंने सभी सिद्धांतों को एक विचारक के हृदय से निरखा-परखा है, किसी दार्शनिक सिद्धान्त विशेष से अपने को बाँधकर नहीं रखा, न किसी विशेष साम्प्रदायिक मान्यता का ही आँख बन्द करके उन्होंने प्रतिपादन किया है।

वस्तुतः उन्होंने भारतीय दर्शन का पूर्णरूपेण अध्ययन करके अपनी समन्वय नीति का अनुसरण किया है। ईश्वर के जितने भी स्वरूप या अवतारों के रूप उस समय प्रचलित थे, उन सभी में उन्होंने अपनी आस्था प्रकट की है। यही नहीं, उन सभी का समाहार उन्होंने अपने परम ब्रह्म श्रीराम में कर दिया है। राम के स्वरूप का चित्रण करते हुए उन्होंने लिखा है--

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा।।
व्यापक विस्व रूप भगवाना। तेहि धरिदेइ चरित कृत नाना।।
सो केवल भगतन हितलागी। परम कृपालु प्रनत अनुरागी।।[1]

यहाँ एक अनीह और अरूप ब्रह्म भक्तों के लिए अवतार लेता है। अद्वैतवाद के रूप में उनका ब्रह्म इस प्रकार है—

गिरा अर्थ जल वीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न।।[2]

× × ×

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।[3]

यहाँ गोस्वामी जी ने अद्वैतवाद के भीतर विशिष्टाद्वैतवाद की सृष्टि कर दी है।

पं. रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—साम्प्रदायिक दृष्टि से तो वे रामानुजाचार्य के अनुयायी थे ही, जिनका निरूपित सिद्धान्त भक्तों की उपासना के अनुकूल दिखाई पड़ा।[4]

गोस्वामी जी ने ब्रह्म की आवश्यकता के लिए उसे अद्वैतवाद का रूप अवश्य दिया और उसे माया से समन्वित किया भी; पर वे उसे उस रूप में ग्रहण नहीं कर सके। वे भक्त थे; अतः भक्ति का सहारा लेकर उन्हें ब्रह्म को विशिष्टाद्वैत में निरूपित करना ही पड़ा। इसीलिए जहाँ कहीं भी उन्हें अद्वैतवाद से ब्रह्म निरूपण की आवश्यकता पड़ी, वही उसके बाद उन्होंने उसे भक्ति मार्ग का आराध्य भी मान लिया।

---

1. बाल का., 13.2, 3।
2. वही, 18।
3. वही, 21.1।
4. तुलसी ग्रंथावली, तीसरा खण्ड, 'मानस' पृ. 145।

अपने इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए अरण्य काण्ड में जब लक्ष्मणजी ने श्रीराम से पूछा, 'ईश्वर जीवहि भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाय'[1]; उस समय श्रीराम ने—

माया ईस न आपु कह जान कहिअ सो जीव।
बन्धमोक्षप्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव ।।[2]

कह कर भी यह स्पष्ट घोषित कर दिया कि--

'जाते वेगि द्रवहु मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ।।[3]

जगत् को गोस्वामी जी ने मिथ्या नहीं माना क्योंकि यह सब तो राम-माया (सीता) का सृजन किया हुआ है। कवि ने माया के दो रूप माने हैं--प्रथम (सीता) शक्ति रूप और दूसरा भ्रमात्मक, जो जीव को श्रीराम से विमुख करती है। अविद्या माया के भ्रम में फँस कर जीव अपने पुण्यों को नष्ट कर देता है।

अद्वैत भाव की झलक उनके आरम्भ के श्लोक से प्रकट होती है, यथा—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवा सुरा।
यत्सत्वादमृषैव भांति सकलं रज्जौ यथा हे भ्रमः।
यत्पादप्लव मेक मेव हि भवाम्भोधेस्तिती पार्वती।
बन्देह तमशेष कारण परं रामाख्यमीश हरिम ।।[4]

इसका अर्थ है यह सम्पूर्ण जगत् बह्मा आदि देवता और असुर सब जिसकी माया के वश में हैं, और जिसकी सत्ता से सम्पूर्ण जगत् सत्य सा प्रतीत हो रहा है, जैसा कि भ्रमकाल में रज्जु की सत्ता से सर्प सत्य-सा प्रतीत हुआ करता है, एवं संसार रूप समुद्र को तैर जाने की इच्छा रखने वालों के लिए जिसके चरण ही नौका रूप हैं, उन सब कारणों से भी परे राम नामक जगदीश्वर हरि को मैं प्रणाम करता हूँ।

इस श्लोक में श्री शंकराचार्य का अद्वैतवाद एवं मायावाद लक्षित हो रहा है। जगत् माया-जनित असत्य है, वह ब्रह्म की सत्ता से सत्तावान प्रतीत होता है। यही शांकर सिद्धान्त है।

मंगलाचरण के प्रकरण में भी—

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राम भय जानि।
बन्दौ सबके पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ।।[5]

---

1. अर. का., 14।
2. वही, 15।
3. वही, 16.1।
4. बाल का., श्लोक 6।
5. वही, 7 'ग'।

× × ×

सीय राम मय सब जग जानी । करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।[1]

....आदि वाक्यों में अद्वैतवाद की छटा झलक रही है। यद्यपि सभी मतों में ईश्वर को व्यापक माना जाता है और ईश्वर बुद्धि से सब जड़-चेतन की पूजा उपयुक्त समझी जाती है, किन्तु राममय जग देखना, राम के अलावा और सबको वस्तुहीन मानना अद्वैतवाद की ही पराकाष्ठा है ।

वस्तुतः गोस्वामी जी ने अपने इस दर्शन के नीरस और गहन विषय को इस सादगी के साथ प्रस्तुत किया है कि साधारण जनता तक को उनके समझने में कठिनाई नहीं होती । यों तो उनकी सामान्य बुद्धि सभी दार्शनिक सिद्धान्तों में अविरोध देखती है, सभी को यथास्थान महत्व देती है और सभी पक्षों का समर्थन करती है; पर उनके प्रस्थान के अनुरोध तथा ग्रन्थ के उपक्रम तथा उपसंहार के विचार से द्वैत सिद्धान्त और भक्ति पक्ष में ही उसका (दार्शनिक दृष्टिकोण) पर्यवसान प्रतीत होता है ।[2]

दर्शनपरक सूक्तियाँ :

इन सूक्तियों में निम्नलिखित विन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है—

1. ब्रह्म—ब्रह्मरूप, ईश-कृपा-फल ।
2. जीव—जीव के प्रकार, जीवस्वरूप, जीव-धर्म, जीव और ईश्वर, बन्धन-मुक्ति-युक्ति, ग्रंथि-विघ्न, मनुष्य-योनि ।
3. जगत् (सृष्टि)—जगत जंजाल ।
4. माया ।
5. ज्ञान-भक्ति ।
6. मुक्ति ।
7. भावी (नियति) ।
8. काम-क्रोध-लोभ-मोह ।
9. आधि-व्याधि ।

1. ब्रह्म :

सृष्टि का नियामक ब्रह्म ही माना गया है । वह ईश्वर, दैव, विधाता आदि नाम से अभिहीत किया जाता है । हिन्दू धर्म में ईश्वर का मुख्य लक्षण सच्चिदानन्द माना गया है अर्थात् सत, चित, आनन्द । सत का अर्थ है 'जो सदैव से है, और सदैव रहेगा;' चित का अर्थ है 'चैतन्य स्वरूप या सम्पूर्ण शक्तियों का प्रेरक सर्व-शक्तिमान' और आनन्द स्वरूप अर्थात् 'सुख, दुख, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि सब द्वन्द्वों से परे' । वह

---

1. बाल का, 8.1 ।
2. कल्याण 'मानसंक', खण्ड--2, 0977 ।

जीव तथा प्रकृति (अर्थात् माया) का अधिपति हो। आत्मा जिस प्रकार शरीर का संचालन करती है उसी प्रकार वह संसार का संचालन करती है। यही जगत् का निमित्त कारण है। वह प्रकृति से सृष्टि की रचना करता है और जीवों को उनके कर्मानुसार फल देता है।

गोस्वामीजी के अनुसार वह (ब्रह्म) एक है, इच्छा-रहित है, रूप और नाम से भी परे है, अजन्मा, सच्चिदानन्द और परमधाम है, सर्वत्र व्यापक एवं विश्वरूप है। वह भक्त-रक्षार्थ अवतरित होकर नाना प्रकार की लीलाएँ किया करता है—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा॥
व्यापक विस्वरूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुनाकरि कीन्ह न कोऊ॥[1]

वह बिना पैर चलता है, बिना कान सुनता है, बिना हाथ के ही नाना कर्म करता है, बिना मुंह (जिह्वा) के ही समस्त रसों का आस्वादन लेता है, बिना वाणी के वक्ता कहलाता है, बिना शरीर के स्पर्श करता है, बिना नेत्रों के समस्त सृष्टि को देखता है, बिना नाक के गन्ध को ग्रहण करता है। सब प्रकार से उसकी करनी अलौकिक ही है--

बिनु पद चलहि सुनहि बिनु काना। कर बिनु करम करहि विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाई नहि बरनी॥[2]

यह ब्रह्म इतना दयालु भी है कि गई वस्तु को पुनः प्राप्त करा देता है—

गई बहोरि गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥[3]

जो व्यापक, अकल यानी बुद्धि से अगम्य, इच्छा-रहित, अजन्मा और निराकार है, जिसका न नाम है न रूप, वही भगवान भक्तों के लिए नाना प्रकार के अनुपम क्रिया-कलाप करता नजर आता है।

'मानस' में ईश्वर (राम) के प्रति कही गई मन्दोदरी की निम्न उक्तियाँ देखिए—

---

1. बाल का. 13.2, 3।
2. वही, 118.3, 4।
3. वही, 13.4।

पद पताल सीस अज धामा । अपर लोक अंग-अंग विश्रामा ।।
भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घन माला ।।
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।।
श्रवन दिसा दस बेद बखानी । मारुत स्वास निगम निज बानी ।।
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ।।
आनन अनल अंबुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ।।
रोम राजि अष्टादस मारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।।
उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु का बहु कलपना ।।
अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान् ।।
मनुज वास सचराचर रूप राम भगवाना ।।[1]

उनके इस विराट रूप की अभिव्यंजना 'सगुण एवं निर्गुण' स्वरूप की अभेघता की संपोषक है । शिवजी ने भी पार्वतीजी से श्री राम के ब्रह्म स्वरूप की विवेचना बालकाण्ढ में इस प्रकार की है—

राम सच्चिदानन्द दिनेसा । नहिं तंह मोह निसा लवलेसा ।।
सहज प्रकासरूप भगवाना । नहि तंह पुनि बिग्यान बिहाना ।।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानन्द परेस पुराना ।।
जगत् प्रकास्य प्रकासक रामू । माया धीस ग्यान गुन धामू ।।
जासु सत्यता ते जड़ मायो । भास सत्य इव मोह सहाया ।।[2]

लेकिन जो अज्ञानी है, उनकी महिमा से अनभिज्ञ है—वह विषयों में ही रत है । आस्थाहीन व्यक्तियों के लिए वे ठीक ऐसे ही लगते हैं जैसे—

निज भ्रम नहिं समुझहि अग्यानी । प्रभु पर मोह धरहि जड़ प्रानी ।
जथा गगन घन पटल निहारी । झांपेउ भानु कहहिं कु विचारी ।।
चितव जो लोचन आंगुलि लाए । प्रगट जुगल ससि तेहि कें भाए ।।
उमा राम विपयक अस मोहा । नभ तप धूमं धूरि जिमि सोहा ।।[3]

सब विषय, इन्द्रियों के देवता और जीवात्मा ये सब एक (ब्रह्म) की सहायता से ही चेतन होते हैं अर्थात् विषयों का प्रकाश इन्द्रियों से, इन्द्रियों का इन्द्रियों के देवताओं से और उनका चेतन जीवात्मा से प्रकाश होता है । इन सबका जो परम प्रकाशक है अर्थात् जिससे इन सबको प्रकाश मिलता है, वही अनादि ब्रह्म अयोध्यापति नरेश श्रीराम चन्द्र हैं जो सबको कठपुतली की तरह नचाते हैं । शिवजी का यह कथन द्रष्टव्य है—

1. लंका का. 15 'क': 1,2,3,4 ।
2. बाल का. 116.3,4 तथा 117.4 ।
3. वही, 117.1,2 ।

उमा दारु जोषित की नाई । सबहि नचावत राम गोसाई ।।[1]

उनकी दृष्टि में जो ऐसे हरि के गुणगान भक्ति और चरणों में प्रीति नहीं रखते उनकी जबान मेंढक सदृश एवं सिर तुंबी के समान है ।[2]

ब्रह्म-रूप :

ब्रह्म के दो रूप हैं : (1) सगुण और (2) निर्गुण । मानव दोनों में से किसी की भी भक्ति कर सकता है क्योंकि दोनों में कोई भेद नहीं । अलक्ष्य, अरूप, अजन्मा तथा निर्गुण निराकार ब्रह्म ही भक्त के प्रेम के वशीभूत होकर सगुण रूप धारण करता है--

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।[3]
अगुन अलेप अमान एकरस । रामु सगुन भए भगत प्रेम बस ।।[4]
व्यापक अकल अनीह अज निर्गुण नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप ।।[5]
\+ \+ \+
व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण विगत विनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौशल्या के गोद ।।[6]

यहाँ गोस्वामी जी ने शंकर की तरह 'निर्गुण' को माया वश 'सगुण' रूप धारण करते हुए नहीं माना है । उन्होंने रामानुजाचार्य की मान्यता के अनुसार ब्रह्म को अपनी इच्छा से अवतार लेते हुए दर्शाया है—

निज इच्छा प्रभु अवतरई ।।[7]

गोस्वामीजी ने सगुण-निर्गुण में कोई भेद नहीं माना है ।[8] उन दोनों में वैसा ही सम्बन्ध है जैसा पानी और ओले में—

जो गुन रहित सगुन सोई कैसे । जलु हिम अपल विलग नहि जैसे ।।[9]

---

1. किष्कि. का. 11.4 ।
2. बाल का. 113.2,3 ।
3. वही, 116.1 ।
4. अयो. का., 219.3 ।
5. बाल का., 205 ।
6. वही, 198 तथा 13.2,3 ।
7. किष्कि. का., 26 ।
8. बाल का., 116.1 ।
9. वही, 116.2 ।

निर्गुण-सगुण तत्व का निरूपण करते हुए गोस्वामीजी ने कहा है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अरूपा।।
मोरे मत बड़ नाम दुहूते। किए जेहि जगु निज बस निजंबूते।।
एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू।।
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउ नाम बड़ ब्रह्म राम ते।।[1]

यही ब्रह्म के अगुण और सगुण दोनों स्वरूपों को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू का द्रष्टान्त प्रस्तुत किया है। एक अग्नि वह है जो काष्ठ आदि में सर्वत्र सदा व्यापक रहती है किन्तु यह उसका निर्गुण रूप है। वहाँ स्पर्श से दाह नहीं होता, किन्तु जब वह अग्नि प्रकट रूप में आ जाती है, उष्ण, स्पर्श, आदि गुणों से सगुण हो जाती है, तब उसे सभी जानने और मानने लगते हैं।

काष्ठ में निहित अप्रत्यक्ष अग्नि अविश्वसनीय है। इसी प्रकार जो जगत् में सर्वत्र व्यापक होने पर भी निर्गुण निरीह है उसका ज्ञान साधारण स्थिति के व्यक्तियों को होना असम्भव सा है। क्योंकि वह न ज्ञेय है, न ध्येय है और न उपास्य। किन्तु वही जब माया विशिष्ट होकर सगुण होता है (विष्णु, शिव, राम, कृष्णादि रूप में) तब उसे सभी जानते, मानते हैं तथा उसकी उपासना या भजन आदि करते हुए अपना जन्म सार्थक बनाते हैं—

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद।।

\+ \+ \+

विष्णु जो सुरहित नरतनु धारी। सोउ सर्वग्य जथा त्रिपुरारी।
खोजई सो कि अग्य इव नारी। ग्यान धाम श्री पति असुरारी।।[2]

इतना होते हुए भी गोस्वामी जी 'सगुण' के पक्षधर हैं क्योंकि यह रूप सर्व-साधारण की उपासना के लिए सरल सहज है। 'निर्गुण' रूप में साक्षात् पूजा, अर्चना का भाव समक्ष नहीं रहता, अतः वह साधने में कठिन है।[3]

जगत् का नियामक ईश्वर माना गया है। यह जगत् उसी के आधीन है। चर-अचर प्राणी भी उसी के अधीनस्थ हैं। जीवों को 'उनके कर्मानुसार' शुभ-अशुभ फलों का दाता भी वही है—

---

1. बाल का., 23.1,2,3।
2. वही, 50, 51.1।
3. उत्तर का., 110.8, 111.4।

अंबु ईसु आधीन जग काहु न देइअ दोषु ।।[1]

\+ + +

ईस अधीन जीव गति जानी ।।[2]

\+ + +

करम सुभासुभ देइ विधाता ।।[3]

लाभ, जन्म-मरण, यश-अपयश सब ईश्वराधीन है—

हानि लाभु जीवन मरण यश अपयश विधि हाथ ।।[4]

ईश-कृपा-फल :

ईश्वर का वरदहस्त जिस पर रहता है, उसके लिए असंभव भी संभव हो जाता है, विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र बन जाते हैं, समुद्र गाय के खुर सदृश हो जाता है, अग्नि शीतलता प्रदान करने लगती है, सुमेरु पर्वत रज के समान हो जाता है तथा वह जीव तीनों तापों (आधि-दैविक, आधि-भौतिक, दैहिक) से मुक्त हो जाता है—

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ।।
गरुड़ सुमेर रेनु समताहीं । राम कृपा कर चितवहिं जाहीं ।।[5]

\+ + +

तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला । ताहि न व्याप त्रिविध भवसूला ।।[6]

\+ + +

राम कृपा नासहिं सब रोगा ।।[7]

उनकी कृपा से काम, क्रोध, लोभ, मद और माया सभी छूट जाते हैं । वे नट (नटराज प्रभु) जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं, वह मनुष्य इन्द्रजाल (माया) में नहीं भूलता—

क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम कीं दाया ।
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला । जापर होइ सो नट अनुकूला ।।[8]

---

1. अयो. का , 244 ।
2. वही, 263.3 ।
3. वही, 255.3 ।
4. वही, 171 ।
5. सु. का., 5.1,2 ।
6. वही, 47.3 ।
7. अरण्य का., 39.2 ।
8. उत्तर का., 122.3 ।

जो वस्तु साधन से प्राप्त नहीं की जा सकती, वह प्रभु कृपा से सुलभ हो जाती है। सुग्रीव का यह कथन बड़ा प्रभावकारी बन पड़ा है—

नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निशि जो जागा ।।
लोभ पांस जेहि गर न बंधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया ।।
यह गुन साधन ते नहि होई। तुम्हरी कृपा पाव कोई कोई ।।[1]

विषय सुख से अछूता रह पाना बड़ा कठिन कार्य है। सुर, नर, मुनि सभी इसके चक्र में फँस जाया करते हैं। विषय सुख के समान कोई घातक मद नहीं। यह मुनियों के मन में भी क्षणमात्र में मोह उत्पन्न कर देता है—

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ इन माहीं ।।[2]
× × ×
विषय वस्य सुर नर मुनि स्वामी ।।[3]

उन लोगों को अभागा कहा गया है जो प्रभु को छोड़ कर विषयों से अनुराग करते हैं। शिवजी के शब्दों में—

सुनहु उमा जे लोग अभागी। हरि तजि होंय विषय अनुरागी ।।[4]

बिना प्रभु की कृपा के जीव स्वप्न में भी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। उनके दर्शन का फल है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। बिना प्रभु कृपा के उनकी प्रभुता से भी परिचय नहीं हो पाता—

राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह विश्रामु ।[5]
\+ + +
राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाय राम प्रभुताई ।।[6]
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा ।।[7]

2. जीव :

जीव को आत्मा और जीवात्मा भी कहते हैं। जीव का अर्थ है—चेतनायुक्त और आत्मा का अर्थ है, व्यापक। जीवात्मा चेतन भी है और व्यापक भी। ईश्वर में सत्, चित्, आनन्द तीनों लक्षण हैं। जीव में सिर्फ दो लक्षण सत, और चित हैं। सत्, अर्थात् यह अविनाशी, सदैव रहने वाला, अमर है और चित् अर्थात् चैतन्य युक्त है। इसमें तीसरा आनन्द गुण नहीं है। परमात्मा की उपासना करके

---

1. किष्कि. का., 21.2, 3 ।
2. वही, 20 4 ।
3. वही, 21.2 ।
4. अर. का., 33.2 ।
5. उत्तर का., 90 'क' ।
6. वही, 89.3 ।
7. अर. का., 36.5 ।

उसके समीप स्थिर होकर जीव आनन्द गुण की प्राप्ति कर सकता है। ईश्वर और जीव का सम्बन्ध उपास्य एवं उपासक का सम्बन्ध है।

इच्छा पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा, द्वेष, दुःखादि की अनिच्छा या वैर, प्रयत्न-बल या पुरुषार्थ, सुख, आनन्द, दुख, विलाप या अप्रसन्नता, ज्ञान विवेक या भले-बुरे की पहिचान, ये लक्षण जीवात्मा के न्यायशास्त्रों में बतलाए गए हैं।[1]

जीव ईश्वर के अधीन माना गया है—

इस अधीन जीव गति जानी।[2]

इस संसार में चौरासी लाख योनियाँ हैं जिनमें चार प्रकार के जीव (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज) जल, पृथ्वी, और आकाश में रहते हैं। माया की प्रेरणा से काल, कर्म स्वभाव और गुण से घिरा हुआ (इनके वशीभूत) यह जीव सदा भटकता रहता है--

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी।।[3]

\+ \+ \+

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।[4]

जीव को जाग्रत तभी जानना चाहिए जब सम्पूर्ण भोग-विलासों से इसे वैराग्य हो जाए--

जानहिं तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय विलास बिरागा।।[5]

जीव नित्य है, इसका मात्र रूप परिवर्तन ही होता है। जिस देह को वह धारण कर लेता है, उसी के नाम से पुकारा जाता है। वस्तुतः वेश की सार्थकता जीव से ही है। बिना जीव के शरीर बेकार है--

जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा।[6]

\+ \+ \+

जाय जींव बिनु देह सुहाई।[7]

---

1. इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुख ज्ञानान्यात्म नोलिंग मिति।। न्याय दर्जन।।
प्राण पान निमेषोन्मेष मनोगतान्द्रियान्तर विकाराः सुखदः
स्वेच्छा द्वेषों प्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि।। वैशेषिक दर्शन।।
2. अयो. का, 263.3।
3. बाल का., 8.1।
4. उत्तर का., 44.2।
5. अयो., का., 93.2।
6. किष्कि. का., 11.3।
7. अयो. का., 178.3।

\+ \+ \+

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी ।।[1]

जीव अपने कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख का भागी बनता है—

जीव करम बस सुख दुख भागी ।[2]

इसके निवारण हेतु उसे ईशानुरक्ति वांछनीय है। इसके बिना वह सच्चा सुख प्राप्त नहीं कर सकता—

जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ।[3]

जीव के प्रकार :

'मानस' जीव तीन प्रकार के बताए गए हैं –

(1) विषयी (2) साधक और (३) ज्ञानवान सिद्ध पुरुष—

विषई साधक सिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग वेद बखाने ।।[4]

विषयों में अनुरक्त विषयी, साधना में रत साधक तथा इनसे ऊपर बुद्धिमान ज्ञानी ।

उत्पत्ति की दृष्टि से जीवों के चार प्रकार (अण्डज, स्वेदज, उद्भज, जरायुज) भी बताये गये हैं ।[5] उक्त तीन प्रकार गुण दृष्टि से माने गये हैं ।

जीव-स्वरूप :

जीव ईश्वर का ही एक अंश है अतएव वह अविनाशी, चेतन निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है। लेकिन, माया के वशीभूत होकर तोते और वानर की भाँति वह अपने आप ही बंधन में बँध जाता है—

ईस्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।

सो माया बस भयऊ गोसाईं । बंध्यो कीर मरकट की नाईं ।।[6]

जीव-धर्म :

जीव हर्ष-शोक, राग, द्वेष से युक्त है। गोस्वामी जी ने हर्ष, शोक, ज्ञान, अग्यान, अहंता, अभिमान आदि वृत्तियों को जीव के धर्म बताये हैं—

हरष विषाद ग्यान अग्याना । जीव धर्म अहमिति अभिमाना ।।[7]

---

1. अयो. का., 65.4 ।
2. वही, 12.2 ।
3. उत्तर का., 122.8 ।
4. अयो. का., 277.2 ।
5. बाल का., 8.1; उत्तर का., 44.2 ।
6. उत्तर का., 117.1,2 ।
7. बाल का., 116.4 ।

जीव और ईश्वर :

जो माया को, ईश्वर को और अपने स्वरूप को नहीं जानता उसे जीव की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। जो कर्मानुसार बन्धन और मोक्ष को देने वाला, सबसे परे और माया का प्रेरक है, वह ईश्वर है—

माया ईस न आपु जान कहु कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्ब पर माया प्रेरक सीव।।[1]

अगर जीव को एकरस (अखण्ड) ज्ञान रहे तो ईश्वर व जीव में कोई भेद नहीं—

जो सबके रह ग्यान एक रस। ईश्वरजीवहि भेद कहहु कस।।[2]

परन्तु, अभिमानी जीव माया के वशीभूत है और (माया सत, रज, तम तीनों गुणों की खान) ईश्वर के वश में है। जीव परतन्त्र हैं, ईश स्वतन्त्र है। जीव अनेक हैं ईश्वर एक ही है। यह सब माया का ही प्रताप है—

माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुनखानी।
परबस जीव स्ववस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्री कन्ता।।[3]

\+ + +

माया बस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान।।[4]

जीव माया के वशीभूत हो भवसागर में गोते लगाता रहता है। यह भवसागर संसार ही है। ईश्वर और जीव का यह भेद बिना हरि-कृपा के नहीं मिट सकता--

मुधा भेद जदपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।।[5]

बन्धन-मुक्त-युक्ति :

जीव को अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति (ईश प्राप्ति) हेतु साधना आवश्यक है, भक्ति के अलावा ईश की कृपा भी वांछनीय है। लेकिन, अन्य युक्ति भी है जिससे प्राणी बन्धन मुक्त हो सकता है। गोस्वामी जी के अनुसार 'यदि श्री हरि कृपा से सात्विकी श्रद्धारूपी गौ हृदय रूपी घर में आकर बस जाए और धर्माचरण रूपी हरे

---

1. अर. का., 15।
2. उत्तर का., 78.3।
3. वही, 78.3,4।
4. वही, 111 'ख'।
5. वही, 78.4।

तृणों को (असंख्यों जप, तप, व्रत, यम और नियमादि शुभ कर्म-धर्म आचार जो कि श्रुतियों ने कहे हैं) जब वह चरे, तथा आस्तिक भाव रूपी छोटे बछड़े को पाकर वह पेन्हाये उसकी निवृत्ति (सांसारिक) विषयों और प्रपंच से दूर रहना) नोई (गौ के दुहते समय पिछले पैर की रस्सी) है। विश्वास दूध दुहने का वर्तन है, निर्मल मन जो स्वयं अपना दास है, दुहने वाला अहीर है।

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौ हरि कृपा हृदय बस आई।।
जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।
तेइ तृन हरित चरे जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई।।
तेइ तृन हरित चरे जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई।।
नोई निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा।।[1]

(धर्माचार में प्रवृत्ति सात्विकी श्रद्धा रूपी गौ से भाव, निवृत्ति और वश में किए हुए निर्मल मन की सहायता से) परम धर्म मय दूध दुहकर उसे निष्काम भाव रूपी अग्नि पर भली भांति औटाकर फिर क्षमा और संतोष रूपी हवा से ठंडा कर, और धृति (धैर्य) तथा शम रूपी जामन दे कर, उसे जमा कर तथा मुदिता (प्रसन्नता) रूपी कमोरी में तत्वविचार रूपी मथनी से दम (इन्द्रिय दमन) के आधार पर (दम रूपी खम्भे के सहारे) सत्य और सुन्दर वानी रूपी रस्सी लगा कर उसे मथे और तब उसमें से निर्मल सुन्दर और अत्यन्त पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन निकाल कर तब योग रूपी अग्नि प्रकट करके उसमें समस्त शुभाशुभ कर्म रूपी ईंधन जला कर (सब कर्मों को योग रूपी अग्नि में भस्म कर) जिससे कि वैराग्य रूपी मक्खन का ममता रूपी मैल जल जाए, तब बचे हुए ज्ञान रूपी घी को निश्चयात्मिका बुद्धि से ठंडा करें।

परम धर्म मय पय दुहिभाई। अवटे अनल अकाम बनाई।।
तोष मरुत तब छमां जुडावें। धृतिं सम जावनु देइ जमावै।।
मुदिता मथै विचार मथानी। दम आधार रजु सत्य सुबानी।।
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता।।

जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ।।[2]

तब विज्ञान रूपिणी बुद्धि उस ज्ञान रूपी निर्मल घी को पाकर उससे चित्त रूपी दिये को भरकर, ममता की दीवट बनाकर, उस पर उसे दृढ़तापूर्वक रखे।

---

1. उत्तर का. 117.5,6।
2. वही 117.7,8।

तब बिग्यान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिश्रा भरि घरै दृढ़ समता दिश्रहिं बनाइ ।।[1]

तीनों (जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति) अवस्थाएँ और तीनों (सत, रज, तम) गुण रूपी कपास से तुरीयावस्था रूपी रुई को निकाल कर, और फिर उसे सँवार कर उसकी सुन्दर कड़ी बत्ती बनाकर तब विग्यान मय तेज ज्योति दीपक जलावें, जिसके समीप जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जाएँ।

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तुल तूरीय संवारि पुनि बाती करे सु गाढ़ि।
एहि विधि लेसैं दीप तेज रासि बिग्यान मय।
जातहि जासु समीप जरहि मदादिक सलभ सब ।।[2]

सोऽहमस्मि (वह ब्रह्म में हूँ) यह जो अखण्ड वृत्ति है वही उस ज्ञान दीपक की परम प्रचण्ड दीप शिखा है। इस प्रकार जब आत्मानुभव के मुख का सुन्दर प्रकाश फैलता है तब जन्म मृत्यु रूप संसार के मूल भेद-भ्रम का नाश हो जाता है और महान् बलवती अविद्या के परिवार मोह आदि का अपार अन्धकार मिट जाता है। तब वही (विज्ञान रूपिणी) बुद्धि आत्मानुभव रूपी प्रकाश को पाकर हृदय रूपी घर में बैठ कर उस जड़-चेतन की गाँठ खोलती है। और तब जीव उस ग्रन्थि को सुलझा पाने में समर्थ हो सकता है।

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंड। दीप सिखा सोई परम प्रचंड ।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा ।।
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा ।।
तब सोई बुद्धि पाइ उजिआरा। उर गृह पैठि ग्रंथि निरुआरा ।।[3]

ग्रन्थि सर्वथा प्रकाश में ही अच्छी तरह दिखलाई पड़ सकती है, अन्धकार में नहीं और जब उस अंधेरे में दिखलाई ही नहीं पड़ सकती तब खुलने की कथा का ही क्या प्रयोजन !

ग्रन्थि-विघ्न

बुद्धि को ग्रंथि खोलते देखकर माया बहुत विघ्न करती है। प्रथम वह ऋद्धि-सिद्धि को भेजती है, वह आकर बुद्धि को लोभ दिखाती है। छल-बल द्वारा यदि वह पास पहुँच भी गई तो अपने वस्त्र की वायु से झट से दीपक बुझाने का यत्न करती है। यहाँ बुद्धि की चातुरी यह है कि उसको पास न फटकने दें, अन्यथा वह अपने कार्य में विफल रहेगी —

---

1 उत्तर का., 117 'ख'।
2. वही, 117 'ग' 'घ'।
3. वही, 118·1, 2।

छोरत ग्रंथि जानि खगराया । विघ्न अनेक करइ तब माया ।।
रिद्धि-सिद्धि प्रेरइ बहुभाई । बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई ।।
कल-बल-छल करि जाहि समीपा । अंचल वात बुझावहिं दीपा ।।[1]

अगर दीपक को बचा भी लिया जाए तो इन्द्रियों के देवता उपद्रव किये बिना नहीं रहते । इन्द्रिय द्वार रूप झरोखों में अपना-अपना स्थान बनाये बैठे ये देवता गण विषय रूपी वायु को आते देख झट से किवाड़ खोल देते हैं ताकि वह आसानी से अन्दर प्रवेश कर सके और अन्तःकरण रूपी घर में जलते विज्ञान रूपी उस दीपक को बुझा दे ताकि बुद्धि अपने कार्य में विफल रहे एवं जीव उस ग्रंथि के न सुलझने पर फिर संसार चक्र में पड़कर भटकता फिरे ।

उक्त तथ्य के निरूपण हेतु गोस्वामी जी की निम्न उक्तियां कितनी सार-गर्भित एवं सत्य बन पड़ी हैं--

जो तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी । तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ।।
इन्द्रीद्वार झरोखा नाना । जंह तंह सुर बैठे करि थाना ।।
आवत देखहि विषय बयारी । ते हठि देइ कपाट उघारी ।।
जब सो प्रभंजन उर ग्रह जाई । तबहि दीप बिग्यान बुझाई ।।
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा । बुद्धि विकल भइ विषय बतासा ।।
इन्द्रिय सुरन्ह न ग्यान सोहाई । विषय भोग पर प्रीति सदाई ।।
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि विधि दीपको बार बहोरी ।।[2]
तब फिरि जीव विविध-विधि पावइ संसृति क्लेस ।
हरिभाया अति दुस्तर तरि न जाइ विहगेस ।।[3]

अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हुए तथा उसकी प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होने पर भी, विघ्न बाधाओं से जूझते, टकराते तथा जल में कमलवत् रहते, अगर मंजिल की प्राप्ति (हरि प्राप्ति या बन्धन मुक्ति) हो सके यानि एकाकार-तदाकार की स्थिति पा सके तभी उसके समस्त साधन सार्थक हैं ।

मनुष्य-योनि (नर-शरीर) :

मनुष्य के शरीर की रचना के प्रमुख उपादान पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु हैं । इन्हीं पंच तत्वों के मिश्रण से शरीर की रचना हुई है ।

मनुष्य योनि सब योनियों में श्रेष्ठ मानी गई है । यह देवताओं को भी दुर्लभ है । इसे पाकर जिसने अपना जन्म सार्थक नहीं किया वह धिक्कारने योग्य है । मानव

---

1. उत्तर का., 118·3,4 ।
2. वही, 118·5,6,7,8 ।
3. वही, 118 'क' ।

भव साधना का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर परलोक सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। श्रीराम का यही कथन है--

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।[1]

\+ \+ \+

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक संवारा।।[2]

\+ \+ \+

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि-धुनि पछिताहि।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोस लगाइ।।[3]

\+ \+ \+

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी।
फिरत सदा माया कर-प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुक करि करुना नरदेही। देतईस बिनु हेतु सनेही।।[4]

भवसागर से पार होने के लिए मनुष्य शरीर जहाज सदृश माना गया है—

नरतनु भव वारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरूत अनुग्रह मेरो।।[5]

मनुष्य योनि पाकर भी जो विपरीत आचरण करते हैं, दूसरों को दुःख पहुँचाते हैं, उनको महान संकट उठाने पड़ते हैं। ऐसे पुरुष मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं। इससे उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है।

नर सरीर धरि जे परपीरा। बारहिं ते सहहिं महा भवभीरा।।
करहिं मोह बस नर अध नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना।।[6]

मानव शरीर के प्राप्त होने का फल विषय भोग नहीं है। जो सांसारिक विषयों में ग्रस्त हो जाते हैं उनका अन्त दुखप्रद होता है। जो मनुष्य शरीर पाकर भी विषयों में मन लगा देते हैं वे मूर्ख अमृत छोड़कर विष ग्रहण करते हैं तथा पारस मणि त्याग कर घुंघची (सीप) ही प्राप्त कर पाते हैं--

एहितन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वाल्प अन्त दुखदाई।।
नरतनु पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुध ते सठ विष लेही।।
ताहि कबहुं भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई।।[7]

---

1. किष्कि. का. 11.2।
2. उत्तर का., 43.4।
3. वही, 43.4।
4. वही, 44.2,3।
5. वही, 44.4।
6. वही, 41.2।
7. वही, 44.1,2।

देह धारण करने का यही फल है कि सब कामों (कामनाओं) को छोड़ कर श्रीराम का भजन ही किया जाए। जो ऐसा नहीं करते वे जगत् में व्यर्थ ही जन्म लेते हैं—

देह धरे कर यह फलु भाई। भजहि राम सब काम विहाई ।।[1]

3. जगत् (सृष्टि) :

सृष्टि का अर्थ है 'सृजन'। जीव जगत् में रह कर ही अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति कर सकने में समर्थ है। इसका नियामक ब्रह्म है। उसी ने सृष्टि की उत्पत्ति की है। प्रश्न उठ सकता है कि यह सृष्टि किन कारणों से और कैसे उत्पन्न हुई।

जब कोई कार्य होता है तब उसका कोई न कोई कारण अवश्य हुआ करता है। बिना कारण के कोई भी कार्य संभव नहीं। कारण भी तीन प्रकार का होता है :

(1) निमित्त कारण
(2) उपादान कारण
(3) साधारण निमित्त कारण

निमित्त कारण करने वाला कहलाता है और उपादान कारण वह कहलाता है जिससे वह बनता हो। जिसके द्वारा वह कार्य बनता है वह साधारण निमित्त कारण कहलाता है। जैसे— घड़ा बनाया गया। यहाँ कुम्हार तो निमित्त कारण हुआ जिससे घड़ा बना वह मिट्टी उपादान कारण रही, तथा जिसके द्वारा बना वह कुम्हार का दण्ड, चक्र इत्यादि साधारण कारक रहा।

इसी प्रकार सृष्टि रचना जो एक कार्य है, उसके तीन कारण हैं--एक मुख्य निमित्त कारण 'परमात्मा' जो प्रकृति (उपादान कारण) की सामग्री से सृष्टि की रचना, पालना और समाप्ति करता है; दूसरा साधारण-निमित्त जीव जो परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक प्रकार के कार्यान्तर करता है और तीसरा उपादान-कारण 'प्रकृति' जो स्वयं सृष्टि की रचना सामग्री है, यह जड़ होने के कारण स्वयं न बन सकती है और न बिगाड़ने से बिगड़ती है। हाँ, यह बन-बिगड़ भले ही जाए किन्तु इसका अभाव कभी नहीं रहेगा, रूपान्तर में रहेगी अवश्य। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—

प्रकृति पुरुषं चैव विदध्यनादी उमावपि ।
वि का राश्च गुण श्चैव विद्धि प्रकृति संभवान ।।[2]

---

1. किष्कि. का., 23.3।
2. गीता, अध्याय 13, श्लोक 19, पृ. 170।

प्रकृति और पुरुष (जीव) दोनों को अनादि अर्थात् अविनाशी जानों; हाँ, सृष्टि में जो विकार और गुण अर्थात् तरह-तरह के रूपान्तर दिखाई देते हैं। वे प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। जीव इन रूपान्तरों में फँसा रहता है।

सत्व अर्थात् शुद्ध, रज अर्थात् मध्य, और तम अर्थात् जड़ता इन तीनों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। अर्थात् ये तीनों वस्तुएँ मिलकर जो एक संघात है उसी का नाम सृष्टि है।

इस प्रकार ईश्वर, जीव और प्रकृति यही तीन इस जगत् के कारण हैं। मुख्य निमित्त कारण ईश्वर है।

परमात्मा किस प्रकार से सृष्टि को दृश्य-आकार में लाता है, इसका एक बहुत सुन्दर द्रष्टान्त 'मुण्कोप-निषद' में दिया गया है—

यथोर्णनामि सृजते गृहते च।

अर्थात् जैसे मकड़ी अपने अन्दर से ही तन्तु निकाल कर जाला तनती है, और स्वयं उससे खेलती है, फिर उसको समेट भी लेती है उसी प्रकार परमात्मा इस जगत् को प्रकट करके इससे खिलवाड़ करता है और प्रलय के समय इसको समेट लिया करता है।

गोस्वामी जी ने 'राम' और 'जगत्' का एकीकरण किया है। उन्हें इन दोनों में कोई भेद ही दिखलाई नहीं पड़ता। भेद उन्हीं को दिखलाई देता है जो प्राणी जगत् के मर्म को समझने में अनभिज्ञ और असमर्थ है। गोस्वामी जी ने जगत् को ज्ञान-मार्गियों की भाँति असत्य अनित्य नहीं माना है। जगत् को मिथ्या कह कर उन्होंने उसे जीव के लिए 'बन्धन' घोषित नहीं किया है। उन्होंने तो जगत् को आत्मा का कर्तव्य क्षेत्र माना है। जीवात्मा जगत् में रहकर यदि परमात्मा को पहिचान लेती है तो उसे विश्व के कण-कण में परमात्मा की अमर ज्योति जगमगाती हुई दिखलाई देती है। उसके लिए तो सारा जगत् ईश्वर मय हो जाता है। भक्त भी जगत् में रहकर जगत् की भव्यता का अनुभव करता है और यहीं पर उसे भगवान् की लीलाएँ दिखलाई देती है। वह यहीं सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकता है। जीवन क्लेशपूर्ण तो उन्हीं का है जिन्होंने प्रभु (राम) को नहीं पहचाना है।

जिसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) है, जो प्रवाह रूप से अनादि है, जिसके चार तत्व ऋचाएँ हैं, छह तने, पच्चीस शाखाएँ और अनेकों पत्ते और बहुत से फल-फूल हैं, जिसमें मीठे तथा कड़वे दोनों फल संन्निहित हैं, एक बेल जो उसी के आश्रित रहती है, जिसमें नित्य नवीन पत्ते व फूलादि उत्पन्न होते रहते हैं, ऐसे वृक्ष स्वरूप (विश्वरूप में प्रकट) संसार को गोस्वामी जी नत-मस्तक होते हैं।[1]

---

1. उत्तर का., दो. 13, छं. 5 तथा 87.3,4।

प्रकृति और उसके तत्वों से उत्पन्न यह संसार सत्य है (द्वैताद्वैत), असत्य है (द्वैत) या सत्यासत्य दोनों है (विशिष्टाद्वैत); उन्होंने मायात्मक रूप में विग्रह-कारी सिद्ध होने वाले इस संसार को सीयाराम मय स्वरूप में वन्दनीय एवं पूजनीय माना है।

गोस्वामी जी की दृष्टि में यह जगत् प्रकाश्य है जिसको प्रकाशित करने वाले श्रीराम है—

जगत् प्रकास्य प्रकासक रामू।[1]

और उनमें उत्पन्न चौरासी लाख यौनियाँ हैं जिसमें चार प्रकार के (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, एवं जरायुज) जीव जल, पृथ्वी और आकाश में रहते हैं। ऐसे जगत् को ही वे प्रणाम करते हैं—

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी ।।[2]

+ + +

जल चर थल चर नभ चर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना ।।[3]

+ + +

सीयाराम मय सब जग जानी। करऊँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।[4]

जगत् जंजाल

संसार में जितने भी दृश्यादृश्य नजारे हैं सब नश्वर है, लेकिन फिर भी मानव उनके प्रपंच में पड़ कर नाना कर्मों में रत रहता है। संयोग-वियोग, भले-बुरे भोग, शत्रु-मित्र और उदासीन, ये सभी भ्रम के फंदे हैं। जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति कर्म और काल ये जगत् के जंजाल हैं। धरती, घर, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक जो देखने-सुनने और मन के अन्दर विचारने में आते हैं, इन सबका मूल मोह (अज्ञान) है। वस्तुतः ये हैं नहीं। स्वप्न में राजा भिखारी हो जाए या कंगाल स्वर्ग का स्वामी इन्द्र हो जाए, जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है, वैसे ही इस दृश्य प्रपंच को हृदय में देखना चाहिए। श्रीराम का लक्ष्मण से यह कहना कितना सार्थक बन पड़ा है—

जोग वियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ।।
जनमु-मरनु जँह लगि जग जालू। संपति विपति करमु अरु कालू ।।
धरनि धामु धनु पुर परिवारु। सरगु-नरकु जँह लगि व्यवहारु ।।
देखिय सुनिय गुनिअ मन माँही। मोहमूल परमारथु नाहीं ।।

---

1. बाल का., 117.4।
2. वही, 3.1।
3. वही, 3.2।
4. वही, 8.1।

सपने होय भिखारि नृपु रंक नाकपति होइ ।।
जागे लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोइ ।।[1]

4. **माया :**

माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है। अनेकों ब्रह्माण्डों के समूह उसके फल हैं। चर और अचर जीव गूलर के फल के भीतर रहने वाले छोटे-छोटे जन्तुओं के समान उन ब्रह्माण्ड रूपी फलों के भीतर बसते हैं।[2]

गोस्वामी जी ने अहंकार को माया का मूल माना है। 'मैं' और 'मेरा' तथा 'तू' और 'तेरा' में ही माया का समस्त रहस्य छिपा हुआ है। श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं--

मैं अरु मोर तोरतें माया । जेहि बस कीन्हे ब्रह्म निकाया ।।
गो-गोचर जँह लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ।।
तेहिकर भेद सुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ।।
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा बस जीव परा भव कूपा ।
एक रचत जग गुन बस जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके ।।[3]

माया के दो रूप हैं—'अविद्या' और 'विद्या'। एक जीव को भ्रम में डालती है तथा दूसरी भगवान राम द्वारा प्रेरित होकर जगत् का सृजन करती है। राम की माया का यही दूसरा रूप सीता है--

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीश माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की ।।[4]

अविद्या 'जिसे अज्ञान कहा गया है' अत्यन्त दुष्ट और दुःख रूप है। इसके वश में आकर जीव संसार रूप कूप में गिरा है। यह बन्धन का कारण है। दूसरी अर्थात् (अविद्या से भिन्न) विद्या संसार की रचना करती है। उसके वश में गुण (सत, रज, तम) हैं लेकिन वह प्रभु की प्रेरणा से ही संसार की रचना करती है। अपना बल उसके पास कुछ नहीं। देखिए--

एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा । जा वस जीव पराभव कूपा ।।
एक रचै जग गुन बस जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ।।[5]

---

1. अयो. का. 92.3,4 ।
2. अर. का. 13.3,4 ।
3. वही, 15.1,2,3 ।
4. अयो. का. 126 सो. 'छं'. ।
5. अर. का. 15.3 ।

विद्या यद्यपि अविद्या की विरोधिनी है, किन्तु वह भी है अन्तःकरण की वृत्ति ही। और अन्तःकरण माया से बना है। इसीलिए गोस्वामी जी ने उसे माया के अन्तर्गत माना है। जो माया के वशीभूत है वह है जीव और जो माया का प्रेरक है वह है ईश्वर।

माया ईस न आपु कहुं जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव ।।[1]

\+ \+

माया वस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुनखानी ।।[2]

माया का अविद्या स्वरूप भक्तों को नहीं व्याप सकता। प्रभु प्रेरणा से ही माया का विद्या रूप भक्त में भगवान के प्रति अनुरक्ति पैदा करता है--बिना राम की कृपा के कुछ भी संभव नहीं--

हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या ।।
ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ विहंग वर ।।[3]

अविद्या रूपी माया के प्रभाव में पड़कर जीव कभी भी हरि सेवकाई की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। उसका शमन राम भक्ति से ही संभव है। प्रभु भक्ति की प्रेरणा माया के विद्या रूप से ही मिलती है—

प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या ।।[4]

तुलसीदास जी विद्या माया की प्रभावशीलता के साथ साथ अविद्या माया के प्रकोप और उसकी शक्ति से भी परिचित हैं। उन्हें इस बात का पूर्णतः अहसास है कि संसार में अविद्या माया की सैन्यशक्ति का आतंक फैला हुआ है। काम उस सेना का सेनापति है और दंभ, कपट, पाखण्ड, इत्यादि उसके शूरवीर सैनिक हैं।[5] माया के इस प्रभाव से नारदमुनि और सनकादिक भी नहीं बच पाए हैं, तब साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या ?

क्रोध, लोभ, मोह के द्वारा यह माया की शक्ति आत्मा की सहज शान्ति भंग करती है। रूप, लावण्य की छटा दिखाकर वह वासना को उत्पन्न करती है जिसके चंगुल में भोले-भाले जीव फँसते चले जाते हैं। ऐश्वर्य भी माया का ही विकृत रूप है जो मनुष्य को मदांध बना देता है। यह मनुष्यों को आकृष्ट करके उसी प्रकार नष्ट कर डालती है, जिस प्रकार दीपक शलभ समूह को।

---

1. अर. का. 15।
2. उत्तर का. 78.3।
3. वही, 79.1, 2।
4. वही, 79.1।
5. वही, 71 'क'।

इस जंजाल से वे ही प्राणी मुक्त हो सकते हैं जो परमात्मा, जीव और प्रकृति के अभेद-स्वरूप को समझ जाते हैं। भगवान् के सगुण और निर्गुण रूप में भेद करने वाले भी माया के बन्धनों से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकते। इसका एकमात्र उपाय ईशानुरक्ति ही है—

नट कृत विकट कपट खगराया। नट सेवकहि न व्यापइ माया।[1]
हरिमाया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन मांहि।।[2]

जीव को माया (अविद्या) के वशीभूत होने का कारण ब्रह्म के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान का न होना है। दृष्टि भ्रम के कारण उसे ब्रह्म एक होता हुआ भी अनेक रूपों में दिखाई देता है। इसके लिए गोस्वामीजी ने यह उक्ति कही है—

चितव जो लोचन आंगुलि लाए। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाए।[3]

जैसे कोई मनुष्य अपनी आँख पर अंगुली लगाकर आँख को जरा दबा दे तो उसे दो चन्द्रमा दिखाई देंगे। वस्तुतः चन्द्रमा तो एक ही है, किन्तु दृष्टि से एक के दो दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार अविद्या रूप दृष्टि दोष से एक ही राम (ब्रह्म) अनेक रूपों में भासित होने लगता है। जो वस्तु चक्षु आदि इन्द्रियों से जानी जाती है वस्तुतः उसी में दूसरी वस्तु का भ्रम होता है, जैसे—सीप में चाँदी का या रस्सी में सर्प का। सच्चा ज्ञान होने पर ही यह भ्रम दूर होता है—

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रज पहिचाने।
जेहि जागे जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई।।[4]

+ + +

रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानुकरि बारि।
जदपि मृषा तिहुं काल कोइ भ्रम न सकै कोउ टारि।।[5]

सूर्य अति महान एवं प्रकाशवान है, मेघमण्डल उसकी अपेक्षा अति तुच्छ है, मेघ कदापि सूर्य को नहीं ढाँप सकता, किन्तु जब गगन में घन-पटल छा जाता है और वह हमारी दृष्टि को सूर्य पर जाने से रोक देता है, तब साधारणतः यही कहा जाता है कि मेघ ने सूर्य को छिपा लिया। छिपाया तो है मनुष्यों की दृष्टि को लेकिन सूर्य का छिपना-सा प्रतीत होता है। इसी तरह दृष्य (देखने वाले) जीव पर

1. उत्तर का. 104.4।
2. वही, 104।
3. बाल का. 117.2।
4. बाल का. 112.1।
5. वही, 117।

अविद्या का आवरण है। उसी आवरण के कारण ब्रह्म का ज्ञान न होने से हम (जीव) ब्रह्म को आवृत्त कह देते हैं। पर वास्तव में ब्रह्म पर अविद्या का कुछ भी वश नहीं है। वह जीव की दृष्टि को (दर्शनशक्ति को) आच्छादित कर देती है जिससे उसे (बिना अविद्या दूर किए) ब्रह्म का यथार्थ बोध नहीं हो पाता।

5. ज्ञान-भक्ति :

गोस्वामीजी ने भक्ति की तुलना में ज्ञान को कम महत्ता प्रदान करते हुए भी ज्ञान-भक्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं माना है—

ग्यानहि भगतहि नहि कछु भेदा। उभय हरहि भव सम्भव खेदा॥

+ + +

ग्यानहि भगतहि अन्तर केता।[1]

ज्ञान भी ईश प्राप्ति में सहायक है और भक्ति भी। लेकिन, ज्ञान समझने में, कहने में कठिन है—

नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना।[2]

+ + +

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौ पुनि प्रत्यूह अनेक॥[3]

+ + +

ग्यान के पंथ कृपान के धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परमपद लहई॥[4]

जबकि भक्ति का मार्ग सुलभ है। भक्ति से ईश प्राप्ति सहज सम्भव है। इसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा है कि ईश प्राप्ति में बाधक माया है जो कि स्त्रीलिंग है, भक्ति भी स्वयं स्त्री है, ज़बकि ज्ञान पुरुष है—

माया भगति सुनहु तुम्ह दोउ। नारि वर्ग जानउ सब कोउ॥[5]

+ + +

ग्यान विराग जोग विग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरि जाना॥[6]

---

1. उत्तर का. 115.7, 6।
2. वही, 115.5।
3. वही, 118 'ख'।
4. वही, 119.1।
5. वही, 116.2।
6. वही, 115.8।

स्त्री, स्त्री पर ग्रासक्त नहीं हो सकती ।

मोह न नारि नारि कै रूपा । पन्नगारि यह रीति ग्रनूपा ।।[1]

ग्रतः जब माया बाधक नहीं बनती तब भी ईश प्राप्ति में सहायक बन जाती है । दूसरा ज्ञान का पंथ कृपाण की धार के सदृश है, उस पर से गिरते देर नहीं लगती । उसमें मन को रोकने ग्रथवा स्थिर रखने के लिए कोई ग्रवलम्वन नहीं है ।

ज्ञान के पंथ कृपाण के धारा । परत खगेस होइ नहिं बारा ।।[2]

\+ \+ \+

ग्यान ग्रगम प्रत्यूह ग्रनेका ! साधत कठिन न मन कहु टेका ।।[3]

ज्ञानी जब ज्ञान की चरम सीमा पर पहुँच जाता है तब भी माया विघ्न उपस्थित करती रहती है । कैवल्यपद तो कोई-कोई ही प्राप्त कर पाता है ।

विघ्न ग्रनेक करै तब माया ।।[4]

\+ \+ \+

जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई । सो कैवल्य परम पद लहई ।।[5]

इतनी कठिन साधना के उपरान्त भी भगवान् ने ज्ञान से कहीं ग्रधिक भक्ति को प्रिय माना है । वास्तव में भक्तिहीन ज्ञान निरर्थक है—

करत कष्ट वहु पावइ कोऊ । भक्तिहीन मोहि प्रिय नहि सोऊ ।।[6]

भक्ति का मार्ग सुलभ एवं सुखद है, जैसा कि श्रीराम ने स्वयं कहा है—

सुलभ सुखद मारग यह भाई । भगत मोरि पुरान श्रुति गाई ।।[7]

भक्ति की श्रेष्ठता बतलाते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार नमक के बिना समस्त व्यंजन बेकार हैं उसी प्रकार भक्ति के बिना सब सुख व्यर्थ हैं—

भगति हीन बिनु सब सुख कैसे । लवन बिना बहु व्यंजन जैसे ।।[8]

इससे यह तात्पर्य नहीं कि ज्ञान की कोई उपादेयता ही नहीं; भक्ति के साथ ज्ञान की भी ग्रावश्यकता मानी गई है—

पावन पर्वत बेद पुराना । राम कथा सचिराचर नाना ।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ग्यान विराग नयन उरगारी ।।

---

1. उत्तर का., 116.1 ।
2. वही, 119.1 ।
3. वही, 45.2 ।
4. वही, 118.3 ।
5. वही, 119.1 ।
6. वही, 45.2 ।
7. वही, 45.1 ।
8. वही, 84.3 ।

भाव सहित खोजै जो प्रानि । पाव भगति मनि सब सुख सानी ।
मोरे मन प्रभु अस विस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ।।[1]

वेद पुराण बड़े-बड़े पर्वत है, उनमें विविध राम कथा रूप मणि की खानें हैं। सज्जन उसका मर्म जानने वाले हैं, सुमति कुदाली (खनिज, भूमि खोदने के लिए) है, ज्ञान और वैराग्य नेत्र हैं, जो कोई प्राणी भाव से खोदेगा, उसे भक्ति रूपी मणि अवश्य मिलेगी।

भक्ति प्राप्ति में ज्ञान वैराग्य की आवश्यकता सुस्पष्ट कही गई है। ज्ञान मार्ग में ब्रह्म रूप ही (मोक्ष) अन्तिम फल माना जाता है, किन्तु इस ज्ञान से भी एक सीढ़ी ऊपर भक्ति है। 'राम ते अधिक राम कर दासा' का तात्पर्य है कि ज्ञान से तो पुरुष राम रूप बनेगा किन्तु भक्ति द्वारा राम से भी अधिक यानि राम रूप माना जाएगा। भक्ति उपासना द्वारा ज्ञान प्राप्त कर राम रूपता (ब्रह्म रूपता) प्राप्त कर लेना ही अन्तिम पुरुषार्थ है।

बिना प्रभु प्रेम के ज्ञान शोभा नहीं पाता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कर्णधार के बिना जहाज —

सोह न राम प्रेम बिन ग्यानू । करनधार बिनु जिमि जल जानू ।।[2]

वस्तुतः ज्ञान एवं भक्ति दोनों ही ईश प्राप्ति के दो मार्ग हैं। ज्ञान का पंथ साधनात्मक है जबकि भक्ति का अनुरागात्मक (भावात्मक) दोनों का प्राप्तव्य एक ही (ईश प्राप्ति) है।

6. मुक्ति :

ज्ञानियों ने मुक्ति को सर्वोपरि माना है। वे इसी हेतु कठिन साधना में रत रहते हैं, आवागमन से छुटकारा पा जाना ही मुक्ति है, पर भक्त अपनी भक्ति में ही रमना चाहता है। वह तो अपने प्रभु चरणों में अनुरक्ति एवं उसकी अर्चना हर जन्म में करने की याचना करता है।

'मानस' में प्रत्येक भक्त चाहे वह तपस्यारत हो अथवा मरणासन्न अवस्था में, लेकिन भक्ति एवं प्रभु चरणों में अनुरक्ति की याचना करता नजर आता है। वह सांसारिक ऐश्वर्य अथवा मुक्ति की आकांक्षा न कर प्रायः भक्ति की ही कामना करता है। उसकी धारणा है कि भक्ति के साधने पर मुक्ति न चाहते हुए भी प्राप्त हो जाती है। जिस प्रकार पृथ्वी के बिना जल नहीं रह सकता, उसी प्रकार भक्ति के बिना मोक्ष नहीं रह पाता—

---

1. उत्तर का., 120.7, 8।
2. अयो. का., 277.3।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई । कोटि भाँति कोउ करै उपाई ।।
तथा मोच्छ सुख सुन खगराई । रहि न सकइ हरि भगति बिहाई ।।
अस बिचारि हरि भगति सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।।[1]

भक्ति की महत्ता सिद्ध करने के लिए ही गोस्वामीजी ने स्थल-स्थल पर कहीं भक्ति और ज्ञान का भेद समझाया है तो कहीं भक्ति के साधन बताए हैं, और कहीं नवधा भक्ति का निरूपण किया है ।

उनकी भक्ति में सामाजिकता है, क्योंकि साँसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए राम भक्ति का प्रचार नहीं किया गया, अपितु भक्ति को स्वयं साध्य बनाकर भक्तों के हृदय में निःस्वार्थ भाव को जाग्रत किया गया है । इसीलिए वह भक्ति की प्राप्ति के हेतु स्थान-स्थान पर संत और सत्संग का महत्व प्रदर्शित करते हैं—

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी ।
पुण्य पुज बिनु मिलहि न संता । सतसंगति संसृति कर संता ।।[2]

यही कारण है कि प्रत्येक काण्ड के मंगलाचरण में राम भजन अथवा राम भक्ति का ही प्रतिपादन किया गया है ।[3] इसके अलावा, जो ऋषि-मुनि,[4] देवगण,[5] धर्म-ग्रन्थ[6] अथवा पात्र[7] हैं वे सब राम के समक्ष आकर उनकी भक्ति का ही वरदान माँगते हैं । स्वयं तुलसीदासजी भी श्री राम या अन्य देवी-देवताओं (सभी) से प्रभु भक्ति पद 'अनुराग' की ही कामना-याचना करते हैं ।[8]

7. भावी (नियति) :

भावी को होनी, नियति, भाग्यकावदा आदि नामों से अभिहित किया जाता है । यह होनी बड़ी बलवान है, इसके आगे किसी का वश नहीं चलता । जो भाग्य में लिख गया उसे मिटाने में देव, दनुज, नर, नाग, किन्नर, मुनि, सभी असमर्थ हैं । नारद मुनि का यह कथन इस संदर्भ में द्रष्टव्य है—

---

1. उत्तर का. 119.3, 4 ।
2. वही, 45.3 ।
3. बाल का. श्लोक, 6 तथा सु. का. श्लोक 1, 2 ।
4. बाल का., 150 । (स्वायंभुव मुनि द्वारा कथित)
   वही, 211 छं. 3, (ऋषिपत्नी अहिल्या द्वारा कथित)
   अर का., 4 छं., 11 । (अत्रिमुनि द्वारा कथित)
5. लंका का., 111.50, 11 । (ब्रह्मा द्वारा कथित)
6. उत्तर का., 13 'क', छं. 6 । (वेदोक्ति)
7. वही, 84 'ख' । (काकभुशुंडि द्वारा कथित)
8. वही, 130 ।

कह मुनीस हिमवंत सुन जो विधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटन हार ।।[1]
भूपति भावी मिटहि नहिं जद्यपि न दूपन तौर ।।[2]

राजा दशरथ की मृत्यु का शोक समाचार सुनकर भरत की दशा शोचनीय हो जाती है तब गुरु वशिष्ठ भी यही सान्त्वना देते हैं कि भावी बड़ी बलवान होती है तथा यह दैव वश है क्योंकि हानि-लाभ, जन्म-मृत्यु, यश-अपयश, सब विधाता के ही हाथ में है—

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनि नाथ ।
हानि लाभु जीवन मरण जसु अपजसु विधि हाथ ।।[3]

जैसी होनी होती है सम्पुट भी वैसा बंध जाता है, यानि वैसे ही सहायक मिल जाया करते हैं । अजीबो गरीब संयोग मिल जाते हैं—

तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलहि सहाय ।
आपु न आवे ताहिपहि ताहि तहाँ लै जाय ।।[4]

दर असल जो भी कुछ उचित अनुचित घट जाता है तब यही कह कर संतोष कर लिया जाता है—

होइ है सोइ जो राम रचि राखा । को करि तर्क बढ़ावहि साखा ।।[5]

सभी इससे (भावी से) बचना चाहते हैं लेकिन तब भी प्रत्येक इसके फेर में आ ही जाता है । मूढ़–विद्वान जो भी हो, सभी पर इसका जादू प्रभाव पड़ जाता है । लेकिन यह सब दैव गति से ही हुआ करता है क्योंकि दैव समर्थ हैं, जब जैसा चाहते हैं लीला कर बैठते हैं—

बोले विहंसि महेश तब ग्यानी मूढ़ न कोय ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होय ।।[6]

8. काम-क्रोध-लोभ-मोह :

काम, क्रोध, लोभ और मोह ये चार वृत्तियाँ हैं । इनके वशीभूत हो कर प्राणी सांसारिक चक्र में भ्रमण करता रहता है । काम का बल नारी है, क्रोध का कठोर वचन, लोभ का बल धन तथा मोह का अज्ञान है । जो इन वृत्तियों में लिप्त

1. बाल का. 68 ।
2. वही, 174 ।
3. अयो. का., 171 ।
4. बाल का., 159 'ख' ।
5. वही, 52.4 ।
6. वही, 124 'क' ।

रहता है, उसे कामी, क्रोधी, लोभी एवं मोही की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। इस तथ्य की पुष्टि गोस्वामीजी ने इस प्रकार की है—

लोभ के इच्छा दंभ बल काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष वचन बल मुनिवर कहहिं विचार ।।[1]

काम, क्रोध, लोभ ये तीनों तो ज्ञानी मुनियों को डिगाने में भी नहीं चूकते। ये सर्वदा त्याज्य हैं—

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ क्षोभ ।।[2]

कामी को सदा नारी प्रिय है। गोस्वामीजी ने कामी पुरुष की प्रवृत्ति को बड़े गौर से देखा होगा, तदुपरान्त यह निष्कर्षात्मक रूप रखा कि काम नारी के बल पर ही इठलाता है—

कामहि नारि पियारि जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम ।।[3]

लोभी 'धन' से बौरा जाता है—

लोभी हृदय बसहु धन जैसे ।।[4]

ये सब नरक के द्वार पर ले जाने वाले हैं—

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।।

ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर कवि कोविद और गुनी का धाम इस संसार में ऐसा कौन है जिसकी लोभ ने विडम्बना न की हो।

ग्यानी तापस सूर कवि कोविद गुन आगार।
कैहि कै लोभ विडम्बना कीन्हि न एहि संसार ।।[5]

9. आधि-व्याधि :

संसार में समस्त जीव आधि-व्याधियों से संतप्त रहते हैं। ये व्याधियां अनेकानेक हैं। इन आधि-व्याधियों से जीव तभी निवृत्त हो सकता है जब वह जरा बंधन से मुक्त हो जाए। उनका निवारण मोक्ष है।

आधि से मन संतप्त रहता है तथा व्याधि से शरीर। यह आधि-व्याधि ही मनुष्य को सर्वदा चिन्तित बनाए रखती हैं। आधि से ही व्याधि की उत्पत्ति होती

---

1. अर. का., 38 'ख'।
2. वही, 38 'क'।
3. उत्तर का., 130 'ख'।
4. सु. का., 48.4।
5. उत्तर का., 70।

है । वस्तुतः मनोविकारों से युक्त हो जाना ही आधि से ग्रस्त होना है । जब वह आधि से मुक्त हो जाता है तब व्याधि स्वतः ही चली जाती है— .

जगत् में समस्त जीव रोगी हैं । वे शोक-हर्ष, भय, प्रीति और वियोग के दुख से दुःखी हो रहे हैं । ये होते सबको हैं लेकिन सब इन्हें जान नहीं पाते ।[1]

जानने से ये क्षीण अवश्य हो जाते हैं लेकिन नाश को प्राप्त नहीं हो पाते । विषय रूप कुपथ्य पाकर तो ये मुनियों के हृदयों में भी अंकुरित हो उठते हैं तब साधारण व्यक्ति का तो कहना ही क्या ?[2]

कोई भी व्यक्ति इन दोषों से दूर नहीं । ऐसा जगत् में कौन है जिसे चिन्ता रूपी सर्पिणी ने न डसा हो ? संसार में ऐसा कौन है जिसे माया न व्यापी हो ? मनोरथ रूपी घुन 'कीड़ा' जिसके शरीर रूपी लकड़ी में न लगा हो ऐसा धैर्यवान पुरुष कौन है ?

चिन्ता सांपिन को नहिं खाया । को जग जाहि न व्यापी माया ।
कीट मनोरथ दास सरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ।।[3]

चिन्ता से हृदय सदैव दग्ध रहता है । चिन्तित व्यक्ति तो जिन्दा ही मरे के समान है—

बालि त्रास व्याकुल दिनराती । तनु बहु ब्रन चिंता जर छाती ।।[4]

कहावत भी है कि चिंता तो जीते जी जलाती है और चिता मरने पर ।

विषय-वासनाओं से शरीर क्षीण और छलनी सरीखा होकर विनाश को प्राप्त होता है । मोह (अज्ञान) से प्रत्येक व्यक्ति अन्धा हो जाता है । काम ने किसे पीड़ित नहीं किया ? तृष्णा भी व्यक्ति को उन्मत्त बनाने में सहायक है । क्रोध निरन्तर हृदय को जलाता रहता है ।

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ।
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराया । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ।।[5]

इतना ही नहीं, लक्ष्मी के मद ने भी व्यक्ति को कुटिल बनाने में कसर नहीं छोड़ी । ऐश्वर्यवान प्रायः किसी की सुनना नहीं चाहता । ऐसे उदाहरण कितने हैं जो मृगनयनी के नेत्र बाणों से बिंधे न हों—

---

1. उत्तर का., 122.1 ।
2. वही, 122.2 ।
3. वही, 71.2, 3 ।
4. किष्कि. का., 12.2 ।
5. उत्तर का. 70.4 ।

श्री मद वक्र न कीन्ह केहि प्रभुता वधिर न काहि ।
मृग लोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ।।[1]

वात, पित्त, कफ जब तीनों का सन्निपात हो तब रोग असाध्य होता है, वैसे ही सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों का जब प्रावल्य होता है तब बुद्धि विक्षिप्त हो जाती है, तब किसी का उपदेश नहीं चलता। मान मदरूपी अतिसार ने किसको छोड़ा है ? जवानी में सभी प्रायः उन्मत्त हो उठते हैं। कहा भी है—जवानी दीवानी होती है। इसमें काम, क्रोध, सभी का प्रावल्य रहता है। लोग कुपंथ पर चलने लगते हैं। अपने आगे किसी की सुनते नहीं। जिस प्रकार व्यक्ति ज्वर से संतप्त होकर होश हवाश खो वैठता है और शय्या पर से उछल-उछल पड़ता है उसी प्रकार यौवनावस्था आने पर व्यक्ति मर्यादा का उल्लंघन तक कर वैठता है। ममता यश को नष्ट कर डालती है, यानि ममत्व से प्राप्त यश का नाश हो जाता है—

गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निवेही।
जोवन ज्वर केहि नहि वलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा ।।[2]

शोक व्यक्ति को विचलित कर देता है, इससे धीरज और धर्म जाता सा रहता है। 'रहा न ज्ञान न धीरज लाजा।' दशरथ, जनक, मन्दोदरी, पुरवासी आदि की मनोस्थिति का कारण यह शोक ही था। शोक विषयक यह सूक्ति देखिए—

मत्सर काहि कलंक न लावा। काहू न सोक सभीर डोलावा ।।[3]

इतना ही नहीं, पुत्रेच्छा, धन की तमन्ना एवं लोक प्रतिष्ठा की कामना सदैव व्यक्ति की बुद्धि को मलीन करती रहती है —

सुतवित लोक ईपना तीनों। केहि के मति इन्ह कृत न मलीनी ।।[4]

ये सब वृत्तियाँ व्यक्ति को सदैव घेरे रहती हैं जिससे वह संतप्त रहता है एवं रोग के चंगुल में जा फँसता है और उसका जीवन क्लेश मय हो जाता है।

क्लेश तीन प्रकार के होते हैं—

(1) शारीरिक।
(2) मानसिक।
(3) आत्मिक।

इन्हें दैहिक, दैविक एवं भौतिक[5] ताप भी कहा गया है—

दैहिक ताप वे हैं जो मिथ्या आहार-विहार और देह-संसर्ग से उत्पन्न होते हैं।

---

1. उत्तर का., 70 'ख'।
2. वही, 71·1।
3. वही, 71.2।
4. वही, 71.3।
5. वही, 21.1।

देवी प्रकोप जैसे अति वृष्टि, अकाल, बिजली पड़ना, पिशाचादि लगना आदि दैविक ताप हैं। भौतिक ताप वे हैं जो व्याघ्र, सर्पादि जीवों या शरीर धारियों द्वारा प्राप्त होते हैं। गोस्वामीजी ने इन विकारों को 'मानस रोग' की संज्ञा से अभिहित किया है। साधक के लिए विषय-वासना ही मानस रोग है। ये दुख की जड़ माने गए हैं।[1]

व्याधि की जड़ मोह (अज्ञान) है जिसके कारण अन्य रोग उत्पन्न होते हैं—

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्हते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥[2]

ये रोग बहुत प्रकार के होते हैं लेकिन सोलह व्याधियों एवं उन्नीस आधियों को ही मुख्य बताया है, जिनमें वात, पित्त, कफ, काम, क्रोध, लोभ आदि हृदय के लिए पीड़ाकारक हैं—

काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त निज छाती जारा ॥
प्रीति करहु जौ तीनहु भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥[3]

काम वात है, लोभ कफ है, तथा क्रोध पित्त-उत्पादक है। जब ये तीनों सम रहते हैं तब तक तो ठीक है लेकिन विषम होने पर सन्निपात की स्थिति ला देते हैं और इनके कुपित होने पर रोग असाध्य हो जाता है।

सन्निपात रोग की एक विशेष अवस्था है जो ज्वर या और किसी व्याधि के बिगड़ने पर होती है। इसका सबसे साधारण लक्षण है कि रोगी का चित्त भ्रान्त रहता है वह अंट-शंट बकने लगता है, उछलता, कूदता रहता है। जिस प्रकार सत, रज, तम तीन गुण हैं वैसे ही वात, पित्त, कफ तीन त्रिदोष हैं। इनका कुपित होना ही सन्निपात कहलाता है। यह सदैव असाध्य माना गया है। इसके अलावा अन्य रोग भी हैं। जिन विकारों से ये उत्पन्न होते हैं उनमें ममता दाद है, ईर्ष्या डाह (खुजली है)—हर्ष, विषाद गले के रोगों की अधिकता है। पराए सुख को देखकर जो जलन उत्पन्न होती है, वही क्षयी है, दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है—

ममता दादु कंडु हरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई ॥
पर सुख देखि जरनि सोई छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥[4]

अहंकार गठिया (गांठ का रोग) है, दम्भ, कपट, मद और मान आदि सब नसों के रोग हैं। तृष्णा जलोदर (उदर वृद्धि का रोग) है। तीन प्रकार की (पुत्र, धन और मान की) प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी हैं—

---

1. उत्तर का., 121।
2. वही, 121.15।
3. वही, 121.15,16।
4. वही, 121.17।

अहंकार अति दुखद डमरुआ । दंभ कपट मद मान नेहरुआ ।
तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी । त्रिविध ईषना तरुन तिजारी ।।[1]

मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं—

जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका ।[2]

जहाँ एक ही रोग के वश में होकर मनुष्य मृत्यु तक पहुँच जाता है, फिर ये तो बहुत से असाध्य रोग हैं । ये जीव को निरन्तर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशा में वह शान्ति कैसे पा सकता है ?

शान्ति प्राप्ति का एक ही उपाय है--ईश्वर भक्ति । जिस पर ईश कृपा हो जाए उसे यह सब विघ्न नहीं व्यापते, यानि इन दुःखों का उस पर कुछ भी असर नहीं होता--

सकल विघ्न व्यापहि नहिं तेही । राम सुकृपा बिलोकहि जेही ।।
सोइ सादर सर मज्जनु करहीं । महा घोर त्रय ताप न जरई ।।[3]

अहंकार, तृष्णा, ममता आदि रोग किसे नहीं पीड़ित करते ? जहाँ एक रोग से संतप्त मनुष्य विकलित हो उठता है, वहाँ इतने असाध्य रोग आक्रांत कर बैठें, तब उनका निवारण किस प्रकार सम्भव है ?

एक व्याधि वस नर मरहिं ये असाधि बहु व्याधि ।।[4]

इनमें छह मानस रोग असाध्य हैं--मोह, काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर ये सब निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं । ये बिना ही कारण सबसे वैर किया करते हैं--

काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ।।
बयरु अकारन सब काहू सो । जो कर हित अनहित ताहू सौ ।।[5]

इनमें विघातक काम, क्रोध और लोभ हैं जो ऋषियों और मुनियों के भी मन को डिगा देते हैं, फिर सामान्य पुरुषों का तो कहना ही क्या ?

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विज्ञान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ।।[6]

नारी काम को, कठोर वचन क्रोध को तथा इच्छा दम्भ लोभ को अतिशय बलवान बना देते हैं--

---

1. उत्तर का., 121.18 ।
2. वही, 121.19 ।
3. बाल का., 39.3 ।
4. उत्तर का., 121 'क' ।
5. वही, 39.3 ।
6. अर. का., 38 'क' ।

लोभ के इच्छा दंभ बल काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष वचन बल, मुनि बर कहहिं विचारि ।।[1]

इनमें सबसे प्रबलतम मनःप्रकृति--काम होती है । गोस्वामीजी ने समस्त शरीर और मानस-रोगों का तथा सब प्रकार के मलों का मूल मोह को माना है, क्योंकि मोह के कारण ही समस्त विकार उत्पन्न होते हैं जिनसे जीव द्वैत जनित संसार दुख का साझीदार बनता है ।

इनके शमन हेतु नियम, धर्म, आचार, तप-ज्ञान, जप, दान आदि करोड़ों औषधियाँ हैं लेकिन सब तब सार्थक बनती हैं जब हरि कृपा हो, सदगुरु रूपी वैद्य के वचनों में विश्वास हो एवं विषयों से दूर रहने की भावना हो--

राम कृपा नासहि सब रोगा । जौ एहि भाँति बने संजोगा ।।
सदगुरु बैद वचन विस्वासा । संजम यह न विषय कै आसा ।।[2]

गोस्वामीजी ने समस्त रोगों की दवा राम नाम बताया है--

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल ।[3]

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी द्वारा ब्रह्म जीव, जगत, माया, ज्ञान भक्ति निरूपण, मुक्ति, नियति, मुख्य वृत्तियाँ (काम, क्रोध, लोभ, मोह) व्याधियाँ इत्यादि के बारे में कथित ये सूक्तियाँ बड़ी मार्मिक एवं प्रेरणास्पद बन पड़ी हैं । उन्होंने ब्रह्म को सर्वोपरि एवं अजन्मा, अजय सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान आदि गुणों से विभूषित किया है, जो ब्रह्म निर्गुण है वह भक्त एवं धर्म-रक्षार्थ अवतरित होकर अलौकिक चरित्र करने में भी समर्थ है । उसकी कृपा से ही जीव बन्धन मुक्त हो सकता है । जीव ईश्वर का अंश होते हुए भी माया के वशीभूत होकर दुख का कारक एवं आवागमन के चक्कर में पड़ता है । माया जो कि ईश कृपा पर ही अवलम्बित है, नट-नटी रूप में सब जीवों को भ्रमित करने में समर्थ है । जहाँ अविद्या रूप माया जीव को भव-बन्धन में डालती है वहाँ विद्या रूप माया सृजन-पालन एवं बन्धन मुक्त करने में सहायक है, लेकिन इसके लिए ईश-कृपा एवं ईश-भक्ति आवश्यक है ।

ईश्वर माया के निमित्त ही इस जगत् में अलौकिक क्रीड़ाएँ किया करता है । जीव को इन जगत् के जंजालों से अपने को मुक्त रखते हुए ईश्वर की भक्ति में ही रत रहना चाहिए ।

नियति प्रबल है लेकिन काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि वृत्तियों से बचते हुए अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर रहना चाहिए । जगत् में व्याप्त

---

1. अर. का., 38 'ख' ।
2. उत्तर का., 122.3 ।
3. वही, 124 'क' ।

व्याधियों से समस्त जीव पीड़ित रहते हैं लेकिन जो प्रभु-भक्त हैं उन्हें ये व्याधियाँ अधिक संतप्त नहीं करतीं। ज्ञान से इसीलिए भक्ति को श्रेष्ठ ठहराया है; क्योंकि ज्ञान के मार्ग में अनेक विघ्न उपस्थित हुआ करते हैं। जबकि भक्ति का मार्ग सुलभ, सुखप्रद एवं ईश्वर के सानिध्य में शीघ्र पहुँचाने में सहायक है। इसीलिए मुक्ति को भक्तों ने हेय ठहराया है।

9. भक्तिपरक सूक्तियाँ

भक्ति :

ईश्वर के प्रति पूर्ण प्रेम का नाम ही भक्ति है। भक्ति ईश प्राप्ति का एक मार्ग भी है। इस पथ पर चल कर भक्त अपने इष्ट का साक्षात्कार कर सकता है। महर्षि शाण्डिल्य का कहना है "ईश्वर विषयक परानुरक्ति ही भक्ति है।[1] श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान में हेतु रहित निष्काम, एकनिष्ठ युक्त अनवरत प्रेम का नाम भक्ति है। यही पुरुषों का परम धर्म है। इसी से आत्मा प्रसन्न होती है।[2] जगतगुरु शंकराचार्य का कहना है कि मनसा वाचा कर्मणा से जो कुछ होता है या किया जाता है सब भक्ति के निहित ही है—

आत्मात्वं गिरजापति सहचराः प्राणः शरीरं गृह
पूजाते विषयोगभोग रचना निद्रा समाधिस्थति
सचारः पदयोः प्रदक्षिण विधिः स्तोत्राणि सर्वागिणे
यधत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवराधनम् ।।[3]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति बताया है।[4]

जिस भावुक श्रद्धालु के हृदय में अपनी प्रवृत्ति और परिस्थिति के अनुसार जिस प्रकार की आसक्ति का उदय हो उसी का दृढ़ सहारा लेकर वह भगवत्प्रेम मार्ग में अग्रसर हो सकता है। महर्षि नारद के मतानुसार ऐसी आसक्तियाँ ग्यारह मानी गई हैं,[1] यथा—

(1) गुण माहात्म्यासक्ति।
(2) रूपासक्ति।
(3) पूजासक्ति।
(4) स्मरणासक्ति।
(5) दास्यासक्ति।
(6) सरव्यासक्ति।

---

1. सा परानुरक्तिरीश्वरे ।। —शांडिल्य भक्ति सूत्र, 1/1/1
2. देवानां गुणलिङ्गा नामानुश्रविक कर्मणम्।
सत्व एदैक मनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तुया ।।
—श्रीमद्भागवत, स्कन्ध 3, अध्याय 25, श्लोक 32, 33।
3. शिव मानस पूजा स्तोत्र, श्लोक 4।
4. चिन्तामणि भाग 1, पृष्ठ सं. 32।

(7) वात्सल्यासक्ति ।
(8) कान्तासक्ति ।
(9) आत्मनिवेदनासक्ति ।
(10) तन्मयासक्ति ।
(11) परमविरहासक्ति ।

इसमें से किसी एक आसक्ति के सहारे व्यक्ति रागात्मिका भक्ति का पूर्ण माधुर्य प्राप्त कर सकता है ।

भक्ति के रूप :

भक्ति के मुख्यत दो रूप समक्ष आते हैं :

(1) वैधी-भक्ति (2) रागानुगाभक्ति

वैधी भक्ति में शास्त्रानुसार विधि-निषेध का अनुसरण करना पड़ता है। इसमें भक्त ईश्वर के ज्ञान-ऐश्वर्य से सम्पन्न रहता है ।

रागानुगाभक्ति में भक्तिभावना नाम अथवा प्रेम पर अवलम्बित रहती है। इसके भी दो भेद किए गए हैं :

(अ) कामारूपा (आ) सम्बन्धरूपा ।

गोपियों की भक्ति कामरूपा ठहरती है, क्योंकि यहाँ कृष्ण-सुख के अलावा अन्य कोई कामना नहीं है ।

सम्बन्धरूपा भक्ति के भगवान् एवं भक्त के सम्बन्ध की दृष्टि से, चार प्रभेद किए गए हैं—दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं दाम्पत्य । दास्य भक्ति के आदर्श प्रतीक हनुमान हैं, सख्य के उद्धव अर्जुन और सुदामा, वात्सल्य के यशोदा, नन्द, कौशल्या, एवं दशरथ, तथा दाम्पत्य के प्रतीक हैं सीता, राधा और रुकमणी ।

इन पाँचों भक्ति प्रकारों के संयुक्त होने पर माधुर्य भाव का प्रादुर्भाव होता है जिसमें एक-एक कर सभी भाव समाविष्ट हो जाते हैं ।

तुलसी और भक्ति :

गोस्वामी जी की भक्ति को 'रामभक्ति' नाम दिया जा सकता है । 'श्रुति सम्मत हरि भक्तिपथ' में 'विरति-विवेक' का समन्वय कर उन्होंने भक्ति को व्यापकता प्रदान कर दी है । उसे उन्होंने विरलों का मार्ग न रखकर सर्व सुलभ एवं सर्व ग्राह्य कर दिया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में--'गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है—उसकी सर्वांगपूर्णता । जीवन के किसी भी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उसका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से । धर्म तो उसका नित्य लक्षण है । तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं । योग का भी उसमें समन्वय है, पर उतने ही का जितना ध्यान के लिए, चित्त को एकाग्र कराने के लिए, आवश्यक है ।[1]

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 140 ।

तुलसीदासजी ने नारद के 'भक्ति सूत्र' में वर्णित ग्यारह ग्रासक्तियों का निरूपण ग्रपने 'मानस' में ग्रंकित किया है। उसके ग्रनुसार उनके ग्रादर्श ग्रासक्ति (पात्र) इस प्रकार हैं—

गुण माहात्म्यासक्ति---ग्रादर्श प्रतीक नारद, काकभुशुण्डि, शिव। रूपासक्ति-- सर्वप्रथम मिथिला के नर-नारी, राजा जनक तथा दण्डकारण्य के ऋषि-मुनि ग्रादि हैं। पूजासक्त भक्तों में भरत मान्य है। स्मरणासक्ति—भक्ति की कोटि में ग्राने वाले सनकादिक मुनि हैं। इनके ग्रलावा ध्रुव एवं प्रहलाद भी इसके प्रतीक हैं। दास्यसक्त भक्तों में हनुमान एवं लक्ष्मण हैं। सख्यासक्ति के ग्रन्तर्गत ग्राने वालों में निषाद, सुग्रीव, ग्रौर विभीषण हैं। कान्तासक्ति की प्रतीक जानकी हैं। वात्सल्यासक्त भक्तों में मनु शतुरूपा दशरथ तथा कौशल्या हैं। ग्रात्मनिवेदनासक्ति की कोटि में ग्राने वाले भक्तों में विभीषण एवं हनुमान हैं। तन्मयतासक्त भक्तों में सुतीक्ष्ण हैं। परमविरहासक्त भक्तों में दशरथ उल्लेखनीय हैं।

भक्तिपरक सूक्तियाँ :

भक्तिपरक सूक्तियों के ग्रन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुग्रों पर विचार व्यक्त किए गए हैं--

(1) नाम महिमा।
(2) गुण महिमा।
(3) प्रभुधाम।
(4) भक्ति के ग्रावश्यक उपादान।
(5) हरिभजन।
(6) हरिकथा।
(7) भक्त।
(8) भक्त-लक्षण।
(9) भक्ति-महिमा।
(10) राम-विमुख।

1. नाम महिमा :

यद्यपि प्रभु को ग्रनेक नामों से ग्रभिहित किया गया है[1]; किन्तु गोस्वामीजी को उनका 'राम' नाम ही विशेष प्रिय है। उन्होंने जिस 'राम नाम' की वन्दना की है वह इन रूपाकृतियों पर यौंही ग्रारोपित किए जाने वाले राम नाम की नहीं, किन्तु उस राम नाम की जो कृशानु भानु–हिमकर का हेतु है, पालन, सृजन ग्रौर संहार शक्ति से सम्पन्न है तथा 'ॐ' एकाक्षर का समकक्ष है। वह ग्रग्नि, सूर्य एवं चन्द्रमा का हेतु ग्रर्थात् 'र', 'ग्रा' ग्रौर 'म' रूप से बीज है, ब्रह्मा, विष्णु ग्रौर महेश रूप है

---

1. ग्रर. का., 42.4 'क'।

तथा वेदों का प्राण है, निर्गुण उपमा रहित और गुणों का भण्डार है, एक विशिष्ट महामंत्र है जिसे शिवजी जपते हैं। उल्टा कर वाल्मीकि ने भी उसे जपा। वह काशी में मुक्ति का हेतु एवं पूज्य है।[1]

यदि पूर्णिमा की रात्रि भक्ति है, तो राम का नाम चन्द्रमा है। अन्य सब नाम नक्षत्रों के सदृश हैं। जिस प्रकार चन्द्र रजनी के तम को निगल जाता है उसी प्रकार राम का नाम समस्त पापों का विध्वंस कर देता है।[2] जहाँ राम का नाम रहेगा वहाँ 'काम' विषय या कामनाएँ अपना राज्य नहीं कर पाएँगी। गोस्वामीजी ने राम नाम महिमा का गुणगान इस प्रकार चित्रित किया है—

वर्षा ऋतु रघुपति भगत तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर वरन युग सावन भादो मास॥[3]

भक्ति वर्षा ऋतु, उत्तम सेवक गण, धान, तथा 'राम' नाम के दो अक्षर सावन-भादों के दो माह सदृश हैं। सावन-भादों मास में वर्षा की वृष्टि होने पर ही धान फलता-फूलता है उसी प्रकार राम नाम दो सुन्दर अक्षरों का निरन्तर जाप करने से ही बुद्धि निखार पाती है तथा भक्ति फलती-फूलती है।

सर्वत्र प्रकाश करने के लिए (भीतर बाहर) राम नाम रूपी मणि दीपक का मुख रूपी द्वार की जीभ रूपी देहली पर रखना वांछनीय होगा—

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर वाहरेहु जो चाहसि उजियार॥[4]

तभी जीव अज्ञान को दूर कर उस सुप्रकाश के दर्शन कर सकता है। यह नाम तो इतना उपयोगी है कि जो सब प्रकार की कामनाओं (भोग-मोक्ष की) से रहित है उन्होंने भी राम भक्ति में लीन होकर नाम के सुन्दर प्रेमरूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है—

सकल कामना हीन जो राम भगति रसलीन।
नाम सुप्रेम पियूस ह्रद तिनहुँ किये मन मीन॥[5]

अर्थात् वे नाम रूपी सुधा का निरन्तर आस्वादन करने में ही मग्न है।

---

1. बाल का., 19।
2. अर. का., 42 'क'।
3. बाल का., 19।
4. वही, 21।
5. वही, 22।

नाम का प्रभाव अपार है। 'राम' से भी यह 'नाम' अधिक महत्वशील एवं उपादेय है।[1] श्रीराम ने तो शबरी, जटायु आदि उत्तम सेवकों को ही मुक्ति प्रदान की थी लेकिन 'नाम' ने तो अनगिनत दुष्टों का भी उद्धार किया है।[2]

इस प्रकार नाम (निर्गुण) ब्रह्म और (सगुण) राम दोनों से ही बड़ा है। वह वरदान देने वालों को भी वर देने वाला है। शिव ने इसीलिए इसकी महत्ता प्रतिपादित की है।[3]

कलियुग में तो 'नाम' की ही विशेष महत्ता है। इस युग में नाम कल्पतरु एवं मुक्ति का घर माना गया है। नाम के कारण ही भाँग का पौध तुलसी के समान पवित्र हो गया है।

राम नाम को कल्पतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भांग ते तुलसी तुलसीदास ।।[4]

राम नाम श्री नृसिंह भगवान हैं, कलियुग हिरण्यकशिपु है और जप करने वाले जन प्रह्लाद के समान है। यह राम नाम ही देवताओं के शत्रु (कलियुग रूपी दैत्य) को मारकर जप करने वालों की रक्षा करता है।[5]

इतना ही नहीं, कलियुग में भवसागर पार होने का लघु उपाय राम नाम ही है--क्योंकि इस युग में न जप हो सकता है न तप और न यज्ञादि। बस राम का नाम ही एकमात्र अवलम्बन है। सतयुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञ से, द्वापर में पूजन से तथा कलियुग में नाम से प्रभु प्राप्त हो सकते हैं--

ध्यान प्रथम जुग मरव विधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे ।।
कलि केवल मलमूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना ।।
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत सुमन सकल जग जाला ।।
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता ।।
नहिं कलि करमु न भगति बिवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू ।।[6]

राम के नाम का महत्व तो इतना अधिक है कि यदि जम्हाई लेते वक्त भी भूल से कोई राम नाम का उच्चारण कर लेता है तो उसका बेड़ा पार है। उसके समक्ष पाप फिर फटकते ही नहीं--

राम नाम कहि जे जमुहाही। तिन्ह न पाप पुंज समुहाई ।।[7]

---

1. बाल का., 23।
2. वही, 24।
3. वही, 25।
4. वही, 26।
5. वही, 27।
6. वही, 27.2, 3, 4।
7. अयो. का., 194.3।

नाम जप से सारे क्लेश मिट जाते हैं। आर्त के लिए तो यह औषधि-स्वरूप है।

जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कु संकट होहिं सुखारी ॥[1]

नाम की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है। वाणी की शोभा भी इसी से है। जिस प्रकार आभूषणों से सुसज्जित सुन्दर स्त्री कपड़ों के बिना शोभा नहीं पाती, उसी प्रकार वाणी भी राम नाम बिना सुशोभित नहीं होती।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु विचारि त्याग मद मोहा।
बसनहीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित वर नारी ॥[2]

(2) गुण-महिमा :

यह मनोज्ञवैानिक सत्य है कि गुण एवं स्वरूप एक-दूसरे के आश्रित होते हैं, तथा उनका प्रभाव परोक्ष या प्रत्यक्ष, किसी न किसी रूप में पड़े बिना नहीं रहता।

गोस्वामी जी ने अपने 'मानस' में श्री राम के स्वरूप की जो झाँकी दिखाई है, वस्तुतः उसमें गुणों का भी योग है। मुख्यतः गुणों के दो रूप समक्ष आते हैं—

(क) पारलौकिक या पारमार्थिक।

(ख) लौकिक या जागतिक।

(क) अपने पारमार्थिक रूप से वे सर्वसमर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं, न्यायशील एवं पूर्ण काम युक्त हैं। यहाँ पूर्ण काम का अर्थ इच्छाओं से है, यानी कल्पतरु के सदृश इच्छित फल प्रदान करने वाले हैं। इतना ही नहीं अनन्त सौन्दर्य युक्त भगवान गुणों के कारण ही अधिक मुग्धकारक हैं—वे अगुन, अखण्ड, अनन्त अनादि, अनूप, अज, अलख, अविनाशी, निराकार, निर्मोह, निरंजन, नित्य, समदर्शी तथा एक रस हैं। उनके इन गुणों की झाँकी देखिए—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अरूपा।
सकल विकार रहित गत भेदा। कहिं नित नेति निरूपहिं वेदा ॥[3]

\+ + +

सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अज विग्यान रूप बल धामा ॥
व्यापक व्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ शक्ति भगवंता ॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। समदरसी अनवद्य अजीता ॥
निरुपम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी। वृह्म निरीह निरज अविनाशी ॥[4]

---

1. बाल का., 22.3।
2. सु. का., 23.2।
3. अयो. का., 93.4।
4. उत्तर का., 72.2, 3, 4।

अपने सर्व-समर्थ रूप में वे तिनके से वज्र एवं वज्र से तिनका तथा जड़ से चेतन एवं चेतन से जड़ करने की क्षमता रखते हैं। वे जो चाहें सो कर सकने में समर्थ हैं। उनके इस पौरुष का बखान शेष, शारदा भी नहीं कर सकती--

तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई।[1]

\+ \+ \+

जो चेतन कंह जड़ करऊ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनाथहि भजहिं जीव ते धन्य।।[2]

(ख) अपने लौकिक रूप में वे जीव (भक्त) के लिए जगत् प्रकाशक, सृष्टि पालक, संहारक, सर्वत्र व्याप्त, परम उदार, दानी, पतित पावन एवं करुणा के सागर तथा विषय-विकारों के विनाशक के रूप में समक्ष आते हैं--

जगत प्रकास्य प्रकाशक रामू। मायाधीस ज्ञान गुन धामू।।

\+ \+ \+

सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।।[3]

\+ \+ \+

सुन रावन ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल विरचित माया।।
जाके बल विरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा।।[4]

\+ \+ \+

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं।।[5]

3. प्रभु-धाम :

प्रभु के निवास स्थान बैकुण्ठ, क्षीरसागर, परम धाम आदि बतलाए गए हैं। पुराणों में जिन धामों का वर्णन किया गया है उनमें से क्षीरसागर और बैकुण्ठ नाम का उल्लेख गोस्वामी जी ने मानस में किया है। इसे 'सुरधाम' भी कहा गया है।

प्रभु के निवास स्थल की खोज में पृथ्वी, देवतादि सभी इच्छुक रहे हैं। एक बार जब पृथ्वी असुरों के उपद्रवों से संतप्त हो गई तब देवतादि के साथ प्रभु से प्रकट होने की याचना की गई।[6] तथा प्रभु से मिलने के लिए उनके निवास स्थान को खोजने का प्रयत्न किया गया। किसी ने उनका निवास स्थान क्षीरसागर बताया

---

1. लंका का., 35.4।
2. उत्तर का., 119 'ख'।
3. बाल का. 117.4,3।
4. सु. का. 21.2,3।
5. किष्कि. का. 11.4।
6. बाल का. 185·1, तथा 184.3,4।

तो किसी ने वैकुण्ठ ।[1] अन्ततः निर्णय यह रहा कि वे तो सर्वत्र व्याप्त हैं । जो जिस भाव से उन्हें भजता है वे उसी रूप में अवतरित हो जाते हैं । स्वयं शिवजी ने कहा है —

हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना ।
देस काल दिसि विदिसहु माँही । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ।।[2]

\+ + +

जाके हृदय भगति सि प्रीती । प्रभु तंह प्रगट सदा एहि रीती ।।
अग जग मय सब रहित विरागी । प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ।।[3]

स्वयं भगवान राम ने बाल्मीकि के पूछने पर अपने विश्राम स्थल बताए हैं ।[4]

वस्तुत. वे प्रेम के वशीभूत होकर ही साकार रूप धारण किया करते हैं, प्रेमी भक्त पर ही उनकी अनुकम्पा अधिक होती है । अनेकों प्रकार के योग, जप, दान, तप, यज्ञ, व्रत और नियम करने पर भी वे वैसी कृपा नहीं करते जैसी अनन्य प्रेम होने पर करते हैं—

उमा जोग जप दान तप नाना मख व्रत नेम ।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम ।।[5]

\+ + +

मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा । किए जोग तप ग्यान विरागा ।।[6]

\+ + +

रामहि केवल प्रेमु पियारा । जानि लेउ जो जाननिहारा ।।[7]

4. भक्ति के आवश्यक उपादान :

भक्ति के आवश्यक उपादानों में विश्वास सर्वप्रथम है । विना विश्वास के भक्ति स्थिर नहीं रह सकती, उसकी दृढ़ता विना प्रेम-विश्वास के असम्भव है । वस्तुतः भक्ति की भित्ति प्रेम विश्वास है । इसके विना बना महल ऐसे ढह जाता है जिस प्रकार पानी चिकनाई पर से--

बिनु बिस्वास भगति नहिं[8]--

---

1. बाल. का., 128.2 ।
2. वही, 185.3,4 ।
3. अर. का., 16.4,5 ।
4. अयो. का., 128–131 ।
5. लंका का., 117 'ख' ।
6. उत्तर का., 62.1 ।
7. अयो. का., 137.1 ।
8. उत्तर का., 90 'क' ।

\+ \+ \+

प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई । जिमि खगपति जल के चिकनाई ।।[1]

लेकिन, बिना परिचय के स्नेह नहीं पनपता और स्नेह के बिना पूर्ण प्रेम उत्पन्न नहीं हो पाता, जब पूर्ण प्रेम का अभाव होगा तो भक्ति हो ही नहीं सकती--

जाने बिनु नहिं होइ परतीती । बिनु परतीति न होइहि प्रीती ।।[2]

अतः समस्त विषयों से अनुराग समेट कर प्रभु चरणों पर अनुराग का केन्द्रित कर देना ही पूर्ण भक्ति है ।

जीव को परम शान्ति के लिए भक्ति अनिवार्य है और भक्ति के लिए विश्वास । जब तक यह प्राप्त न हो जाए, ईश-प्राप्ति संभव नहीं और बिना ईश के जीव स्वप्न में भी शान्ति नहीं पा सकता । काकभुशुण्डि जी का यह कथन उक्त बात को ही सूचित करता है--

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम ।
राम कृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह बिश्राम ।।[3]

'मानस' भक्ति की जो धारा प्रवाहित हुई है वह प्रयोजनीय है । उनके धार्मिक सिद्धान्तों में सबसे महत्वपूर्ण राम भक्ति ही है ।

यही नहीं, प्रत्येक रचना में रामचर्चा ही उनका अप्रितम लक्ष्य रहा है ।

यही कारण है कि 'मानस' में उनका प्रत्येक पात्र भक्ति प्रसाद की ही याचना करता है, चाहे बैर ठानकर या प्रेम पाकर । स्वयं रावण यह कहता है कि इस तामस देह से भजन दुर्लभ है । यदि वास्तव में ईश्वर ने अवतार ले लिया है तो मैं हठवश उनसे शत्रुता करूँगा ताकि उनके दर्शन से जीवन सार्थक हो सके ।[4]

5. हरि-भजन :

ईश-प्राप्ति के लिए उनका भजन अनिवार्य माना गया है । बिना भजन के न तो मोक्ष ही प्राप्त हो सकता है और न जीवन के क्लेश ही दूर हो सकते हैं । गोस्वामीजी ने बिना भजन मोक्ष की आकांक्षा रखने वाले ज्ञानी को भी बिना पूँछ और सींग का पशु ठहराया है । जिस प्रकार समस्त तारागणों के साथ चन्द्रमा के उदय होने पर एवं पर्वत पर दावाग्नि लगने पर कितना ही प्रकाश क्यों न हो जाए लेकिन अन्धकार तभी हटता है जब सूर्योदय हो, उसी प्रकार बिना हरि भजन के जीवों का क्लेश नहीं मिटता—

---

1. उत्तर का., 89.4 ।
2. वही, 89.4 ।
3. वही, 90 'क' ।
4. अर. का., 23 ।

रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निर्वान।
ग्यान वंत अपि सो नर पसु बिनु पूंछ विपान ॥
\+ \+ \+
राकापति पोडस उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रवि राति न जाइ।[1]
\+ \+ \+
ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा ॥[2]
\+ \+ \+
....बिनु हरि भजन न जाहि कलेसा ॥[3]
\+ \+ \+
..................................राम भजन बिनु मिटहि कि कामा ॥[4]
\+ \+ \+
कवनिउ सिद्ध कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥[5]

जो जीव हरि भजन रत हैं वे धन्य हैं क्योंकि जो चेतन को जड़ और जड़ को चेतन करने की क्षमता रखता है, उस प्रभु का स्मरण भजन करना परम लाभकारक ही है —

जो चेतन कँह जड़ करइ जड़हि करहिं चैतन्य।
अस समर्थ रघुनाथ कहि भजहिं जीव ते धन्य ॥[6]

यह इसलिए भी आवश्यक है कि मायाकृत दोप-गुण बिना हरि भजन के शान्त नहीं होते। इनके शान्त करने एवं भव से पार होने के लिए हरि स्मरण आवश्यक है—

हरि माया कृत दोप गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं ॥[7]
\+ \+ \+
तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन विश्राम।
जब लगि भजन न राम कहुं शोक धाम तजि काम ॥[8]

---

1. उत्तर का., 78 'क', 'ख'।
2. वही, 79.1।
3. वही, 89.3।
4. उत्तर का., 90.4।
5. वही, 90.1।
6. वही, 119 'ख'।
7. वही, 104 'क'।
8. सु. का., 46।

\+ + +

बारि मथे घृत होय वरु सिकता ते वर तेल।
बिनु हरिभजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल ।।[1]

और इसीलिए भजन की इतनी महिमा मंडित की गई है।

6. हरि-कथा :

गोस्वामीजी ने भक्ति-निरूपण के अन्तर्गत हरि-कथा को भी महत्त्व दिया है। वह हृदय ही क्या जो प्रभु चरित्र सुनकर प्रफुल्लित न हो उठे ? वह जीव भी निरर्थक है जो गुणगान न कर सके। जो राम कथा श्रवण में अनुरक्त नहीं उसके कान सर्पों के बिल सदृश हैं तथा जो सिर नतमस्तक न हो पाए वह सिर कड़वी तूंबी के समान है—

कुलिस कठोर निठुर सोई छाती। सुनि हरि चरित न जो हरषाती ।।[2]

\+ + +

जिन्ह हरि कथा सुनहि नहिं काना। श्रवन रंध्रअहिभवन समाना ।।

\+ + +

तो-सिर कटु तुम्बरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला ।।

\+ + +

जो नहिं करहि राम गुन गाना। जीह सौ दादुर जीह समाना ।।[3]

\+ + +

हरि हर निंदा सुनहिं जो काना। होइ पाप गौ घात समाना ।।[4]

भवसागर पार होने के लिए रामकथा नौका सदृश है—

भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहं दृढ़ नावा ।।[5]

लेकिन, जब तक सत्संग नहीं तब तक हरि कथा सम्भव नहीं और तब तक मोह दूर नहीं हो पाता; राम चरणों में अनुरक्ति असम्भव है —

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ।।[6]

7. भक्त :

भक्त वही है जो अपने आराध्य की ही आस पर जीता हो यानि उसका तन, मन, धन सब अपने स्वामी के लिए ही है। वह मुक्ति भी नहीं स्वीकारता।

---

1. उत्तर का., 122 'क'।
2. बाल का., 113.4।
3. वही, 113.1, 2, 3।
4. लंका का, 32.1।
5. उत्तर का., 53.2।
6. वही, 61।

उसकी तो यही याचना है कि जिस योनि में जहाँ जन्म ले, प्रभु चरणों में उसकी प्रीति बनी रहे। उसकी एकमात्र पुकार है—

धर्म न अर्थ न काम रुचि गति न चहइ निरवान।
जनम जनम रति राम पद यह वरदानु न आन।[1]

उसका अनन्य प्रेम इतना कि जिस प्रकार--

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतरहु प्रिय लागहुं मोहि राम॥[2]

वह बार-बार यही प्रार्थना करता है--

बार बार वर मांगहु हरषु देइ श्री रंग।
पद सरोज अनपायनी भक्त सदां सत्सग॥[3]

गोस्वामीजी ने मानस में चार प्रकार के राम भक्त बताए हैं--

(1) अर्थार्थी, धनादि की चाह से भजने वाले।
(2) आर्त्त, संकट निवृत्ति के लिए भजने वाले।
(3) जिज्ञासु, भगवान को जानने की इच्छा से भजने वाले।
(4) ज्ञानी, भगवान को तत्व से जानकर, स्वाभाविक प्रेम से भजने वाले।

ये चारों ही पुण्यात्मा, पाप रहित, एवं उदार होते हैं। प्रभु स्मरण से ही इनके सारे संकट दूर हो जाते हैं।[4]

इनमें आर्त श्रोता की प्रतिरूप पार्वती है, एक स्थल पर उन्होंने यह रहस्य प्रकट किया है--

गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहि। आरत अधिकारी जेह पावहिं॥[5]

वस्तुतः अपनी आर्त भावना हेतु ही उन्होंने राम कथा सुनने की याचना शिवजी से पुनः की है एवं कथा सुनने के बाद अपने को कृत कृत्य माना है।[6] गरुड़जी जिज्ञासु भक्त हैं।[7] भारद्वाज जी ज्ञानी[8] भक्त की कोटि में आते हैं तथा सुजन अर्थार्थी भक्त हैं।[9]

---

1. अयो. का., 204।
2. उत्तर का., 130 'ख'।
3. वही, 14 'क'।
4. बाल का., 22 3।
5. वही, 110.1
6. वही, 110, 129।
7. उत्तर का., 52 'क'।
8. वही, 69 'क'।
9. वही, 129।

8. **भक्त-लक्षरण :**

गोस्वामी जी ने भक्तों में कुछ निजी गुरण निहित किए हैं जिससे वे भक्त कहलाने के ग्रधिकारी बनते हैं।

भक्त सब कुछ त्याग कर राम भक्ति में लीन रहता है। वह सब कर्म करते हुए भी ग्रनासक्त भाव से प्रभु चरणों में ग्रासक्ति का स्रोत बहाता है। ग्रपने इन्हीं गुणों के कारण भक्त को ग्रधिक महत्ता प्रदान की गई है। भक्त ग्रलग से ही पहिचाने जा सकते हैं। इनके हृदय में सीता-राम का निवास रहता है। प्रभु प्रेम से उनका हृदय पुलकायमान हो उठता है। उनकी जीह्वा पर सतत् प्रभु-नाम का जाप तथा नेत्रों में प्रेमाश्रु छलछलाते रहते हैं।[1]

वस्तुत: भक्त में ग्रभिमान नहीं होता। उसे ग्रभिमान का त्याग करना होता है। क्योंकि ग्रभिमान जन्म-मरण रूप संसार का मूल है ग्रौर ग्रनेक प्रकार के क्लेशों तथा समस्त शोकों को देने वाला है।

सेवक पर प्रभु की ग्रधिक कृपा होती है ग्रत: वे ग्रपने भक्त पर ग्रभिमान का ग्रसर होने ही नहीं देते। जिस प्रकार बच्चे के शरीर में हुए फोड़े को माता कठोर हृदया बन कर चिरा डालती है यद्यपि बच्चा चिराते वक्त बहुत दु:ख पाता है, ग्रधीर होकर रोता है तो भी रोग के नाश के लिए माता बच्चे की उस पीड़ा को कुछ भी नहीं गिनती, उसी प्रकार प्रभु दास का ग्रभिमान उसके हितार्थ ही दूर करते हैं —

संसृत मून सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक ग्रभिमाना।।
तातें करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता ग्रति भूरी।।
जिमि सिसुतन ब्रन होइ गोसाई। मातु चिराव कठिन की नाई।।
जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल ग्रधीर।
व्याधि नासहित जननी गनति न सो सिसु पीर।।
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।।[2]

काम, क्रोधादि से पृथक् रहकर भक्त समस्त संसार को राम मय ग्रनुभव करते हैं उनका कहना है कि जब यह जगत् तथा उत्पन्न समस्त जीव सभी उन्हीं के हैं तब वैर विरोध भी किया जाए तो किससे—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद मोह।
निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।।[3]

---

1. ग्रयो. का., 326।
2. उत्तर का. 74.3, 4।
3. वही, 112 'ख'।

भक्त के हृदय में तो काम उसी प्रकार उत्पन्न नहीं होता जिस प्रकार मेघ के लाख वरसने पर भी ऊसर भूमि में कुछ भी तिनका तक उत्पन्न नहीं पाता—

ऊपर वरषहिं तृन नहिं जामा । तिमि हरि जन हिय उपज न नकामा ।।[1]

जिस प्रकार मछली अगाध जल में ही मस्त रहती है उसी प्रकार प्रभु शरण में जाकर ही भक्त सब विघ्न-बाधाओं से मुक्त होता है—

सुखी मीन जहं नीर अगाधा । तिनि हरि सरन न एकहुँ बाधा ।।[2]

9. **भक्ति महिमा** :

ईश प्राप्ति व उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए भक्ति आवश्यक है । बिना भक्ति किये जीव सुख प्राप्त नहीं कर सकता । भक्ति से ही प्रभु शीघ्र द्रवित होते हैं—

रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ।।[3]

\+ + +

जाते वेगि द्रवउ में भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ।।[4]

भक्ति चिंतामणि के समान है । यह जिसके हृदय में बस जाती है, वह दिन-रात स्वतः ही परम प्रकाश रूप रहता है । उसे दीपक घी और बत्ती किसी की भी आवश्यकता नहीं पड़ती । उसके पास मोहमयी दरिद्रता समीप नहीं आती (क्योंकि मणि स्वयं धन रूप है) लोभ रूपी हवा उसे बुझा नहीं पाती (क्योंकि मणि स्वयं प्रकाश रूप है, वह किसी दूसरे की सहायता से प्रकाश नहीं करती) काकभुशिण्डि जी के शब्दों में देखिए—

राम भगति चिंतामनि सुन्दर । बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ।।
परम प्रकाश रूप दिन राती । नहिं कुछ चहिअ दिया घृत बाती ।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ।।[5]

उसके प्रकाश से अविद्या का प्रबल अन्धकार मिट जाता है । मदादि पतंगों का तो सारा समूह उसके समक्ष हार मान बैठता है । जिसके हृदय में यह मणि (भक्ति) बसती है, काम, क्रोध, लोभ आदि दुष्ट उसके पास तक नहीं फटकते । उसके लिए शत्रु, मित्र तथा विष अमृत हो जाता है । उस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता । बड़े-बड़े मानस-रोग, जिनके वश होकर सब जीव दुखी हो रहे हैं, उसे नहीं व्यापते । उन्हीं का इस जग में जीवन धन्य है जो इस मणि को प्राप्त करने का यत्न करते हैं—

---

1. कि. का., 15.2 ।
2. वही, 17.1 ।
3. उत्तर का., 122.7 ।
4. अर. का., 16.1 ।
5. उत्तर का., 120.1, 2 ·

प्रबल अविद्या तममिटि जाई । हरिहिं सकल सलभ समुदाई ।।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर मांही ।।
गरल सुधा सम अरि हित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ।।
व्यापहिं मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ।।
राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ।।
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सु जतन कराहीं ।।
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ।।
सुगम उपाय पाइबे केरे । नर हत भाग्य देहिं भट भेरे ।।[1]

अपने इन्हीं गुणों के कारण भक्ति की महिमा वर्णित की गई है। भक्ति-लाभ से ही मनुष्य योनि सार्थक हो सकती है । इस योनि में ही जीव अपने परम-प्रियतम से भेंट करने की साधना कर सकता है तथा उसकी शरण में जाकर ही सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है ।

10. राम-विमुख :

जीव हरि के विपरीत रहकर कदापि सुख प्राप्त नहीं कर सकता—

जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ।

\+ + +

राम बिमुख न जीव सुख पावै ।

\+ + +

बिमुख राम सुख पाव न कोई ।।[2]

\+ + +

राम बिमुख काहु न सुख पायो ।[3]

\+ + +

लोकहुँ वेद विदित कवि कहहीं । राम बिमुख थलु नरक न लहही ।।[4]

इसके अलावा जो राम का द्रोही हो उसे कहीं भी शरण नहीं मिलती--

राखि को सकहि राम कर द्रोही ।।[5]

\+ + +

बिमुख राम त्राता नहिं कोपी ।।[6]

---

1. उत्तर का., 120.3, 4, 5, 6 ।
2. वही, 122.8, 9, 10 ।
3. लंका का., 48.4 ।
4. अयो. का., 252.4 ।
5. अर. का., 2.3 ।
6. सु, का., 23.4 ।

राम विमुख व्यक्ति की सम्पत्ति और प्रभुता रही हुई भी चली जाती है। उसका पाना न पाने के समान है। ठीक वैसे ही जैसे जिन नदियों में कोई जलस्रोत न हो (अर्थात जिन्हें केवल बरसात का ही आश्रय है) वे वर्षा व्यतीत होने पर पुनः तुरन्त ही सूख जाया करती हैं। रावण से हनुमान यही बात कहते हैं —

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।।
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गए पुनि तबहि सुखाहीं।।[1]

\+ + +

राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं।[2]

वस्तुतः जीव विषयवश अपने स्वरूप को भुला बैठता है और अपनी प्रभुता का प्रदर्शन करने लगता है—

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई।।[3]

और, जहाँ वह हरि विमुख होकर विषयों के चक्कर में ही भ्रमता है, वहीं उसका जीवन क्लेशमय बन जाता है।

वस्तुतः कहना होगा कि व्यक्ति अपने कर्मानुसार बन्धन में पड़ता है। इससे निवारण हेतु हरि शरण में जाना ही श्रेष्ठकर होगा, उनसे विमुख रह कर उसकी गति नहीं।

निष्कर्ष :

इन सबके विवेचन से ज्ञात होता है कि भक्ति क्यों आवश्यक है, उसके मुख्य उपकरण क्या हैं, भक्त कैसा होना चाहिए, उसका धर्म क्या है, ईश्वर विमुख आचरण करने का क्या परिणाम निकलता है। गोस्वामी जी ने इन सबका स्वरूप स्पष्ट करते हुए बताया है कि जीवन में भक्ति तत्व आवश्यक है। भक्त अपने प्रभु के नाम गुण, हरिकथा-श्रवण इत्यादि में ही मग्न रहता है। वह जन्म-जमान्तर में प्रभु चरणानुरक्ति की ही याचना करता है। भक्ति ही उसके लिए चरम फल है।

10. मनोविज्ञानपरक सूक्तियाँ

मानव स्वभाव या उसकी मुख्य प्रवृत्ति का दूसरा नाम मनोविज्ञान है। मानव-हृदय भावों का भण्डार है। भावुक अन्तःकरण में जल-तरंगों के तुल्य ये मनोभाव प्रतिपल उदय एवं विलीन होते रहते हैं। प्रत्येक प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि में कोई न कोई भाव विद्यमान रहता है। मनोवेग मनुष्य की समस्त कार्य-प्रणाली का संचालन किया करते हैं। यही उसके सुख-दुःख के साथी होते हैं। विविध विषयों के

---

1. सु. का., 23.3।
2. अयो. का., 256.1।
3. वही, 228.1।

सम्पर्क में आने से अभिनव अनुभूतियों का आविर्भाव होता रहता है जिन्हें मनोवेग या भाव कहते हैं।

इन मनोभावों में आनन्द तथा प्रेम अपना विशेष स्थान रखते हैं। जीवन के लिए ये दोनों ही वृत्तियाँ अत्यन्त अपेक्षित एवं आवश्यक हैं। एक जीवन को जीने योग्य बनाता है, द्वितीय उसे सरसता देता है; दोनों ही स्फूर्ति, शक्ति, सुख एवं शान्ति के दाता हैं। जन्म से मृत्यु तक मनुष्य आनन्द की खोज में ही संलग्न रहता है। समस्त क्लेशों तथा त्रितापों से मुक्त होने के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहता है। कुछ गुण-अवगुण मानव में स्वतः ही प्रसूत होते हैं। यह प्रकृतिदत्त हैं जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता इत्यादि।

भाव :

भाव हृदय की एक विशेषावस्था है जिसका सम्बन्ध मन की प्रज्ञात्मक तथा क्रियात्मक अवस्थाओं में निहित है। भाव के समय जो चेतना रहती है वह उक्त दोनों मनोदशाओं की चेतना से भिन्न होते हुए भी उसकी वाहिका है। दूसरे शब्दों में प्रज्ञात्मक तथा क्रियात्मक अवस्थाओं की चेतना के अतिरिक्त जो चेतना मन में रहती है, वही भाव की अवस्था है। भाव मानसिक जीवन का निष्क्रिय एवं आत्मगत पहलू है, वह वाह्य जगत के विषय में कुछ भी व्यक्त न करके किसी व्यक्ति विशेष की मानसिक अवस्था की व्यंजना करता है।

चूँकि मानव मन भावनाओं का समुद्र है, उसके प्रत्येक कार्य के पीछे उसका अन्तःकरण लगा रहता है। दूसरे शब्दों में उसके कार्य-व्यापार को देखकर हम उसकी प्रवृत्तियों का पता लगा सकते हैं। सूक्तियों के पीछे लोक-जीवन का निरीक्षण निहित होता है इससे मानव जड़-चेतन आदि के अन्तःकरण या क्रिया-कलापों का पता लग जाता है। जीवन के व्यावहारिक सत्य के आधार पर मानव मन का विश्लेषण हम गोस्वामीजी की सूक्तियों में यत्र-तत्र देख सकते हैं। 'मानस' में व्यक्ति की प्रवृत्ति, पशु-पक्षी जन्य क्रिया-कलाप, भावनाओं का स्फुरण, प्रेम, द्वेष, ग्लानि, मद, हर्ष, शोक, लोभ, काम, क्रोध के चित्र बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित किए गए हैं। मानव स्वभाव की तो उन्होंने एक-एक जड़ पकड़ कर रख दी है, जैसे वे कोई मनोवैज्ञानिक रहे हों।

मनोविज्ञानपरक सूक्तियाँ :

इन सूक्तियों में निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार व्यक्त हुए हैं—

(1) मनुष्य कोटि।

(2) संत-असंत प्रवृत्ति।

(3) संत-असंत उत्पत्ति।

(4) गुण-अवगुण ग्राह्यता।

(5) संत लक्षण।

(6) असंत लक्षण ।
(7) संत-असंत करनी (कर्म) ।
(8) दुष्ट ।
(9) जड़ प्रवृत्ति ।
(10) कामी-लोभी प्रवृत्ति ।
(11) भक्त-प्रवृत्ति ।
(12) नारी-प्रवृत्ति ।
(13) अंग-छत हीन या क्षत शरीर--व्यक्ति प्रवृत्ति ।
(14) चोर-प्रवृत्ति ।
(15) जोंक-वृत्ति । ✓
(16) काम-वृत्ति ।
(17) समान स्वभाव-वृत्ति ।
(18) वक्र-गति ।
(19) बाल-स्वभाव ।
(20) सामान्य-विवेक । ✓
(21) धर्मशील-वृत्ति ।
(22) विरले ।
(23) समय । ✓
(24) असम्भव-कार्य ।
(25) शूरवीर ।
(26) वैर-प्रीति के पात्र ।
(27) जाति-अपमान ।
(28) खिंचाव ।
(29) पवित्र-स्नेह ।
(30) परख ।
(31) आपत्ति ।
(32) कुपंथ की ओर अग्रसर-प्रवृत्ति ।
(33) स्वार्थ ।
(34) स्व-प्रशंसा ।
(35) जीव-जागरण ।

1. मनुष्य-कोटि :

गोस्वामीजी के अनुसार संसार में तीन प्रकार के पुरुष हैं--एक तो पाटल के सदृश, दूसरे आम सदृश, तीसरे कटहल के सदृश । पाटल फूल देता है, आम फल और फूल दोनों प्रदान करता है तथा कटहल सिर्फ फल देता है, उसी तरह एक प्रकार

के व्यक्ति जो सिर्फ कहते हैं, करते नहीं; दूसरे वे जो करते भी हैं और कहते भी हैं; तीसरी श्रेणी में वे आते हैं जो सिर्फ करते ही हैं, वाणी से कुछ भी नहीं कहते।

जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महं पुरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लाग हीं।
एक कहहि कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥[1]

इसी प्रकार दीनदयाल गिरि ने भी कोमलता, कठोरता के आधार पर व्यक्तियों को तीन वर्गों में विभाजित किया है; उन्हें बेर, बादाम और अंगूर की संज्ञा दी गई है। बेर यानी बाहर से कोमल लेकिन अन्दर से कठोर, बादाम जो बाहर से कठोर एवं अन्दर से कोमल, तीसरे अंगूर की भाँति बाहर से कोमल एवं अन्दर से भी मुलायम।[2]

ऐसे व्यक्ति कम हुआ करते हैं जो दूसरों के परोपकार में ही अपना धर्म समझते हैं तथा दूसरे के उत्कर्ष को देखकर हर्षित होते हैं।[3]

इसके विपरीत जो दूसरों से सदैव द्रोह करते हैं, पराई स्त्री, पराये धन एवं पराई निन्दा में ही आसक्त रहते हैं वे पामर पापमय मनुष्य नर शरीर धारण किए हुए राक्षस हैं—

पर द्रोही परदार-रत परधन पर अपवाद।
ते नर पावर पाप मय देह धरे मनु जाद॥[4]

इस प्रवृत्ति के मनुष्य कम ही मिलते हैं जो शत्रु के सम्मुख पीठ न दिखा सकें यानी बहादुर-पराक्रमी हों तथा जो पर नारी के नयन-वाणों से नहीं बिंध पाते यानि कि संयमी होते हैं, धर्म-परायणता जिनका निजी गुण है, जिनके दरवाजे से भिक्षुक खाली हाथ नहीं लौट पाता यानी कि जो सहृदय हैं, जिनका हृदय विशाल एवं उदार है।[5]

2. संत एवं असंत प्रवृत्ति :

समाज में संत-असंत, सत-असत प्रवृत्ति के द्योतक हैं। व्यवहार में भी देखा जाता है कि सत की विजय तो अवश्य होती है पर संघर्षों के बाद दुष्ट प्रारम्भ में उन्नति करते दिखाई देते हैं पर अन्ततः उनका पतन ही होता है। उनका स्वभाव

---

1. लंका का., 90 'छ'।
2. इक बाहर इक भीतरे इक मृदु दुहु दिसि पूर।
   सोहत नर जग त्रिविध ज्यों बेर बदाम अंगूर॥ दृष्टांत तरंग, पृ. 154।
3. बाल का., 8।
4. उत्तर का., 39।
5. बाल का., 231।

तो दुष्टता पर ही तुले रहना है । उनके इस आचरण को देख कर ही गोस्वामीजी ने प्रथम उनके चरणों की वन्दना की है ताकि वे उपद्रव न कर सकें । गोस्वामीजी ने श्री राम के मुखारविन्द से सन्तों के लक्षण विस्तारपूर्वक दो स्थलों पर वर्णित कराए हैं--एक तो अरण्यकाण्ड में नारदजी के प्रश्न पर और दूसरे उत्तर काण्ड में भरतजी के प्रश्नोत्तर पर । नारद के कहने पर--हे नारद ! संतों के जिन गुणों के कारण मैं उनके वश में रहता हूँ, वे इस प्रकार से हैं ।[1] भरतजी से भी यही कहा है कि संत जिन गुणों के कारण मुझे परम प्रिय हैं वे अमुक-अमुक हैं ।[2]

3. संत-असंत उत्पत्ति :

इस संसार में संत-असंत दोनों एक ही समान पैदा होते हैं, परन्तु स्वभाव के कारण दोनों के आचरण विपरीत रहते हैं । इनकी तुलना कमल और जोंक से की जा सकती है जो उत्पन्न तो जल में ही होते हैं, परन्तु आचरण अलग-अलग हैं । दोनों के मिलन में अन्तर है परन्तु प्रभाव अलग-अलग । संत बिछुड़ने पर हृदय को पीड़ा देता है और असन्त मिलने पर । कमल दर्शन स्पर्श से सुख देता है, परन्तु जोंक शरीर का स्पर्श पाते ही खून चूसने लगती है ।

उपजहिं एक संग जग मांही । जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ।।[3]

\+ + +

सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग जलधि अगाधू ।।[4]

\+ + +

बिछुरत एक प्रान हर लेंही । मिलत एक दारुण दुख देहीं ।।[5]

4. गुण-अवगुण ग्राह्यता :

सुमति-कुमति की भाँति संतत्व और खलत्व प्रत्येक हृदय में विराजमान रहता है । जहाँ सन्तत्व की प्रधानता हो वहाँ सच्ची समृद्धि है, जहाँ खलत्व की प्रधानता है वहाँ विपत्ति है—

सुमति कुमति सबके उर रहहीं । नाथ पुरान निगम अस कहहीं ।।
जहाँ सुमिति तह सम्पत्ति ताना । जहाँ कुमति तहं विपत्ति निदाना ।।[6]

मनुष्य में जड़त्व और चेतनत्व तन और आत्मा—दोनों का ही मेल है । यदि जड़त्व की प्रधानता हुई तो आसुरी या खलत्व की प्रवृत्ति जागेगी । इसके

---

1. उत्तर का., 45 ।
2. वही, 37 ।
3. बाल का., 5.3 ।
4. वही ।
5. वही, 5.2 ।
6. सु. का., 40.3 ।

विपरीत यदि चेतनत्व प्रबल हुआ तो दैवी प्रवृत्ति या संतत्व प्रकृति उत्पन्न होगी। चेतनत्व की प्रधानता वाला व्यक्ति प्रत्येक प्राणी में अपनी ही प्रतिच्छाया देखने लगता है। पर उपकार ही उसका सहज स्वभाव बन जाता है। दूसरों के गुणों पर ही दृष्टि टिकती है। इसके विपरीत खलत्व की प्रधानता युक्त प्राणी दूसरों के दोषों को ही ताकता रहता है।

गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीकतेहि सोई ।।[1]

\+ + +

जड़ चेतन गुन दोष मय विस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परि हरि वारि विकारि ।।[2]

अपने-अपने स्वभाव के अनुसार दोनों की मनोवृत्तियाँ भी उसी ढंग की बन जाती हैं।[3] जो भी इनके सम्पर्क में आता है, प्रभावित हुए बिना नहीं रहता--

हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेद विदित सब काहू ।।[4]

बुद्धिमान लोग कुसंग से दूर ही रहते हैं--

बुध नहि करहिं अधम कर संगा।[5]

संत-असंत अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही कार्यरत रहते हैं। सज्जन का कार्य परोपकार है और दुर्जन का अनिष्टकारक। दोनों अपने स्वभाव से बँधे हुए हैं। वे अपना स्वभाव छोड़ने में उसी प्रकार असमर्थ हैं जिस प्रकार अमृत एवं जहर। अमृत का कार्य अमरता प्रदान करना है जबकि जहर का प्राण हरण। इस तथ्य को गोस्वामीजी ने इस प्रकार व्यक्त किया है--

भलौ भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु ।।[6]

5. संत-लक्षण :

वेदों और श्रुतियों में संतों की महिमा का खूब बखान किया गया है। गोस्वामी जी ने अपने 'मानस' में संतों के कुछ लक्षण इस प्रकार दिए हैं—

षट विकार जित अनघ अकामा। अकल अकिंचन सुचि सुखधामा ।।
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कवि कोविद जोगी ।।
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्मगति परम प्रवीना ।।

---

1. बाल का., 5.5।
2. वही, 6।
3. वही, 7.4।
4. वही।
5. उत्तर का., 106,7।
6. बाल का., 5।

गुनागार संसार दुख रहित विगत संदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ।।[1]

अर्थात् संत काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर, इन छह विकारों से परे पापरहित, कामना-रहित, स्थिर बुद्धि युक्त, सर्वत्यागी, शुद्धतायुक्त (जिनका अन्तःकरण एवं बाह्य आकार दोनों ही शुद्ध हों), सुखप्रद, ज्ञानवान, सत्यनिष्ठ, विद्वान, योगी, दूसरों को सम्मानित करने में तत्पर, अभिमान-रहित, धैर्यवान, धर्म-ज्ञान और आचरण में अत्यन्त निपुण गुणों के सागर, दुखों के फेर से मुक्त तथा सन्देहों से सर्वथा दूर रखने की प्रवृत्ति से युक्त होते हैं। वे हरिभक्त होते हैं। घर और शरीर की अपेक्षा प्रभु चरणों में ही अनुरक्त रहते हैं।

वे दूसरों के गुण-श्रवण पर हर्षित हो उठते हैं एवं अपनी प्रशंसा पर सहम जाते हैं। वे न्यायी, समतायुक्त, शान्त, सरल और सभी से स्नेह रखने वाले होते हैं—

निज गुण श्रवन सुनत सकुचाहीं । पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ।।
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ।।[2]

संत विषयों में लिप्त नहीं हुआ करते । वे दूसरों के सुख से सुखी तथा दुख से दुखी हो उठते हैं। मन वचन कर्म से निष्कपट हो भक्तिरत रहते हैं। वे किसी को कठोर वचन नहीं बोलते, निन्दा–स्तुति दोनों में सम रहते हैं, प्रभु एवं ब्राह्मण चरणों में उनकी अनुरक्ति होती है—

विषय अलम्पट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ।।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी । लोभाभरष हरष भय त्यागी ।।
कोमल चित दीनन्ह पर दाया । मन वच क्रम मम भगति अभाया ।।
सबहि भानुप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम सम ते प्रानी ।।
विगत काम मम नाम परायन । सांति विरति बिनती मुदितायन ।।
सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष वचन कबहू नहिं बोलहिं ।।
निंदा-अस्तुति उभय मम ममता मल पदकंज ।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुन मंदिर सुख पुंज ।।[3]

संतों का हृदय मक्खन की भाँति द्रवणशील होता है। मक्खन अपने ताप से पिघलता है लेकिन संत दूसरों के दुखों से । वे परोपकारार्थ ही जन्म लेते हैं—

---

1. अर. का., 45.4, 5 ।
2. वही, 46 1 ।
3. उत्तर का., 38.1, 2, 3, 4 ।

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह पर कहै न जाना ।।
निज परताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ।।
संत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी ।।[1]

संत जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम में लीन रहते हैं। वे श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, प्रसन्नता, वैराग्य, विवेक, विनय, दया आदि गुणों से युक्त होते हैं। वे दम्भ, अभिमान, मद आदि से रहित होते हैं तथा कुमार्ग से बच कर निकलते हैं। सदा परोपकार-रत रहने वाले ऐसे संतों के गुणों का बखान वेद और सरस्वती भी नहीं कर पाते। स्वयं श्रीराम ने संतों का बखान इस प्रकार किया है--

जप तप व्रत दम संजम नेमा। गुरु गोविन्द विप्र पद प्रेमा ।।
श्रद्धा क्षमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया ।।
विरति विवेक विनय विग्याना। बोध जथारथ वेद पुराना ।।
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहि कुमारग पाऊ ।।
गावहि सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रतसीला ।।
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन ऐते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ।।[2]

संत ही सच्चा मित्र हो सकता है क्योंकि मित्रता का अर्थ ही है अपने स्वार्थ की अपेक्षा अपने मित्र के स्वार्थ को अधिक प्रश्रय देना। संत ही सच्चा भक्त हो सकता है क्योंकि वह सदैव परोपकार करता है—

उमा संत की यही बड़ाई। मन्द करत जो करै भलाई ।।[3]

संत सबकी पीड़ा को वहन करता है ठीक उसी प्रकार जैसे पर्वत बूँदों के आघात को—

बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन संत सहि जैसे ।।[4]

संत की विलक्षणता यही है कि वह दुष्टों के वचन बाण को सहकर भी उनके प्रति आक्रोश व्यक्त नहीं करता।

संत कपास के समान होता है। जिस प्रकार कपास अनेक यातनाओं को (ओटाई, बुनाई, धुलाई) सहता हुआ वस्त्र के रूप में तैयार होकर दूसरों के गोपनीय अंगों को ढाँकता है, ठीक उसी प्रकार संत स्वयं अनेक दुख सहन कर, दूसरों के छिद्रों (दोषों) को ढकता है। कपास जिस प्रकार नीरस, विशद परन्तु गुणकारी है, संत भी उसी प्रकार विषयासक्ति से रहित होने के कारण नीरस, पाप से रहित होने की बजह से विशद परन्तु परोपकारी होने से वन्दनीय हैं।

---

1. उत्तर का., 125.4, 3।
2. अर. का., 46.2, 3, 4 :
3. सु. का., 41.4।
4. किष्कि. का., 14.2।

साधु चरित सुभ चरित कपासू । निरस बिसद गुन मय फल जासू ।।
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा । बन्दनीय जेहि जग जस पावा ।।[1]

6. असंत-लक्षण :

सन्तों के लक्षण बताने के बाद श्रीराम ने असन्तों के लक्षण बताते हुए कहा है कि इनका संग सर्वदा ही अहितकर होता है। उनकी संगति से व्यक्ति वैसे ही बिगड़ जाता है जैसे हरहाई (बुरी जाति की) गाय के सान्निध्य से कपिला (सीधी) गाय।[2]

दुष्ट अपनी दुष्टता के दावानल में ही निरन्तर जलते-भुनते रहते हैं। जब किसी के यहाँ बुरी खबर या विपत्ति पड़ते देखते हैं तो वे ऐसे प्रसन्न होते हैं मानों कुबेर ने सारी निधि इन्हें ही दे डाली हो। इसके विपरीत कहीं किसी के उल्लास या मंगलाचार के अवसर देखते हैं तो ईर्ष्यावश उनका ताप इतना चढ़ जाता है मानों उन्हें तेज बुखार आ गया हो—

खलन्ह हृदय अतिताप बिसेषी । जरहिं सदां पर संपत्ति देखी ।।
जहं कहुं निन्दा सुनहि पराई । हरषहि मनहु परीनिधि पाई ।।
जो काहू के सुनहिं बडाई । स्वांस लेत जन जूड़ी आई ।।
जब काहू के देखहि बिपती । सुखी भए मानहु जग नृपती ।।[3]

असंत काम, क्रोध, मद, लोभ, कपट, निर्दयता, कुटिलता आदि अवगुणों से युक्त होते हैं। ऐसे व्यक्ति सतयुग, त्रेता युग और द्वापर युग में तो कम मिलेंगे लेकिन कलियुग में इनका पूरा परिवार ही आ बसेगा—

काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ।।
बयरु अकारन सब काहू सों । जो कर हित अनहित ताहू सो ।।
ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेतां नाहिं ।।
द्वापर कछुक वृन्द बहु होइहहिं कलि जुग माहिं ।।[4]

गोस्वामी जी ने दुष्टों की मनोवृत्ति को अच्छी तरह परखकर उन्हें नमस्कार किया है, ताकि वे कोई उपद्रव न खड़ा कर बैठें। क्योंकि यह उनकी प्रवृत्ति है कि वे अपनी प्रशंसा होने पर बड़े खुश होते हैं। वे बिना ही प्रयोजन अपना हित करने वाले के प्रति भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों के हित की हानि ही इनकी दृष्टि में लाभ है। इन्हें दूसरों के उजड़ने में हर्ष और उनके बसने में विषाद होता है। वे विष्णु द्रोही होते हैं; दूसरों की बुराई करने में सहस्रबाहु के समान वीर होने के

---

1. बाल का., 2.3।
2. उत्तर का., 39.1।
3. वही, 39.2/40.1, 2।
4. वही, 39.3/40।

साथ-साथ दूसरों के दोषों के देखने के लिए हजारों नेत्र वाले बन जाते हैं एवं सदैव कठोर वचन बोलने में इन्हें सुख की अनुभूति होती है।

बहुरि बंदि खलगन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
परहित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरें हरष विषाद बसेरे॥
हरिहर जस राकेश राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केतु सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥
वचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहस नयन परदोस निहारा॥
उदासीन अरि मीति, हित सुनत जरहि खल प्रीति॥[1]

इतना ही नहीं दूसरों के अहित में ही इन्हें अपना हित दिखाई देता है भले ही इससे उन्हें विनष्ट ही क्यों न होना पड़े, जैसे मक्खी और ओला। ओला खुद तो नष्ट होता ही है साथ ही सारी फसल को भी खराब कर जाता है। ऐसे ही मक्खी स्वयं तो मरती ही है साथ ही उस वस्तु को भी त्याज्य कर जाती है जिसमें वह पड़ती है—

पर अकाजु लगि तनु परि हरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलगरहीं॥
जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिन्ह के मन माँखी॥[2]

कौनसा स्वार्थ है उन ओलों का, जो कि आकाश को त्याग कर फसल का जबरदस्ती नुकसान करने हेतु नीचे आ उतरते हैं। इस कार्य में चाहे स्वतः ही उनको गलकर नष्ट क्यों न होना पड़े। यह है सच्चा खलत्व !

ऐसे मनुष्य व्यर्थ ही जीवन को नष्ट करते हैं—

परद्रोही परदार रत परधन पर अपवाद।
ते नर पांवर पापमय देह धरे मनुजाद॥[3]

7. संत-असंत कर्म (करनी) :

संत एवं असन्त के आचरण एक-दूसरे के विपरीत हैं। गोस्वामीजी ने इनके आचरण को चन्दन और कुल्हाड़ी सदृश बताया है। जो कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है, वही चन्दन अपने सत्-स्वभाव के कारण उसे सुगन्धित कर देता है (कुल्हाड़ी का कार्य वृक्षों को काटना है तथा चन्दन का कार्य सुवासित करता)। चन्दन इसी गुण के कारण देवताओं के सिर पर चढ़ाया जाता है और गौरव पाता है। लेकिन कुल्हाड़ी की अन्त में यही गति बनती है कि उसे अग्नि में तपा कर घन से पीटा और जाता है—

---

1. बाल का., 4.1, 2, 3, 6।
2. वही, 4.4, 2।
3. उत्तर का., 39।

संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगन्ध बसाई ।।
ताते सुर सीसन्ह चढ़त जगवल्लभ श्री खण्ड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दण्ड ।।[1]

लगता है गोस्वामीजी ने यह सब क्रिया-कलाप (ओला, मक्खी, चन्दन, कुल्हाड़ी आदि) बड़े गौर से देखा होगा और तब कहीं उसे मानव-स्वभाव पर आरोपित किया होगा। दुष्टों के सम्बन्ध में कही गई यह उक्ति उनके व्यापक जीवनानुभव की सूचक प्रतीत होती है—

वरु मल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग नहिं देहि बिधाता ।।[2]

उन्हें नरक का वास मंजूर है, लेकिन दुष्टों का संग नहीं।

8. **दुष्ट (नीच)** :

वस्तुतः व्यक्ति जन्म से नीच नहीं होता अपने कर्मवश ही वह नीच बन जाता है। उसे जब बुरे कार्यों के लिए ताड़ना नहीं दी जाती वह सन्मार्ग पर नहीं आता—

काटेहि पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच ।
विनय न मान खगेस सुन डाटेहि पइ नव नीच ।।[3]

जिस प्रकार काकेरला बार-बार के काटे जाने पर ही फलता है, उसी प्र दुष्ट भी बार-बार डाटे जाने पर ही नम्र होता है तथा सही रास्ते पर आता है।

दुष्ट का सीमा से अधिक विनम्र होना भी घातक है। अतिशय नम्रता में कोई न कोई राज छिपा रहता है। वह उसी प्रकार दुखदाई हो सकती है जिस प्रकार अंकुश, धनुष, सांप और बिल्ली का अधिक झुके रहना।

दुष्ट की मीठी वाणी भी उसी प्रकार भयदायक होती है जिस प्रकार बिना ऋतु के फूल —

नवनि नीच के अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ।।
भयदायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ।।[4]

रावण का मारीच के आगे नतमस्तक होना उक्त सूक्ति का प्रेरक कारण है। वह दशानन, जिसकी धाक सर्वत्र जमी हुई थी, मारीच के घर जाकर नतमस्तक होता है। उसकी यह करतूत देखकर मारीच को आश्चर्य होता है। इसी प्रसंग में यह उक्ति कही गई है।

---

1. उत्तर का., 37.4 ।
2. सु. का., 46.4 ।
3. वही, 58 ।
4. अर. का., 24.4 ।

9. जड़-प्रवृत्ति :

कुछ व्यक्ति इतने जड़ (मन्द बुद्धि) होते हैं कि उन्हें लाख समझाया-बुझाया जाए पर समझ में नहीं पैठता। अच्छे से अच्छा गुरू भी मिले तब भी वे जड़ बने रहते हैं। अज्ञान उनका पीछा ही नहीं छोड़ता। ऐसे लोगों के लिए गोस्वामीजी ने कहा है--

फूलइ फरइ न बेंत जदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं विरंचि सम ।।[1]

यहाँ मूर्ख की उपमा बेंत के पेड़ से दी गई है। उसमें चाहे जितना पानी क्यों न पड़ जाए लेकिन वह नहीं फलता-फूलता।

दूसरी श्रेणी के व्यक्ति वे होते हैं जो ठोक-पीटकर सुधार लिये जाते हैं। नीच को जितना डाँट कर रखा जाएगा, उतना ही वह सही रास्ते पर आएगा। गोस्वामीजी ने इसके लिए अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है—जैसे केला करोड़ों यत्न करिए वह काटने पर ही फलेगा, बिना काटे नहीं, वैसे ही नीच (मूर्ख) विनय से नहीं, डाँट-फटकार से ही मानता है। समुद्र के संदर्भ में कही गई यह सूक्ति द्रष्टव्य है—

काटेहि पइ कदरी फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेस सुनु, डाटेहि पइ नव नीच ।।[2]

इसीलिए उन्होंने आगे यह कह दिया--

गगन समीर अनल जल धरनी। इनकी नाथ सहज जड़ करनी ।।

\+ + +

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ।।[3]

इन सबकी करनी जड़ता-युक्त ही होती है। पशु, अग्नि, पृथ्वी, पवन, शूद्र और इनके साथ युक्त नारी को भी ताड़ते (नियन्त्रण में रखने) रहना चाहिए, क्योंकि बिना नियन्त्रण के इनके उदण्ड बन जाने की आशंका रहती है।

10. **कामी-लोभी प्रवृत्ति :**

कामी को सदैव नारी प्रिय है तथा लोभी को पैसा--

कामिहि नारि प्रियारि जिमि। लोभहि प्रिय जिमि दाम ।।[4]

काम नारी के बल पर इठलाता है तो लोभी दाम के बल पर। दोनों सदैव भयभीत रहते हैं। वे इसी तरह डरते से रहते हैं जिस प्रकार कुत्ता शेर को देखकर

---

1. लंका का., 16 'ख'।
2. सु. का., 58।
3. वही, 59.1, 2।
4. उत्तर का., 130 'ख'।

भाग खड़ा होता है, क्योंकि वह सोचता है कि शायद सिंह मेरी हड्डी न छुड़ा कर ले भागे, इसी प्रकार लोभी सोचता है कोई मेरा पैसा न छीन ले और कामी विचार करता है कोई मेरी कामोद्दीपक वस्तु (नारी) को न हथिया ले।

उक्त तथ्य की पुष्टि गोस्वामी जी ने 'नारद तपस्या' पर इन्द्र की मनोवृत्ति के सन्दर्भ में इस प्रकार की है--

वे कामी लोलुप जग मांही। कुटिल काक इव सर्कहिं डेराहीं ।।
सूख हाड़ ले भाग सठ स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुर पतिहिं न लाज ।।[1]

11. भक्त प्रवृत्ति :

भक्त-प्रभु चरणों में अनुराग के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता। वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इत्यादि को भी हेय समझता है। सदैव जन्म-जन्मान्तर में प्रभु चरणों में प्रीति रखना ही उसका अभीष्ट है--

धर्म न अर्थ न काम रुचि गति न चहूँ निरवान।
जनम जन्म रति राम पद यह वरदानु मोहि आन ।।[2]

उसके हृदय में काम-वासनाएँ अपनी क्रीड़ा केलि नहीं दिखा पातीं। जिस प्रकार ऊसर भूमि पर पानी बरसने पर भी कुछ उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार हरिभक्त के हृदय में कामादि भाव उत्पन्न नहीं होते--

ऊषर वरसहिं तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा ।।[3]

12. नारी प्रवृत्ति :

नारी वर्ग में पुरुष वर्ग की अपेक्षा कुछ निजी गुण होते हैं जिनके कारण वह नारी की संज्ञा पा सकी है। यहाँ लिंग-भेद के कारण ही नर-नारी नहीं माने जाते, कुछ विशेष गुणों के कारण भी पुरुष को कभी-कभी नारी एवं नारी को पुरुष गुणों से सम्बोधित कर दिया जाता है। मर्द होते हुए भी कोई नारी की संज्ञा पा जाता है और नारी होते हुए भी कोई मर्दानगी दिखा जाती है। कोमलता, सहृदयता, भीरुपन, लज्जा, अज्ञानता, चपलता आदि स्त्रियोचित हैं। गोस्वामीजी ने नारी के आठ अवगुणों की भी चर्चा की है। साहस, झूठ, चंचलता, माया, भय, अविवेक, अपवित्रता और निर्दयता ये आठ अवगुण हैं--

नारि स्वभाव सत्य सब कहहीं। अवगुण आठ सदां उर रहहीं।
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया ।।[4]

---

1. बाल का., 125.4।
2. अयो. का., 204।
3. किष्कि. का., 15.5।
4. लंका का., 16.2।

रावण-मन्दोदरी वार्ता के दौरान कथित उक्त सूक्ति अक्षरशः सत्य नहीं प्रतीत होती ।

13. अंग-हीन या क्षत-शरीर व्यक्ति-प्रवृत्ति :

प्रायः देखा गया है कि अंग-विहीन या क्षत-शरीर व्यक्ति अपने में कोई न कोई विशेषता लिये हुए होते हैं । वे प्रेमी, क्रोधी, कामी, पेटू-चिड़चिड़े आदि किसी एक प्रवृत्ति में रत होते हैं । कैकेई ने इन्हें 'कुटिल-कुचाली' कहा है । राम राज-तिलक के प्रसंग पर अपनी दासी मंथरा से यह कह कर कि काने, लंगड़े, कुबड़े अधिक कुटिल और कुचाली होते हैं, उनमें भी स्त्री और वह भी दासी हो । देखिए—

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय विशेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ।.[1]

14. चोर-वृत्ति :

मनुष्यों में भी वृत्ति विशेषानुसार विभिन्नता पाई जाती है । काम वृत्ति, चोर वृत्ति, संतवृत्ति आदि से युक्त मनुष्य की कोटियाँ विद्यमान हैं । गोस्वामी जी ने चोर के विषय में कहा है कि उसे चाँदनी रात पसन्द नहीं होती क्योंकि वह उसके लक्ष्य में बाधक है । चोर सदैव अंधेरी रात में ही शिकार की तलाश (चोरी करने) में निकलता है––

चोरहि चंदिनि रात न भावा ।।[2]

राम-राज्यतिलक की तैयारी के प्रसंग पर प्रयुक्त यह सूक्ति कथन को प्रभावक बनाती है । देवताओं को यह तैयारी रुचिकर नहीं (जिस प्रकार चोर को चाँदनी रात प्रिय नहीं) क्योंकि वह उनके लक्ष्य में (उद्धार में) बाधक है । रामावतार का हेतु राज्य भोग नहीं बल्कि दुष्ट दमन था । इसीलिए देवों को यह नहीं भा रहा ।

15. जोंक-वृत्ति :

जोंक की चाल विपरीत होती है । यद्यपि जल समान सतह पर स्थिर है, उसकी गति समान है लेकिन जोंक उसमें टेढ़ी चाल ही चलती है । इसमें दोष जल का नहीं जोंक प्रवृत्ति का है –

चलइ जोंक जल वक्र गति यद्यपि सलिलु समान ।[3]

यह कथ्य बिलकुल सत्य है । आज भी उसका उतना ही मूल्य है, वह अपनी प्रवृत्ति बदलने में असमर्थ है ।

---

1. अयो. का., 14 ।
2. वही, 11.4 ।
3. अयो. का., 42 ।

राम-वन-गमन के सन्दर्भ में यह सूक्ति बड़ी मार्मिक बन पड़ी है। यहाँ कैकेई की दुर्बुद्धि की ओर संकेत किया गया है (जोंक का उदाहरण देकर) राम-वचन उसे अप्रिय लग रहे हैं।

16. **काक-वृत्ति** :

कुछ जीव संगति का लाभ नहीं उठा पाते। मूर्ख को कितना ही समझाओ वह ज्ञानी नहीं बन सकता। कौवे को कितना ही लाड़-प्यार से रखो, शाकाहारी भोज्य खिलाओ, लेकिन वह माँस-भक्षण नहीं छोड़ सकता--

बायस पलिअहि अति अनुरागा। होइ निरामिष कबहुकि कागा ।।[1]

यह सत्य है कि कौवा अपने स्वभाव में परिवर्तन नहीं कर पाता। आज के सन्दर्भ में भी यह कथ्य एकदम खरा उतरता है।

संत-असंत वन्दना के प्रसंग में गोस्वामी जी द्वारा कही गई उक्त सूक्ति कथन को पुष्टिकारक बना रही है।

17. **समान स्वभाव-वृत्ति** :

समान-प्रवृत्ति वालों की ही आपस में खूब बना करती है। प्रत्येक स्वजाति को ही पसन्द करता है। पशु पशुओं के बाड़े में बँधकर ही अपने को खुश-मिजाज समझता है तो पक्षी पक्षियों के साथ विहार कर प्रफुल्लित रहता है। मनुष्य भी स्वजाति को देखकर ही हर्षित होता है। प्रत्येक अपनी-अपनी भाषा को ही प्राथमिकता देता है तथा उसे सहज रूप से समझ पाने में समर्थ होता है। गोस्वामी जी ने काकभुशुण्डि-गरुड़ प्रसंग में कहा है—

समुझइ खग खग ही कै भाषा।[2]

18. **वक्र-गति** :

देखने में आता है कि जो व्यक्ति सीधा होता है वह हमेशा ठगा जाता है। कहीं-कहीं अत्यन्त सीधापन भी बड़ा मँहगा पड़ जाता है। सब लोग टेढ़े यानि तेज व्यक्ति की ही वन्दना करते हैं ताकि वह उपद्रव न मचा सके। व्यक्तियों की तो क्या ग्रह भी इसके अपवाद नहीं। राहू वक्र चन्द्रमा पर हावी नहीं होता; जब वह सीधी स्थिति (पूर्णिमा) में होता है तभी राहू उस पर धावा बोलता है।

टेढ़ न जानि सब बंदइ काहू।
वक्र चन्द्रमहि ग्रसहि न राहू ।।[3]

---

1. बाल का., 5.1।
2. उत्तर का., 62.5।
3. बाल का., 281.3।

19. **बाल-स्वभाव** :

बाल-स्वभाव बड़ा जिद्दी, चुलबुला, तुनकमिजाज़ आदि प्रवृत्ति युक्त होता है। बालक जिस बात की जिद्द पकड़ लेता है उसे पूरी करके ही हटता है। इस प्रसंग में गोस्वामी जी ने बर्र और बालक का एक सा स्वभाव बताया है। यदि बर्र को छेड़ोगे तो वह कस कर चिपट जाएगा। बालक भी जब कुपित हो जाता है, वह बर्र की भाँति पीछे पड़ जाता है और जब तक वह संतुष्ट नहीं हो जाता तब तक शान्त नहीं होता। सन्तों का स्वभाव यह है कि वे इन्हें छेड़ते नहीं।

बररे बालक एक सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ॥[1]

20. **सामान्य विवेक** :

मनुष्य योनि सब योनियों में श्रेष्ठ योनि मानी जाती है। यह बात वेद, शास्त्र, लोक तीनों ही के द्वारा पुष्ट है—

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ मुनि ग्रन्थन गावा॥[2]

मानव शरीर तो देवताओं को भी दुर्लभ है। प्रत्येक चेतन को कुछ सामान्य ज्ञान सहज रूप से प्राप्त है। यह ईश्वर प्रदत्त है। जब पशु-पक्षी भी अपना हित-अहित पहचान सकते हैं तब मनुष्य तो सर्वश्रेष्ठ बुद्धि प्रदत्त प्राणी है। वह तो अवश्यमेव बुद्धिमान होना चाहिए। गोस्वामीजी ने एक स्थल पर मंथरा के मुख से यह उक्ति कहलवाई है जो कितनी मनोवैज्ञानिकता युक्त है—

का पूछहु तुम अबहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना॥[3]

\+ \+ \+

हित अनहित पसु पच्छिहु जाना। मानुष तनु गुन ज्ञान निधाना॥[4]

यहाँ 'का पूछहु तुम अबहु न जाना' कैकेई के लिए सम्बोधित कर कहा गया है। मंथरा को यही खेद है कि जब पशु-पक्षी तक अपना भला-बुरा पहचान जाते हैं तब तुम इतने पर भी ज्ञात नहीं कर सक रही हो कि श्रीराम को युवराजत्व प्रदान करने का क्या प्रयोजन है?

उक्त सूक्ति इस मनोविज्ञान को प्रकट करती है कि पशु-पक्षी 'शत्रु-मित्र' आदि को स्वतः ही पहचान जाते हैं जिनसे उन्हें भय होता है। वे उसके पास तक नहीं फटकते और जिनसे वे भय रहित होते हैं, उनके हाथ से दाना आदि उठाकर खा लेते हैं। फिर पशु की तुलना में मनुष्य तो विवेकशील प्राणी माना गया है; उसे अपने-पराये, हानि-लाभ, हित-अहित का भान होना ही चाहिए।

---

1. बाल का., 279.2।
2. उत्तर का., 43.4।
3. अयो. का., 19.1।
4. वही, 264.2।

21. धर्म-शीलव्रती :

हजारों में से कोई एक धर्मधारी यानि धर्म-व्रत धारण करने वाला होता है ।[1] धर्मयुक्त व्यक्ति के पास सब गुण सुख-सम्पत्ति आदि निष्काम भाव से ऐसे ही आते चले जाते हैं जिस प्रकार समुद्र में नदियों का जल—

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं । यद्यपि ताहि कामना नाहीं ।।
तिमि सुख सम्पति बिनहि बोलाए । धरम सील पहि जाहि सुभाए ।।[2]

लेकिन जिसका प्रभु-चरणों में अनुराग होता है वही ज्ञानी, गुणी, पण्डित, दानी, पृथ्वी का भूषण, एवं धर्मपरायण माना जाता है—

सोई सर्वग्य गुनी सोइ ग्याता । सोइ महि मंडित पंडित दाता ।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता । राम चरन जाकर मन राता ।।[3]

22. विरले :

विरले से तात्पर्य है कोई-कोई, दूसरे शब्दों में पहुँचा हुआ—जो लोक द्रष्टव्य एवं सामान्य हो । संसार में बहुत ही कम व्यक्ति ऐसे हैं जो निःस्वार्थ सेवा करते हैं, जो किसी के दिल को ठेस नहीं पहुँचाते, जो सबका यथोचित सत्कार करते हैं, जिनके द्वार से भिखारी कभी खाली नहीं लौटता, जो परोपकार में अपना जीवन तक होम देते हों, जिनको काम, क्रोध, लोभ, मोह न सता पाया हो, जो पर-स्त्री की दृष्टि से अछूते रह पाए हों, जिन्होंने मैदान में पीठ दिखाकर भागना न सीखा हो, सबसे अधिक जो राम-भक्ति में लीन हों । ऐसे विलक्षणता युक्त प्राणी विरलों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं । मानव शरीर तो प्रत्येक ने धारण किया है परन्तु मनुष्यता विरलों में ही होती है । गोस्वामी जी ने 'मानस' में ऐसे बिरलों का गुणानुवाद किया है––

जिन्ह के लहहिं न रिपु रन पीठी । नहिं पावहिं पर तिय मनु डीठी ।।
मंगल लहहिं न जिन्ह के नाहीं । ते नर बर थोरे जग माहीं ।।[4]
नर सहस्र महुँ सुनहु पुरारी । कोउ एक होय धर्म ब्रत धारी ।।
धर्म सील कोटिक मंह कोई । विषय विमुख विराग रत होई ।।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई ।।
ग्यान वंत कोटिक मंह कोऊ । जीवन मुक्त सुकृत जग सोऊ ।।
तिन्ह सहस्त्र महुँ सब सुख खानी । दुर्लभ ब्रह्म लीन विग्यानी ।।
धर्म सील विरक्त अरु ज्ञानी । जीवन मुक्त ब्रह्म पर प्रानी ।।

---

1. उत्तर का., 54.1 ।
2. बाल का., 294.1, 2 ।
3. उत्तर का., 127.1 ।
4. बाल का., 231.4 ।

सवते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गति मद माया।।[1]

कुछेक ही धर्मरत प्राणी होते हैं जिन्हें सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो पाया हो, ऐसे व्यक्ति ज्यादा नहीं हुआ करते। जो हितकारी वचन सुनने की क्षमता रखते हों चाहे वे वचन कटु ही क्यों न हों, ऐसे मनुष्य भी कम होते हैं।

वचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहि जे कहहि ते नर प्रभु थोरे।
प्रियवानी जे सुनहि जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जस अहहीं।।[2]

जो उपदेशानुसार स्वयं आचरण कर पाए हों, ऐसे भी विरले कहे गए हैं—

पर उपदेश कुशल वहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न वनेरे।।[3]

23. समय :

'समय' शब्द नीति काव्यों में दो अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। एक तो समय का अति प्रचलितार्थ है—वक्त। जैसे समय का अपव्यय उचित नहीं। इस सम्बन्ध में एक विद्वान का कथन है, "समय उस भागते भूत के समान है जिसके बाल आगे हैं, पीछे नहीं। अतः भागने पर पीछे हाथ नहीं आता।" दूसरा अर्थ है—अवसर। जैसे समय आने पर काम अपने आप हो जाएगा। अवसर भी दो प्रकार का है—सुअवसर और कुअवसर। कुसमय पर कुछ नहीं करना चाहिए लेकिन उचित समय के उपयोग पर वल देना चाहिए।

अवसर के हाथ से निकल जाने पर पछताना व्यर्थ है। इन्सान को अवसर पर नहीं चूकना चाहिए। अवसर की वात का ध्यान रख कर चाहे जो क्रिया कर बैठना, असंगत होने के साथ-साथ धिक्कारने योग्य वात है; जैसा कि वृन्द कवि ने कहा है—

नीकी पै फीकी लगे विनु अवसर की बात।
जैसे वरनत युद्ध में रस शृंगार न सुहात।।

गालियाँ शादी के पर्व पर ही शोभनीय हैं, हर वक्त नहीं। यदि अवसर खो दिया तो व्यर्थ के पछताने से भी क्या लाभ ? गोस्वामी जी का यह कथन कितना मर्मभेदी है—

का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चुकें पुनि का पछताने।।
तृषित करि विनु जो तुम त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तड़ागा।।[4]

---

1. उत्तर का., 54.1, 2, 3, 4।
2. लंका का., 9.5, 4।
3. वही, 78.1।
4. बाल का., 261.2, 1।

यह कथन जीवन के व्यापार में खरा उतरता है । जब खेती ही सूख गई तब वर्षा हुई तो क्या लाभ ? ऐसे ही जब पानी का प्यासा छटपटा कर प्राण त्याग दे तो मरने पर ग्रमृत के तालाब का उसके लिए क्या प्रयोजन ?

एक समय में एक ही कार्य संभव है । मुँह फुलाना ग्रौर ठहाका मार कर हँसाना एक साथ संभव नहीं । कैकेई का 'वर माँगने के संदर्भगत' दशरथ से यह कहना—

दुइ कि होहि एक समय भुग्राला । हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ।।[1]

समीचीन प्रतीत होता है।

24. ग्रसंभव कार्य :

कुछ कार्य करणीय तथा कुछ ग्रकरणीय होते हैं । हर पक्ष के दो पहलू हैं, जैसे––शुभ-ग्रशुभ, हानि-लाभ—इसी प्रकार संभव एवं ग्रसंभव कार्य भी होते हैं । जो सहज में हो जाए वह संभव तथा जो किसी भी हालत में फलप्रद न हो सके, वह ग्रसंभव माना गया है ।

इसके साथ ही कुछ कार्य व्यक्तिपरक भी होते हैं जो व्यक्ति विशेप से ही सम्बन्ध रखते हैं । यह लोक-सम्मत तथ्य है कि सेवक स्वामी से बढ़कर नहीं चल सकता, लोभी कभी घाटे में नहीं रह सकता । यह भी सत्य है कि शराबी, जुग्रारी, व्यभिचारी समाज में निन्दनीय रहे हैं, ग्रगर यह सब ग्रपने स्वार्थ की सिद्धि साधते हुए भी लाभाकांक्षा रखें तो व्यर्थ है । गोस्वामीजी की निम्नलिखित सूक्ति इन्हीं भावों को व्यक्त करती है—

सेवक सुख चह मान भिखारी । व्यसनी धन सुभ गति व्यभिचारी ।
लोभी जसु चह चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ।।[2]

भिखारी ग्रपना ग्रात्म-सम्मान खोकर ही दर-दर भटकता है जहाँ उसे दुतकार-पुचकार दोनों ही प्राप्त हो सकती हैं, लेकिन यदि वह ग्रपना सम्मान ही करवाना चाहे, या सेवक स्वामी से ग्रपनी सेवा करवाना चाहे तथा स्वामी के समान ही सुख-भोग प्राप्त करना चाहे तो यह सब वर्तमान समाज व्यवस्था में उसी प्रकार ग्रसंभव है, जिस प्रकार ग्राकाश के तारे तोड़ लेना या उससे दूध की ग्राकांक्षा रखना। ग्राकाश पानी तो दे सकता है लेकिन दूध कदापि नहीं ।

25. शूरवीर :

शूरवीर पुरुष विरले ही होते हैं । शूरवीर के सम्बन्ध में भर्तृहरि का कहना है जिस प्रकार सूर्य ग्रकेला ही ग्रपनी किरणों से समस्त संसार को प्रकाश-युक्त कर

---

1. ग्रयो. का., 35.3 ।
2. ग्रर. का., 17.8 ।

देता है, उसी प्रकार एक ही वीर अपनी शूरता और पराक्रम तथा साहस से सारी पृथ्वी को अपने पैरों तले कर देता है।[1]

जो केवल अपने मुंह से शूरवीरता का बखान करता है वह शूरवीर नहीं कहा जा सकता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि पतंगे मोहवश जलकर एवं गधा भार वहन कर अपनी शूरवीरता का बखान करें। गोस्वामीजी के शब्दों में ही देखिए—

जरहिं पतंग मोहवश भार बहहिं खर वृंद।
ते नहिं शूर कहावहिं समुझि देख मतिमंद ॥[2]

शूरवीर मुंह से न कह कर उसे कार्य रूप में परिणत करता है। कायर लोग ही वृथा प्रलाप किया करते हैं—

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु ॥[3]

26. बैर-प्रीति के पात्र :

कहा गया है कि शत्रुता भी अपने बराबर वालों से करनी चाहिए तथा मित्रता भी। बैर हर किसी से नहीं करना चाहिए जिनमें इन नौ व्यक्तियों से तो भूलकर भी बैर न करना चाहिए--

जो शस्त्र सुसज्जित हो, जो भेद जानने वाला हो, जो धूर्त हो, धनवान हो, वैद्य हो, प्रशंसक हो, समर्थ हो, कवि हो, एवं रसोइया हो। गोस्वामीजी ने इसे यों व्यक्त किया है--

नवहिं विरोधे नहिं कल्याना।
शस्त्री, मर्मी, प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कवि मानस गुनी।[4]

क्योंकि शस्त्री कभी भी वार कर सकता है, मर्मी कभी भंडाफोड़ कर बैठे, समर्थ अपनी सामर्थ्य के बल तथा धनवान पैसे के बल पर चाहे जो करा सकता है। वैद्य, कवि, भाट, रसोइया, मौका पाते ही बदला लेने पर उतारू हो सकते हैं। अतः इन नौ से सतर्क रहना चाहिए।

27. जाति-अपमान :

अपमान को सब विद्वानों ने घातक माना है। अपमान का प्रतिकार प्रत्येक के हृदय में कचोटे मारता है। वह चेतनायुक्त है तो कभी भी अपने अपमान को बरदाश्त नहीं कर पाएगा। सूर्यकान्त मणि जड़ होने पर भी सूर्य की किरणों के स्पर्श से जल उठती है, ठीक उसी प्रकार चैतन्य तेजस्वी पुरुष भी दूसरों के अपमान

---

1. सूक्ति सागर · रमाशंकर गुप्त, पृ. 6-7।
2. लंका का., 29।
3. बाल का., 274।
4. अर. का., 26.2;

को सहन नहीं कर सकते। मानव प्रकृति सब कुछ सहन कर सकती है, लेकिन अपमान (बेइज्जती) का घूँट गले से नहीं उतार सकती।

जिस युग में तुलसीदासजी का प्रादुर्भाव हुआ उस समय सामाजिक विषमता चरम सीमा पर थी। उच्च वर्ग के व्यक्ति निम्न वर्ग (नारी–शूद्र आदि) के साथ दुर्व्यवहार करते थे। किसी ने जरा सी भी हरकत की नहीं कि उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया जाता था। उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था।

गोस्वामी जी ने जाति-अपमान को संसार के दारुण दुखों में से भयंकर दुख माना है।

जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सबसे कठिन जाति अपमाना ।।[1]

28. खिचाव :

यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति सुन्दर वस्तु को देखकर आकर्षित होता है चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। धनुर्भंग के समय सीता-राम की जोड़ी को देखकर सभी नर-नारी आकर्षित हो गए थे।[2] लेकिन कामोद्दीपन में नारी, नारी के लिए सहायक नहीं हो सकती। यह विलक्षण रीति है कि नारी दूसरी नारी पर आसक्त (कामासक्त) नहीं हो सकती। भक्ति की महिमा मंडित करते हुए काकभुशुण्डि ने इसी मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रकट किया है—

मोह न नारि नारि कै रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा ।।[3]

29. पवित्र स्नेह :

जिसका जिसके प्रति सच्चा एवं अगाध प्रेम होता है वह निश्चय ही उसको प्राप्त करता है, ऐसा मनीषियों, शास्त्रों एवं स्मृतियों आदि का उल्लेख है। यदि भक्त की अपने आराध्य के प्रति सच्ची निष्ठा है तो अवश्यमेव उसको फल की प्राप्ति होगी। व्यावहारिक जगत् में भी देखने पर यह कथ्य उचित जान पड़ता है कि जिसके प्रति अधिक लगन, पाने की बलवती चाहना व प्रयत्न रहता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होता है। यह बात दूसरी है कि कभी सफलता जल्दी मिल जाए, कभी सतत प्रयत्न करने के बाद। अपने प्रयत्नों के प्रति सच्ची लगन होना आवश्यक है। सीताजी का श्री राम के प्रति सच्चा प्रेम था; अतः उनकी इच्छाएँ पूरी हुईं। गोस्वामीजी का निम्न कथन इसी मनोभाव को प्रकट करता है—

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहि न कछु संदेहू ।।[4]

---

1. बाल का., 63.4।
2. वही, 244, 248।
3. उत्तर का., 116.1।
4. बाल का., 259.3।

सच्चे स्नेह का चरम उत्कर्ष उत्सर्ग भाव में दिखाई देता है । जब स्नेह का धागा अभिमान की ओर किसी कारणवश एक बार टूट जाता है तो फिर जुड़ नहीं सकता । और कभी जुड़ भी जाए तो उसमें गाँठ पड़ जाएगी । वह एकरस या सम नहीं रहेगा । रहीम ने इस मनोभाव को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो इठलाय ।
टूटे सो फिर ना जुरै, जुरै गाँठ पड़ जाय ।।

गोस्वामीजी ने प्रेम की घनिष्ठता के लिए दूध-पानी का उदाहरण दिया है । प्रीति की सुन्दर रीति देखिए कि जल भी (दूध के साथ मिलकर) दूध के भाव बिकता है, परन्तु कपट रूपी खटाई पड़ते ही जल दूध से अलग हो जाता है, (दूध फट जाता है) और उसका स्वाद (प्रेम) जाता रहता है । सती प्रसंग में प्रयुक्त यह सूक्ति देखिए—

जलुपय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति की रीति भलि ।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि ।।[1]

30. परख :

कहावत है 'सोना जानिए कसे और आदमी जानिए बसे' । वस्तुतः व्यक्ति जब तक सम्पर्क में नहीं आता तब तक उसको पहचानना कठिनप्रद होता है । सोने की परख कसौटी के मिलने पर ही होती है और रत्न की पारखी से, उसी प्रकार काम पड़ने पर ही व्यक्ति पहचाना जाता है—

कसें कनकु मनि पारिखि पाये । पुरुष परिख अहि समय सुभाए ।।[2]

परख बिना संग्रह और त्याग की बात भी सम्भव नहीं होती—

.................................संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ।।[3]

31. आपत्ति :

मुसीबत 'परीक्षा काल' हुआ करता है । आपत्ति के दिनों में ही अपने-पराये की पहिचान सम्भव है । आपत्ति ही मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाती है । सेनेका का कथन है कि अग्नि सोने को परखती है तो आपत्ति वीर पुरुष को । गोस्वामीजी ने अनुभवगम्य सत्य कहा है कि धैर्य, धर्म, मित्र और नारी की परीक्षा आपत्तिकाल में ही होती है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिख अहु चारी ।।[4]

---

1. बाल का., सो. 57 'ख' ।
2. अयो. का., 283.3 ।
3. बाल का., 6.1 ।
4. अर. का., 5.4 ।

32. कुपंथ की ओर अग्रसर प्रवृत्ति :

व्यक्ति को सन्मार्ग की ओर उन्मुख रहना चाहिए। उसे कुमार्ग पर पैर नहीं रखना चाहिए। क्योंकि सत्-प्रवृत्ति उन्नति की ओर एवं असत् पतन की ओर ले जाती है।

दूसरे जब कुमार्ग की ओर पैर बढ़ता है तब शारीरिक बल और मेधाशक्ति भ्रष्ट हो जाती है। गोस्वामीजी ने इस तथ्य की पुष्टि रावण के सन्दर्भ में की है। वह रावण जिसके वश में सब चर-अचर, नर, नाग, देव सभी थे जिसका साम्राज्य अखण्ड था, जब कुमार्ग की ओर प्रवृत्त हुआ (सीता-हरण हेतु) उसका तेज, बल, बुद्धि सभी कुछ मन्द पड़ गए--

सो दससीस स्वान की नाई। इत उत चितइ चला मड़िहाई।।
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तंन बुद्धि बल लेसा।।[1]

उक्त प्रसंग में इस मनोवैज्ञानिक सत्य को व्यक्त किया गया है कि जब व्यक्ति अनुचित मार्ग पर पैर रखता है तब उसके कदम प्रथम डगमगा ही जाते हैं, चाहे कितना ही बली वह क्यों न हो।

33. स्वार्थ :

समस्त सांसारिक कार्यों में स्वार्थ किसी न किसी रूप में प्रेरक कारण रहता है। माता-पिता, पुत्र, बन्धु-बान्धव सभी के प्रेम-व्यवहार में भी स्वार्थ की भावना मूलरूप से विद्यमान रहती है। प्रत्येक जीव स्वार्थ के वशीभूत होता है। जहाँ कहीं भी उसको स्वार्थ या स्वयं का लाभ दृष्टिगोचर होता है, वह उसी पर अपने ममत्व के डोरे डालने लगता है, उससे अनुराग कर स्वार्थ-सिद्धि के सपने सँजोता है। गोस्वामीजी ने इस तथ्य को इस प्रकार व्यक्त किया है--

जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई।।[2]

व्यक्ति ही नहीं देवता, मुनि आदि भी इस भावना से युक्त होते देखे गए हैं। यह अवश्य है कि मात्रा में अन्तर हो सकता है—

सुर नर मुनि सब कै यहि रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।।[3]

ऐसा नीति कथन भी है कि अपने हितार्थ नीच से भी प्रीति रखी जाती है--

पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन करहिं।
अति नीचहु सन प्रीति करिअ, जानि निज परम हित।।[4]

---

1. अर. का., 28.5।
2. उत्तर का., 95.4।
3. किष्कि. का., 12.1।
4. उत्तर का., 95 'क' सो.।

रेशम कीड़े से उत्पन्न होता है फिर भी अपने हित-साधन (रेशम की प्राप्ति) के लिए लोग उस परम अपवित्र कीड़े को भी प्राणों के समान पालते-पोषते हैं--

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम ।।[1]

गोस्वामीजी ने इस स्वार्थ भाव का उदात्तीकरण करते हुए कहा है कि जीव के लिए सच्चा स्वार्थ यही है कि वह मन, वचन, कर्म से श्रीराम के चरणों में अनुराग रखे--

स्वारथ सांच जीव कहुँ एहा। मन क्रम वचन राम पद नेहा ।।[2]

34. स्व-प्रशंसा :

प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रशंसा सुनने का इच्छुक होता है। वह जो कुछ भी कार्य करता है उसके विषय में लोगों से वाह-वाह (प्रशंसात्मक उक्ति) की लालसा उसके मन में बराबर बनी रहती है, भले ही उसने अच्छा कार्य न किया हो। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वस्तु अच्छी लगती है। उस तथ्य की पुष्टि गोस्वामीजी ने निम्न उक्ति में की है—

निज कवित्त केहि लागि न नीका। सरस होय अथवा अति फीका ।।[3]

यह मानव-स्वभाव है कि अपनी वस्तु को देखकर वह प्रसन्न होता है, और दूसरों की वस्तु चाहे कितनी प्रशंसनीय हो या सुन्दर क्यों न हो, उसे देख कर उसे उतना हर्ष नहीं होता। ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति होते हैं, जो दूसरों की प्रशंसा या स्तुति सुनकर प्रसन्न हो उठते हों--

जे पर मनिति सुनत हरषाहीं। ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं ।।[4]

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि अपना बच्चा चाहे वह तुतला कर ही क्यों न बोले, उसकी बोली प्रियकर लगती है; लेकिन जो कुटिल है, बुरे विचार-युक्त है, जो दूसरों के दोषों को ही भूषण रूप में धारण करते हैं (जिन्हें पराये दोष ही प्यारे लगते हैं) वे उस बोली को सुनकर ईर्ष्या से हँस पड़ेंगे, वे उसका उपहास करेंगे--

जो बालक कह तोतरि बाता। सुनहि मुदित मन पितु अरु माता ।।
हँसहहि कूर कुटिल कुविचारी। जे पर दूषन भूषन धारी ।।[5]

---

1. उत्तर का., सो. 95 'ख'।
2. वही, 96.1।
3. बाल का., 8.6।
4. वही, 8.6।
5. वही, 8.5।

35. जीव-जागरण :

यह सत्य है कि रात्रि काल में जबकि सब निद्रा देवी की क्रोड़ में पलक बन्द किए कुछ भीने-भीने ख्वाबों की दुनिया में सैर-सपाटे करते हैं, तब ऐसे वक्त में वियोगी, योगी, परमार्थी एवं प्रपंची जागरण किया करते हैं—

एहि जग जामिनि जागहि जोगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ।।[1]

× × ×

नाम जीह जपि जागहि जोगी । बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ।।[2]

योगी रात्रि की गहनता में अपनी साधना के लिए जागता है तो वियोगी अपने प्रियतम की याद में विलख-विलख कर आवाजें लगाता है और प्रपंची अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए षड्यंत्र रचा करता है ।

निष्कर्ष :

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास को मानव-स्वभाव का गहरा ज्ञान था । वे मन की सूक्ष्म वृत्तियों से परिचित थे । संत-असंत लक्षण, काक-वृत्ति, जोंक-वृत्ति, बाल-स्वभाव, बैर-प्रीति के पात्र, शूर-धर्म, नारी-स्वभाव, जाति-अपमान, आकर्षण, स्वप्रशंसा, स्वार्थ-सिद्धि आदि के सम्बन्ध में कही गई उनकी सूक्तियाँ उनके मनोवैज्ञानिक सम्मान को प्रकट करती हैं ।

11. प्रकृतिपरक सूक्तियाँ

प्रकृति :

वह सारा दृश्य जगत् जिसमें हमें पशु-पक्षी, बनस्पतियाँ आदि अपने मौलिक या स्वाभाविक रूप में दिखाई देती हैं; प्रकृति कहा जाता है ।

व्यापक अर्थ में प्रकृति शब्द—(1) वस्तु अथवा व्यक्ति का मूल गुण, स्वभाव, तासीर; (2) मिजाज; (3) वह मूल शक्ति जिसने अनेक रूपात्मक जगत् का विकास किया है तथा जिसका रूप दृश्यों में दृष्टिगोचर होता हो, जगत् का उपादान कारण, कुदरत, नेचर आदि अर्थ में प्रयुक्त होता है ।[3]

'छंदोग्य उपनिषद्' के तीसरे अध्याय के चौदहवें खण्ड के प्रथम मंत्र में कहा गया है कि यह सारा जगत् ही ब्रह्म है, ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म में ही विलीन होगा और ब्रह्म में ही अवस्थित है—

सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जला निति शांत उपासीत ।।[4]

अतः जगत् के अन्तर्गत आने वाले उपकरणों में प्रकृति भी संन्निहित है ।

---

1. अयो. का., 93.2 ।
2. बाल का., 22.1 ।
3. नालन्दा विशाल शब्द सागर, सं. नवलजी, पृ. 883 ।
4. छान्दोग्य उपनिपद्, 'उपनिषद् भाष्य' अध्याय 3 खण्ड 14, मन्त्र 1, पृ. 303 ।

मानव और प्रकृति :

प्राचीन काल में वन-कांतार प्रदेशों का प्राचुर्य था। जनावास सघन नहीं था। मानव प्रकृति की उन्मुक्त क्रोड़ का सुख ले सकता था। ऋषियों की तपोभूमि सघन वनों में ही होती थी, जहाँ हिंसक पशु भी गौ सदृश्य सौम्य बन जाते थे। अनेक वनस्पतियों एवं नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं से जनता का परिचय रहता था। आयुर्वेद के ग्रन्थों में वर्णित विभिन्न वनस्पतियों के रूप, रंग, गुण आदि के विवरण से स्पष्ट ज्ञान हो सकता है कि हमारे पूर्वजों का प्रकृति-निरीक्षण कितना सूक्ष्म था। केवल वैदिक ऋषि ही उषा, सूर्य, मरुत आदि प्रकृति के नाना रूपों से अभिभूत रहे हों, ऐसा नहीं है। बिजली की कड़क एवं चमक, सुशोभित गरजते मेघ, मयूरों का नृत्य, पपीहे की पुकार, शरद का स्वच्छ हास, वसन्त का विकास एवं धरा का पुष्प संभार प्रभृति प्रकृति व्यापार रामायणकार वाल्मीकि से लेकर कवियों को चकित, छकित, प्रमुदित एवं प्रेरित करते आए हैं।

परी की कथाएँ कहते हुए सितारे, अज्ञात लोक का रहस्य बतलाता हुआ चाँद, सुनहरे तीर बरसाती हुई जय लक्ष्मी सी उषा, दिवसावसान का लोहित गगन, मेघमय आसमान से धीरे-धीरे पग रखती हुई सन्ध्या रानी, कल-कल करती हुई सरिताएँ, कलियों को मनाता हुआ मादक भ्रमर आदि दृश्य मानव मन में जादू का सा प्रभाव जगाते आए हैं।

भक्ति साहित्य में प्रकृति :

हिन्दी के भक्ति साहित्य पर पुराणों एवं वैष्णवाचार्यों के सिद्धान्तों का सर्वाधिक प्रभाव है, अतएव जहाँ उन्होंने एक ओर शंकर के मतानुसार जड़ जगत् को मिथ्या न मान कर भगवान् की लीला भूमि माना है और उसकी उपेक्षा नहीं की वहाँ दूसरी ओर अपने आराध्य से सम्बन्धित छिन्न जगत् का स्वतन्त्र वर्णन भी नहीं किया है। संस्कृत महाकाव्यों में जितना विशद् एवं गरिमामय प्रकृति चित्रण है, हिन्दी के ग्रंथों में उतना नहीं। छायावादी युग से पूर्व हिन्दी काव्य में आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण नहीं के बराबर है। वह अलंकरण के पारस्परिक रूप में ही विशेष वर्णित रही है। प्रायः सभी कवियों ने कमल, चन्द्र, भ्रमर, सर्प, अनार, कपोत, सिंह, कदली, आदि का उपयोग विभिन्न शारीरिक अवयवों के उपमान के रूप में किया है।

तुलसी और प्रकृति :

यद्यपि तुलसीदास जी ने षट्ऋतु वर्णन को प्रमुखता नहीं दी; तथापि वे प्रकृति से अछूते न रह सके। वस्तुतः उनका ध्येय सिर्फ महाकाव्य की रचना करना ही न था, वरन् उसमें प्रतिष्ठत आराध्य को एक सीढ़ी और ऊपर उठा उनमें ईश्वरत्व का आभास कराना तथा राम-भक्ति में लीन होना था और उसके लिए जिन पुष्पों का चयन करना अभीष्ट समझा, उन्हें चुन-चुनकर एक माला में पिरो, अपने इष्ट को

समर्पित कर दिए। उन सुमनों में से एक 'प्रकृति पुष्प' भी है। वैसे उनके समस्त काव्य-कानन में नैतिक, मर्यादित विचारों के सुमन ही अधिक छिटके पड़े हैं जो अपनी महक व लावण्य से दर्शक के मन को लुभाकर, उसका उद्धार करने में समर्थ हैं।

गोस्वामी जी ने प्रकृति को अपने काव्य में वह स्थान नहीं दिया जो आधुनिक कवि पन्त, निराला, महादेवी वर्मा आदि ने दिया है। उन्होंने तो प्रकृति का उद्दीपनरूप ही मुख्यतः ग्रहण किया है।

उनके काव्य में प्रकृति का उपदेशात्मक एवं प्रतीकात्मक रूप ही विशेप रूप से चित्रित हुआ है। यही कारण है कि विभिन्न प्राकृतिक तत्वों द्वारा किसी न किसी नैतिक संदेश को ग्रहण कराने में वे तत्पर दिखाई देने हैं या फिर आराध्य श्रीराम की महत्ता का आभास कराने में वे संलग्न हैं। यही कारण है कि उनके प्रकृति चित्रण में आध्यात्मिक प्रवचन की गुरुता के दर्शन होते हैं, या अनुशासन-बद्ध उपदेशक के रूप में सामने आते हैं।

प्रकृति चित्रण के मुख्य स्थल अयोध्याकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड व अरण्यकाण्ड में हैं, जहाँ उन्होंने किसी-किसी प्रसंग में आने पर वर्षा, शरद, वसन्त आदि का वर्णन किया है। ये मुख्य प्रसंग हैं—

जब शंकर और नारद की तपस्या भंग करने का प्रश्न उठता है तब कामदेव वसन्त की सृष्टि करता है, चित्रकूट-प्रसंग में भी प्रकृति छटा देखने में कवि का मन रमा है। किष्किन्धा काण्ड में राम और लक्ष्मण के संवाद रूप में वर्षा-शरद के मार्मिक चित्र खींचे हैं। यहाँ प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता के स्थान पर हमें मानव-भावनाओं की गुरुता के दर्शन अधिक होते हैं। चौपाई की अर्धाली के एक चरण में प्रकृति का सुन्दर निरीक्षण रहता है तो द्वितीय में कोई चुभती हुई सूक्ति।[1]

यहाँ जब प्रकृति और कवि का मन आकर्षित होता है तो तत्काल उसे जीवन के सारभूत सत्य याद आ जाते हैं और वह उनका आरोपण करता चलता है।

दमकती हुई बिजली की कड़क व चमक में मन न रमकर झट से दुष्टों की अस्थिर प्रकृति (स्वभाव) की ओर उसका ध्यान दौड़ जाता है।

प्रकृतिपरक सूक्तियाँ :

प्रकृति के अन्तर्गत जल, सरिता, सर, दिवस, पतंग, दामिनि, घन, वृष्टि, क्यारी, दादुर, नव पल्लव, विटप, गिरि, भूमि, खद्योत, मीन आदि के माध्यम से गोस्वामी जी ने चुभती हुई सूक्तियों की सर्जना की है। यहाँ नीति एवं उपदेशात्मकता-युक्त प्रकृति चित्रण अभीष्ट रहा है। वैसे अपने काव्य में प्रकृति चित्रण के अन्य रूपों को भी उन्होंने स्थान दिया है लेकिन सूक्तियों के माध्यम से नहीं। वहाँ अलंकरण

---

1. किष्कि. का., 14।

के रूप में गोस्वामी जी ने सादृश्य-मूलक अलंकारों में उपमान स्वरूप भी प्रकृति के मनोहर रूप की झाँकी प्रस्तुत की है। एक स्थल पर सीताजी के अंगों के लिए कितने ही उपमान जुटा दिए गए हैं।[1]

संवेदना के रूप में 'काव्य के प्रमुख पात्रों के सुख-दुःख में समरस होने वाली' प्रकृति का वर्णन अनेक कवियों ने किया है। सूफी कवि जायसी ने समस्त प्रकृति को विरह दुःख से पीड़ित दिखाया है। अन्य हिन्दी कवियों ने भी ऐसे अनेक मार्मिक चित्र खींचे हैं। सूर का विरह वर्णन तो अद्भुत ही बन पड़ा है परन्तु तुलसीदास जी का वर्णन यथार्थतः वैसा नहीं। समस्त जग को सियाराम-मय मानने वाले गोस्वामीजी को आभासित होता है कि राम की उपस्थिति एवं उनके संस्पर्श से प्रकृति का कण-कण सप्राण एवं संवेदनशील हो उठता है।[2] इतना ही नहीं, सुकुमार राम को धूप के कष्ट से बचाने के लिए मेघ छाया करते जाते हैं।[3]

श्रीराम के प्रिय होने के कारण भरत के प्रति प्रकृति उनसे भी अधिक सहानुभूति प्रकट करती है। भरत के कोमल पदों का स्पर्श पाकर पृथ्वी अपनी कठोरता का स्मरण कर संकुचा जाती है, और भरत को सुख देने के लिए नम हो जाती है। कुश कंटक, कंकड़ आदि कठोर अप्रिय वस्तुओं को वह छिपाने लग जाती है, बादल छाया करते हैं, वृक्ष, तृण, मृग, खग आदि भी उनकी सेवा के लिए तत्पर हैं।[4]

राम-बन-गमन के समय सभी शोकातुर हैं, अतः उनमें परिजन-पुरजन के साथ पशु-पक्षी भी भोजन करना श्रेयष्कर नहीं समझते।[5] सीता-हरण के समय भी उनके दुख से चराचर जीव दुखी दिखाए गए हैं।[6]

गोस्वामी जी ने सूक्तियों के माध्यम से निम्नलिखित बिन्दुओं पर अपने प्रकृति सम्बन्धी विचार प्रकट किए हैं—

(1) कृषि-किसान।
(2) चक्रवाक।
(3) चन्द्रमा।
(4) चातक हंस मीन प्रण।

---

1. अर. का., 30।
2. (क) अयो. का., 137, 138। (ख) उत्तर का, 3।
3. अयो., 113।
4. वही, 216।
5. वही, 100।
6. अर. का., 29।

(5) जलद ।
(6) जुगनू ।
(7) दामिनि ।
(8) नदी ।
(9) पर्वत ।
(10) पल्लव ।
(11) पृथ्वी ।
(12) मीन ।
(13) शरदकालीन अनुभूति ।

1. कृषि-किसान :

कृषि पर सभी की नजर रहा करती है; विशेषतः किसान की। उसी से जीवन मिलता है। खाद्य पदार्थों को उत्पन्न करने की क्रिया में कृषि किसान का ही मुख्य योग रहता है। कृषि की सफलता मुख्यतः समय पर वर्षा होने पर निर्भर रहती है। खेती के सूखने पर वर्षा का होना व्यर्थ है, लाभप्रद नहीं—

का वर्षा जब कृषि सुखाने ।[1]

गुड़ाई-निराई पर भी खेती आश्रित रहती है। गोस्वामी जी को किसानों की इस क्रिया में बुद्धिमानों की बुद्धिमत्ता के दर्शन होते हैं। जिस प्रकार किसान तृण-घासादि को बेकार समझ कर (खेत में से) फेंकते जाते हैं, ठीक उसी प्रकार बुद्धिमान लोग मोह, मद और मान को निकृष्ट समझकर उनका त्याग कर देते हैं। गोस्वामी जी की यह उक्ति कितनी संगत प्रतीत हो रही है—

कृषी निरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहि मोहम्मद माना ।।[2]

2. चक्रवाक :

वर्षा ऋतु में पशु-पक्षी प्रायः ओट में ही बैठे रहते हैं, लेकिन चक्रवाक नामक पक्षी कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। वह उसी प्रकार छिप जाता है जिस प्रकार कलियुग को पाकर धर्म छिप जाता है—

देखियत चक्रवाक खग नाहीं । कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ।।[3]

वर्षा ऋतु में चक्रवाक पक्षी दिखाई देते हैं या नहीं यह तो विवादास्पद है लेकिन कलियुग में धर्म का लोप हो जाना शास्त्र-सम्मत कथन है। कहा जाता है जब अधर्म बढ़ता है और धर्म जाता रहता है तब तामसी प्रवृत्ति युक्त व्यक्ति अधिक पनपते हैं।

---

1. बाल का., 261.2 ।
2. किष्कि., का., 15.4 ।
3. वही, 15.5 ।

चकवा-चकवी दिन में प्रसन्न रहते हैं (उनमें संयोग रहता है) लेकिन रात्रि-काल में दोनों बिछुड़ जाते हैं। उनके लिए दिन मिलन का एवं रात वियोग का कारक है। रात्रि आते देखकर चकवे के मन में उसी प्रकार दुख होने लगता है जिस प्रकार दूसरे की सम्पत्ति को देखकर दुष्टों को हुआ करता है।

चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी ।।[1]

3. चन्द्रमा :

शृंगार रस के संयोग-वियोग वर्णन में उद्दीपन के रूप में चन्द्रमा का कवियों ने नाना प्रकार से चित्रण किया है। गोस्वामीजी ने इसे नीति और भक्ति की पीठिका प्रदान की है। उनके अनुसार जिस प्रकार शरद् ऋतु में ताप को रात के समय चन्द्रमा हर लेता है ठीक उसी प्रकार संतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं। चन्द्रमा के प्रेमी चकोर उसकी ओर इस प्रकार टकटकी लगाए हैं जिस प्रकार भगवद्भक्त भगवान को पाकर निर्निमेष नेत्रों से उनके दर्शन करते हैं—

सरदा तप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई ।।
देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरि जन हरिपाई ।।[2]

4. चातक-हंस-मीन प्रण :

चातक और मछली प्रेम की अनन्यता के कारण आदर्श प्रेम के उपमान बन गए हैं। चातक पृथ्वी पर का जल न पीने से और मछली अपने प्रियतम (पानी) से अलग होने पर दम तोड़ देने के कारण सराही जाती है।

वस्तुतः जगत् में यश के पात्र वही हैं जो अपने नेम और प्रेम को सदा नया बनाए रखने में निपुण हैं।

जगजस भाजन चातक मीना। नेम पेमु निज निपुन नवीना ।।[3]

हंस की सराहना उसके नीर क्षीर विवेक की शक्ति के कारण की जाती है।

चातक हंस सराहियत टेक विवेक बिभूति ।[4]

चातक-प्रेम की पराकाष्ठा की परीक्षा इतनी विकट है कि मेघ चाहे जन्म भर उसकी सुध भुला दें (यानि पानी न बरसे) और जल की बजाय पत्थर (ओले) बरसाएँ, पर चातक पी-पी की रटन से कभी पीछे नहीं हटता। वह अपने प्रण पर अडिग बना रहता है। उसकी तो प्रेम बढ़ने में ही सब तरह से भलाई है—

---

1. किष्कि. का., 17.2 ।
2. वही, 17.3, 4 ।
3. अयो. का., 234.2 ।
4. वही, 324 ।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जलु पवि पाहन डारउ ।।
चातकु रटनि घटें घटि जाई । बढ़ै प्रेमु सब भाँति भलाई ।।[1]

5. **जलद** :

भूमि स्पर्शी मेघमालाओं में बुद्धि विशारदों की उदारता एवं विनम्रता का आरोप करना गोस्वामीजी का ही काम था । मेघों का भूमि के समीप होकर बरसने की क्रिया में विद्वानों की शिक्षागत विनम्रता के दर्शन किए गए हैं—

बरषहिं जलद भूमि निअराए । जथा नवहिं बुध बिद्या पाए ।।[2]

वायु के अधिक जोर से चलने के कारण बादल ओझल हो जाया करते हैं । इस क्रिया में गोस्वामी जी ने बादलों की लुप्तता का साम्य कुपुत्र के उत्पन्न होने पर कुल के उत्तम धर्माचरण के नष्ट हो जाने से दर्शाया है । यहाँ बादल ऐसे छिपे जान पड़ते हैं जैसे कुपुत्र की उत्पत्ति से कुल के श्रेष्ठ धर्म जाते से रहते हैं—

कबहुँ प्रबल बह मारुत जंह तंह मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत ऊपजे कुल सद्धर्म नसाहिं ।।[3]

बादलों के छिपने-प्रकट होने की क्रिया से कभी दिन में अन्धकार तो कभी प्रकाश (सूर्य प्रकटीकरण से) होने लगता है । यह दृश्य ऐसा ही लगता है जैसे कुसंग से ज्ञान जाता रहता है और कुसंग से प्राप्त हुआ करता है —

कबहुँ दिवस मंह निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग ।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ।।[4]

बादल रहित आकाश उसी प्रकार सुशोभित होता है जिस प्रकार भगवत्भक्त समस्त आशाओं से परे होता है—

बिनु धन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा ।।[5]

यहाँ गोस्वामी जी का ध्यान स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण की ओर न होकर कुपुत्र के लक्षण, कुसंग-सुसंग से ज्ञान की स्थिति का बोध तथा कामना-रहित भगवत्भक्त की गरिमा का प्राकृतिक व्यापारों के साथ तालमेल बैठाने में रहा है ।

---

1. अयो. का., 205.2 ।
2. किष्कि, का., 14.2 ।
3. वही, 15 'क' ।
4. वही, 15 'ख' ।
5. वही, 16.4 ।

6. **जुगनू :**

वर्षा ऋतु में जुगनू इधर-उधर सर्वत्र मँडराते दृष्टिगोचर होते हैं। इन जुगनुओं का रात्रिकाल में विचरण करना गोस्वामीजी को ऐसा प्रतीत होता है मानों दम्भियों का दल मिलकर चला आ रहा हो—

निसि तम घन खद्योत विराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा ॥[1]

जब जुगनू निकलते हैं तो दल के दल ही उमड़ पड़ते हैं। दम्भी भी प्रायः गुट बनाकर ही विचरण किया करते हैं, वे अकेले नहीं फिरते। यहाँ तुलसीदासजी ने जुगनुओं की टोली पर दम्भियों के दल का आरोपण किया है।

7. **दामिनि :**

वर्षा ऋतु में मेघों के छा जाने पर बिजली भी अपनी कलाबाजियाँ दिखाए बिना नहीं रहती। गोस्वामीजी ने बिजली की चमक का वर्णन तो किया लेकिन उसकी दमक में दुष्टजनों की अस्थिर प्रीति के ही दर्शन किए—

दामिनि दमक रह न घन माँही। खल की प्रीति यथा थिर नाहीं ॥[2]

8. **नदी :**

वर्षा ऋतु में छोटे-मोटे नदी-नाले सब भर जाया करते हैं। बरसात में ही उन्हें उमड़-घुमड़ कर चल पाने का सौभाग्य मिल पाता है। गोस्वामीजी की दृष्टि में जिस प्रकार क्षुद्र बरसाती नदी अपने किनारों को तुड़ाती हुई बहती है उसी प्रकार थोड़े ही धन से दुष्ट इतरा उठते हैं। 'अधजल गगरी छलकत जाय' वाली कहावत इसी भाव को व्यक्त करती है। गोस्वामीजी के शब्दों में—

छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई ॥[3]

यों पानी स्वच्छ होता है लेकिन भूमि पर पड़ते ही गदला जाता है। इसी प्रकार मूलतः जीव शुद्ध होता है लेकिन माया के चक्कर में पड़कर वह अपने स्वरूप को भूल बैठता है—

भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी ॥[4]

9. **पर्वत :**

पर्वतों पर पड़ती हुई बूंदों की चोटें कवि के मन में कौतूहल पैदा कर गई और वह उन प्रहारों का साम्य बैठाने हेतु खल और संतों को ले बैठा; जिस प्रकार दुष्टों के वचन-बाणों को संतजन सह लिया करते हैं उसी प्रकार यह पर्वत भी बूंदों के आघातों को सह लेता है—

---

1. किष्कि. का., 15.3।
2. वही, 14.1।
3. वही, 14.3।
4. वही।

बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे । खल के वचन संत सह जैसे ।।[1]

वर्षा ऋतु में जिस प्रकार जल एकत्र होकर तालावों में भर जाता है उसी प्रकार सद्गुण (एक-एक कर) सज्जन के पास चले आया करते हैं । नदी का जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्रीहरि को पाकर अचल (आवागमन से मुक्त) हो जाता है । पृथ्वी घास से परिपूर्ण होकर हरी हो जाती है, जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते उसी प्रकार पाखण्ड मत के प्रचार से सद्ग्रन्थ गुप्त (लुप्त) हो जाते हैं--

सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा । जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ।।
सरिता जल जलनिधि मंहु जाई । होइ अचल जिमि जिवहरि पाई ।।
हरित भूमि तृण संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ ।
जिमि पाखण्ड विवाद ते लुप्त भए सदग्रन्थ ।।[2]

10. पल्लव :

वृक्ष की शोभा पल्लव से है । जिस प्रकार नये-नये पत्ते आकर वृक्ष को हरा-भरा बना देते हैं उसी प्रकार साधक का मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त हो जाने पर प्रफुल्लित हो उठता है—

नव पल्लव भए विटप अनेका । साधक मन जस मिले विवेका ।।[3]

सुराज्य का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है कि जिस प्रकार मदार और जवासा पत्तों से रहित हो जाते हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों का उद्यम जाता रहता है । वहाँ शूल कहीं खोजने पर उसी प्रकार नहीं मिलती जिस प्रकार क्रोध धर्म को दूर कर देता है (अर्थात् क्रोध का आवेश होने पर धर्म का ज्ञान नहीं रह जाता) ।

अर्क जवास पात बिनु भयऊ । जस सुराज खल उद्यम गयऊ ।।
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी । करइ क्रोध जिमि धरमहिं दूरी ।।[4]

11. पृथ्वी :

अन्न से युक्त (लहलहाती हुई, खेती से हरी-भरी) पृथ्वी उसी प्रकार शोभित होती है जिस प्रकार उपकारी पुरुष की सम्पत्ति--

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी । उपकारी कै सम्पत्ति जैसी ।।[5]

---

1. किष्कि. का., 14.2 ।
2. वही, 14.4 ।
3. वही, 15.1 ।
4 वही, 15.2 ।
5. वही, 15.3 ।

भारी वर्षा से खेतों की क्यारियाँ उसी प्रकार फूट चलती हैं जिस प्रकार स्वतन्त्र होने पर स्त्रियाँ विगड़ जाया करती हैं--

महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी ।।[1]

जिस प्रकार ऊसर में वर्षा होने पर भी घास नहीं उगती उसी प्रकार हरिभक्त के हृदय में काम उत्पन्न नहीं होता—

ऊपर बरसहि तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा ।।[2]

पृथ्वी अनेक तरह के जीवों से भरी हुई उसी प्रकार शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजा की वृद्धि होती है। वहाँ-तहाँ अनेक पथिक थक कर ठहरे हुए हैं जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इन्द्रियाँ शिथिल होकर विषयों की जाना ओर छोड़ देती है—

विविध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ।।
जंह तहं रहे पथिक थकि माना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ग्याना ।।[3]

वस्तुतः गोस्वामीजी का प्रकृति चित्रण चिन्तनात्मक अधिक रहा है। उनकी प्रकृति नीति एवं बौद्धिक झाड़ियों में उलझने के लिए ही अधिक विवश है तभी तो 'ससि सम्पन्न महि उपकारी की सम्पत्ति' जैसी प्रतीत हो रही है। महावृष्टि के कारण फूटी हुई क्यारियों से नारियों की स्वच्छंदता ऊसर भूमि से हरिजन हिय, और पृथ्वी के जीवों से सम्पन्न होने की अवस्था में सुराज्य के कारण प्रजा की वृद्धि की कल्पना जैसे भाव उभर-उभर कर उनके समक्ष आते गए हैं।

12. मीन :

मछली सर्वदा अथाह जल में ही संतुष्ट रहा करती है। जल की न्यूनता में वह विकल रहती है, और उसके अभाव में प्राण तक उत्सर्ग कर देती है। जल-मीन की प्रीति आदर्श मानी गई है। गोस्वामी जी ने भी मीन की इस दशा का आरोपण इस प्रकार किया है –

जल संकोच विकल भई मीना। अबुध कुटुम्वी जिमि धन हीना ।।[4]

+ + +

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ।।[5]

जल की न्यूनता से जिस प्रकार मछली व्याकुल रहती है, उसी प्रकार धन की कमी से मूर्ख (विवेक शून्य) गृहस्थ दुखी रहता है। जिस प्रकार मछली अगाध जल

---

1. किष्कि. का. 15.4।
2. वही, 15.5।
3. वही, 15.6।
4. वही, 16.4।
5. वही, 17.1।

में संतुष्ट रहती है उसी प्रकार प्रभु की शरण पा लेने पर भक्त को एक भी बाधा नहीं व्यापती।

13. शरदकालीन अनुभूति :

गोस्वामीजी के काव्य में मानव मुख्य तथा प्रकृति गौण रही हैं। उन्होंने शरद्कालीन अनुभूति को इन शब्दों से गुम्फित किया है—

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा ॥
रस रस सूखि सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए ॥[1]

अगस्त्य के तारे ने उदित होकर मार्ग के जल को उसी प्रकार सोख लिया है जैसे संतोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय। नदियों और तालाबों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है जैसे ज्ञानी पुरुष ममता का त्याग करते हैं। खंजन पक्षी शरद ऋतु में निकल आए हैं। वे ऐसे लग रहे हैं जैसे समय पाकर सुन्दर सुकृत (पुण्य) प्रकट हो जाते हैं।

कीचड़-धूल रहित पृथ्वी ऐसी सुशोभित हो रही है जैसे नीति-निपुण राजा की करनी—

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै असि करनी ॥[2]

वर्षा के कारण जो जीव पृथ्वी पर छा गये थे, वे शरद ऋतु को पाकर वैसे ही नष्ट हो गए जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर सन्देह और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं—

भूमि जीव संकुल रह गए सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ॥[3]

वस्तुतः गोस्वामीजी के द्वारा इस समस्त वर्णन में शारदीय विभूति का तत्व कम, उपदेशात्मक प्रवृत्ति ही अधिक है।

निष्कर्ष :

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी के प्रकृति वर्णन में प्रकृति चित्रण का तत्व कम, उपदेशात्मक प्रवृत्ति अधिक है। यही कारण है कि 'मानस' में प्रकृति धात्री एवं सहचरी रूप में न आकर ज्ञानोपदेशिका एवं भगवदीय कला की प्रसारिका के रूप में प्रकट हुई है। यहाँ का समस्त प्राकृतिक वातावरण भी आध्यात्मिक चेतना

1. किष्कि. का., 16.2,3।
2. वही, 16.4।
3. वही, 17।

से मंडित है। वर्षा ऋतु एवं शरद ऋतु के वर्णन में गोस्वामीजी ने किसी न किसी नीति, आदर्श अथवा सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। उनकी प्रकृति नीति एवं बौद्धिक झाड़ियों में उलझने के लिए विवश है। यहाँ दर्शनपक्ष सदैव साथ चलता रहा है।

12. विविध विषयक सूक्तियाँ

विविध विषयक सूक्तियों के अन्तर्गत उन सूक्तियों को समाविष्ट किया गया है जो हमारे द्वारा वर्गीकृत सूक्तियों में नहीं आ पाई हैं। इन सूक्तियों में निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार व्यक्त किए गए हैं--

(1) एकाकी जीव की वृत्ति।
(2) आर्त जन।
(3) अग्नि स्वभाव।
(4) असम्भवता।
(5) कनक-स्वभाव।
(6) कर्म।
(7) कवि-कविता।
(8) कारण-कार्य।
(9) काल।
(10) गमनागमन प्रसंग।
(11) धीर-पुरुष।
(12) भ्रम।
(13) व्यर्थ-श्रम।
(14) शोचनीय-जन।
(15) संतोष।
(16) संगति।

1. एकाकी जीव की वृत्ति :

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। वह परिवार के बन्धनों से जकड़ा हुआ प्रत्येक का आश्रय ग्रहण करता है, किन्तु जो इससे विरक्त हैं यानी गृहस्थाश्रम का उपभोग नहीं करते एवं वैरागी जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें कोई बन्धन स्वीकार नहीं। उनके घर में औरत नहीं निभ सकती, क्योंकि जहाँ नारी होगी, वहीं माया का जाल फैलेगा।

सहज एकाकिन्ह के भवन ,कबहुँ कि नारि खटाहि ॥[1]

---

1. बाल का., 79।

2. आर्त-जन :

दुखी मनुष्य का जीवन अति कष्टदायक हुआ करता है। वह अपनी व्यथा से इतना विकल हो जाता है कि उसकी सोचने-समझने की शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जिस प्रकार जुआरी को अपना ही दाव याद रहता है, उसी प्रकार आर्त-जन अपनी व्यथा से, अपनी ही धुन लगाए रहता है--

आरत कहहिं बिचार न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ।।[1]

दुख से उसका चित्त विकल रहता है। वह विवेकशून्य हो जाता है—

रहै न आरत कें चित चेतू।।[2]

ऐसी स्थिति में चाहे जो कार्य (कारणीय-अकरणीय) करने के लिए उतावला हो उठता है--

आरत काह न करइ कुकरमू।[3]

इसीलिए गोस्वामीजी ने कहा है कि व्यक्ति को दुख-सुख में सम भाव रखना चाहिए। न सुख में हर्षित होना चाहिए न दुख में दुखित! उदासीन भाव से ही मनःशान्ति प्राप्ति हो सकती है।

3. अग्नि-स्वभाव :

प्रत्येक वस्तु की अपनी अलग ही प्रकृति हुआ करती है। वर्फ का स्वभाव शीतलता एवं अग्नि का स्वभाव ताप प्रदान करना है। अग्नि के समक्ष वर्फ (हिम) का स्वरूप परिवर्तित हो जाएगा वहाँ वह विगलित अवस्था में रहेगी--

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ।[4]

4. असंभवता :

कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो किसी भी कीमत पर संभव नहीं बनाए जा सकते। क्या बिना धरती के पेड़ लगाया जा सकता है? तत्वज्ञान के बिना क्या समभाव आ सकता है? आकाश के अभाव में क्या कोई अवकाश पा सकता है। तप के बिना क्या तेज फैल सकता है? जल तत्व के बिना संसार में क्या रस हो सकता है? विद्वानों की सेवा के बिना क्या शील (सदाचार) प्राप्त हो सकता है? बिना तेज (अग्नि तत्व) के क्या रूप निखार पा सकता है? निज सुख (आत्मानंद) के बिना क्या मन स्थिर हो सकता है? वायु तत्व के बिना क्या स्पर्श हो सकता है? गोस्वामी जी के शब्दों में —

---

1. अयो. का., 258.1।
2. वही, 269.2।
3. वही, 204.4।
4. बाल का., 90.4।

थल विहीन तरु कबहु कि जामा ।।

बिनु बिग्यान कि समता ग्रावइ । कोउ ग्रवकाश कि नभ बिनु पावइ ।।
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा । जल बिनु रस की होंहि संसारा ।।
सीलकि मिलु बिनु वुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गोसाई ।।
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा । परसकि होइ विहीन समीरा ।।[1]

दूसरों से द्रोह करने वाले क्या निर्भय हो सकते हैं ? कानी क्या कलंक रहित (बेदाग) रह सकते हैं ? पर-स्त्रीगामी क्या उत्तम गति पा सकते हैं ? दुष्टों के संग से क्या किसी में सुबुद्धि उत्पन्न हो सकती है ? परमात्मा को जानने वाला कहीं भव-बन्धन में पड़ सकता है ? हरिनिंदक क्या कभी सुखी रह सकता है ? हरि के चरित्र-वर्णन करने पर क्या पाप रह सकते हैं ?

कबहु कि दुख सब कर हित ताके । तेहि किदरिद्र परसमनि जाके ।।
परद्रोही की होंहि निसंका । कामी पुनि कि रहहिं ग्रकलंका ।।
काहू सुमति कि खल संग जामी । सुभ गति पावकि परत्रिय गामी ।।
भव कि परहि परमात्मा निंदक । सुखी कि होंहि कबहुँ हरि निंदक ।।
.... ग्रघ कि रहहिं हरि चरित्र बखाने ।।[2]

इसी प्रकार बिना पुण्य के क्या पवित्र यश प्राप्त हो सकता है ? बिना पाप के भी क्या कोई ग्रपयश का भागी बन पाता है ?

पावन जस कि पुण्य बिनु होई । बिनु ग्रघ ग्रजस कि पावइ कोई ।।[3]

क्या कोदों की बाली उत्तम धान उत्पन्न कर सकती है ? क्या काली घोंघी मोती उत्पन्न कर सकने में समर्थ है ?

फरइ कि कोदव बालि सुसाली । मुकता प्रसव कि संबुक काली ।।[4]

मैल धोने से क्या मैल छूट सकता है ? पानी के मंथन से क्या घी प्राप्ति सम्भव है ?

छूटइ मल कि मलहिं के धोए । घृत कि पाव कोइ बारि बिलोए ।।[5]

जो जीवों के द्रोह में रत है, मोह में ही रत है, राम विमुख एवं कामासक्त है, क्या उसको कभी स्वप्न में भी सुख-सम्पत्ति, शुभ-शकुन एवं चित्त की शांति प्राप्त हो सकती है ?

---

1. उत्तर का., 90.1, 2, 3, 4 ।
2. वही, 112.1. 2, 3 ।
3. वही, 112.4, 5 ।
4. ग्रयो. का., 261.2 ।
5. उत्तर का., 49.3 ।

ताहि कि सम्पति सगुन सुभ सपनेहुँ मन विश्राम ।
भूत द्रोह रत मोह बस, राम विमुख रति काम ।।[1]

5. कनक-स्वभाव :

जिसका जैसा स्वभाव होता है, वह उसे छोड़ पाने में असमर्थ रहता है। पत्थर का स्वभाव कठोरता है जिसे वह कभी छोड़ नहीं सकता । सोना भी पत्थर से ही उत्पन्न होता है । उसे कितना ही जलाया जाए वह अपने स्वभाव (सुवर्णत्व) को कभी नहीं छोड़ेगा—

कनकउ पुनि पषान ते होई । जारेहु सहजु न परिहर सोई ।।[2]

कहने का आशय यह है कि रूप परिवर्तन होने पर भी स्वभाव परिवर्तन नहीं होता ।

6. कर्म :

मनुष्य को कर्म (पुरुषार्थ) में सदैव तत्पर रहना चाहिए । हाथ पर हाथ रखे भाग्य के भरोसे बैठना कायरता है । आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं—

कादर मन कहुं एक अधारा । दैव-दैव आलसी पुकारा ।।[3]

इस संसार में कर्म ही प्रधान है । जो जैसा करता है वैसे ही फल का भागी है—

काहु न कोउ सुख दुख करदाता । निजकृत कर्म भोग सब भ्राता ।।[4]
कर्म प्रधान विस्व करि राखा । जो जस करिय सो तस फल चाखा ।।[5]

\+ \+ \+

करम प्रधान सत्य कहि लोगू ।[6]
करइ जो कर्म पाव फल सोई ।।[7]

कर्म की गति समझ से परे है । कभी-कभी कर्म कोई करता है और फल किसी और को प्राप्त हो जाता है । कभी-कभी करनी का भुगतान अन्य को भी करना पड़ जाता है । भरत जी ने तभी तो कहा है--माता की करनी का मुझे भुगतना पड़ रहा है—

---

1. लंका का., 78 ।
2. बाल का., 80.3 ।
3. सु. का., 51.2 ।
4. अयो. का. 92.2 ।
5. वही, 219.2 ।
6. वही, 91.4 ।
7. वही, 77.4 ।

श्रौरु करै श्रपराधु कोउ श्रौर पाव फल भोगु ।।
श्रति विचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु ।।[1]

कर्म करना तो मनुष्य के हाथ में है लेकिन फल ईश्वराधीन है । ईश्वर ही शुभाशुभ कर्म फल का दाता है—

सुभ श्ररु श्रसुभ करम श्रनुहारी । ईस देइ फलु हृदय विचारी ।।[2]
कठिन करम गति कछु न वसाई ।[3]
\+ + +
सुभ श्ररु श्रसुभ करम फल दाता ।[4]
\+ + +
कर्म विवस दुख सुख छति लाहू ।
कठिन करम गति जान विधाता । जो सुभ श्रसुभ सकल फल दाता ।।[5]

श्रात्म ज्ञान होने पर श्रासक्ति पूर्ण कर्म नहीं हो सकते—

कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हे ।[6]

श्रौर जब इस प्रकार के कर्म नहीं, तब बन्धन कैसा ? फिर तो ईश्वराधीन ही जीवन-नैया छोड़ दी जाती है ।

7. कवि कविता :

कवि जिस काव्य की सर्जना करता है, उसके उचित उपयोग में ही उसका श्रम सार्थक होता है । कविता गंगा की तरह सबका समान हित करने वाली होनी चाहिए । कविता श्रौर सम्पत्ति वही उत्तम मानी गई है जो गंगा के समान सबके लिए हितप्रद हो --

कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कँह हित होई ।।[7]

जिस प्रकार मणि, माणिक श्रौर मोती क्रमशः सर्प, पर्वत, श्रौर हाथी के मस्तिष्क पर वैसी शोभा नहीं पाते, जितना राजा के मुकुट श्रौर नवयुवती के शरीर को पाकर सुशोभित होते हैं, इसी तरह सुकवि की कविता भी उत्पन्न श्रौर कहीं होती है तथा शोभा कहीं पाती है, श्रर्थात् कवि की वाणी से उत्पन्न हुई कविता वहाँ शोभा

1. श्रयो. का., 77 ।
2. वही, 77.4 ।
3. वही, 99.4 ।
4. उत्तर का., 41.3 ।
5. श्रयो. का., 282.2 ।
6. उत्तर का., 112.2 ।
7. बाल का., 14.5 ।

पाती है जहाँ उसका विचार, प्रचार तथा उसमें कथित आदर्श का ग्रहण और अनुसरण होता है। गोस्वामी जी ने उक्त भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई।।
तैसेहि सुकवि कवित् बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं।।[1]

यदि सुकवि द्वारा रचित कविता राम नाम महिमा से विहीन है (जिसमें ईश गुणगान नहीं है) तो वह उसी प्रकार शोभित नहीं होती जिस प्रकार चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली स्त्री सब प्रकार सुसज्जित होने पर भी वस्त्र बिना शोभा नहीं देती। इसके विपरीत कुकवि की रचना यदि सब गुणों से रहित होकर भी राम नाम के यश से मंडित है तो बुद्धिमान उसकी सराहना ही करेंगे। क्योंकि संतजन भौंरे की भाँति गुण-ग्राहक होते हैं—

भनिति विचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ।।
विधुवदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी।।
सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।।
सादर कहहिं सुनहिं बुधताही। मधुकर सरसि संत गुन ग्राही।।[2]

गोस्वामीजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि अपनी कविता सबको अच्छी लगती है चाहे वह रसीली हो या फीकी—

निज कवित्त केहि लागि न नीका। सरस होय अथवा अति फीका।।[3]

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि स्वयं की वस्तु चाहे वह कितनी ही खराब क्यों न हो, दूसरों को अधिक पसन्द आएगी।

8. कारण-कार्य :

कहा जाता है कि बिना कारण से कोई कार्य सम्भव नहीं होता। किसी कार्य के मूल में कोई न कोई कारण अवश्य छिपा रहता है। कार्य को फलीभूत करना कठिन कार्य है। जिस प्रकार हड्डी से वज्र एवं पत्थर से लोहा कठोर होता है, उसी प्रकार कारण से कार्य कठिन माना गया है—

कारन ते कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि ते उपल ते लोह कराल कठोर।।[4]

---

1. वही, 11.1,2।
2. बाल का., 10.2, 3।
3. वही, 8.6।
4. अयो. का., 179।

9. **काल** :

काल शब्द को सामान्य अर्थ में समय के लिए प्रयुक्त किया जाता है । इसका विशिष्ट अर्थ मृत्यु भी होता है । काल और कर्म की गति जानी नहीं जाती--

काल करम गति अघटित जानी ।[1]

जब व्यक्ति की मौत सिर पर मंडराती है तब उसकी बुद्धि भ्रमित हो जाती है । काल की यह विशेषता है कि वह दण्ड (लाठी) लेकर किसी को नहीं मारता; वह तो धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हर लेता है । रावण की भ्रमित बुद्धि को देखकर मन्दोदरी कह उठती है--

काल दण्ड गहि काहु न मारा । हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ।।
निकट काल जेहि आवत साईं । तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं ।।[2]

10. **गमनागमन प्रसंग** :

ऐसा नीति शास्त्रों का कथन है कि बिना बुलाए कहीं भी नहीं जाना चाहिए । यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता एवं गुरु के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिए; तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता ।

शिवजी का सती से यह कथन द्रष्टव्य है--

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा । जाइअ बिनु बोलेहुँ न संदेहा ।।
तदपि बिरोध मान जहँ कोई । तहाँ गये कल्यानु न होई ।।[3]

11. **धीर पुरुष** :

आपत्ति व्यक्ति को अपने पथ से डिगाने के लिए परीक्षार्थ आया करती है । जो व्यक्ति उसके सामने हथियार डाल देते हैं, वह कायर हैं । धीर व्यक्ति आपत्ति-काल में भी स्थिर रहते हैं ।

इस संसार में जन्म-मरण, सुख-दुख, लाभ-हानि, मिलन-विछोह, यह सब काल-कर्म के अधीन हैं । मूर्ख लोग सुख में हर्षित होते हैं और दुख आने पर विलाप करते हैं । पर जो धीर पुरुष होते हैं वे अपने मन में सुख-दुख आने पर स्थिर रहते हैं—

---

1. अयो. का., 165.3 ।
2. लंका का., 37.4 ।
3. बाल का., 62 3 ।

जनम-मरन सब सुखदुख भोगा । हानि लाभु प्रिय मिलन वियोगा ।।
काल करम बस होहिं गोसाईं । बरबस राति दिवस की नाईं ।।
सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ।।[1]

12. भ्रम :

जब व्यक्ति की बुद्धि भ्रमित हो जाती है, तब उसे अजीब-अजीब नजारे दिखाई दिया करते हैं । ठीक वैसे ही जैसे किसी को कंवल दोष (नेत्र रोग) हो जाए तो वह चन्द्रमा को पीले रंग का कहता है । जब दिशा-भ्रम हो जाया करता है तब सूर्य बजाय पूर्व के पश्चिम दिशा से उदय होता नजर आता है । नौका पर चढ़ा हुआ मनुष्य जगत् को चलता हुआ देखता है और मोहवश अपने को अचल समझ बैठता है । बच्चे जब चक्राकार घूमते हैं तो उन्हें घर आदि सब घूमते नजर आते हैं और वे उन्हें भ्रमवश सच मान बैठते हैं—

नयन दोष जा कंह जब होई । पीत बरन ससि कहुँ कह सोई ।।
जब जेहि दिसि भ्रम होय खगेसा । सो कह पश्चिम उदइ दिनेसा ।।
नौका रूढ़ चलत जग देखा । अचल मोह बस आपुहि लेखा ।।
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी । कहहिं परस्पर मिथ्यावादी ।।[2]
यह तभी होता है जब अज्ञानता का वास हो जाता है ।

13. व्यर्थ श्रम :

किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिए किया गया प्रयत्न या प्रयास श्रम कहलाता है । जब किए गए श्रम का उचित फल प्राप्त हो जाए तभी उस काम का 'पुरुषार्थ प्राप्तव्य' होता है अन्यथा वह श्रम व्यर्थ कहा जाता है । ऐसा श्रम वैसे ही निष्फल रहता है जैसे परद्रोह में लगे हुए चित्त वाले मनुष्य का उद्यम निष्फल होता है--

बिफल होहिं सब उद्यम ताके । जिमि परद्रोह निरत मनसा के ।[2]

\+ . + +

सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुन्दर नीती ।
ममता रत सन ग्यान कहानी । अति लोभी सन बिरति बखानी ।।
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा । ऊसर बीज बएं फल जथा ।।[4]

---

1. अयो. का., 150.3, 4 ।
2. उत्तर का., 73.2, 3 ।
3. लंका का., 92.2 ।
4. सु. का. 58.1,2 ।

मूर्ख से विनय, कुटिल के साथ प्रीति, स्वाभाविक रूप से कंजूस व्यक्ति को उदारता का उपदेश, ममता में ग्रासक्त व्यक्ति से ज्ञान की कथा, ग्रत्यन्त लोभी से वैराग्य की चर्चा, क्रोधी से शान्ति की बात, कामी से ईश-कथन—इन सबका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है। ग्रर्थात् यह सारा श्रम व्यर्थ जाता है।

14. **शोचनीय-जन** :

कुछ व्यक्ति ग्रपने कर्मों के वशीभूत रहने के कारण शोचनीय स्थिति में ग्रा जाते हैं। ग्रर्थात् वे चिन्ता के विषय बन जाते हैं। गोस्वामीजी की दृष्टि में वह व्यक्ति शोचनीय है जो ग्रकारण क्रोध करता है, जो चुगलखोर है, माता-पिता, गुरु एवं भाई-बन्धुग्रों का विरोधी है, जो दूसरों का ग्रहित करता है, ग्रपने ही शरीर का पोषण करता है ग्रौर बड़ा भारी निर्दयी है। वह व्यक्ति तो सभी प्रकार से शोचनीय है जो छल छोड़कर हरि का भक्त नहीं होता--

सोचिय पिसुन ग्रकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु विरोधी॥
सब विधि सोचिय पर ग्रपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबही विधि सोई। जो न छाँडि छलु हरि जन होई॥[1]

15. **संतोष** :

संतोष मानव व्यक्तित्व का सबसे बड़ा गुण है। जब व्यक्ति संतोष-सीढ़ी पर पहुँच जाता है तब उसके लिए कुछ भी बाकी नहीं रह जाता। वहाँ परम शान्ति का ग्रनुभव होता है। संतोष के बिना शांति उसी प्रकार प्राप्त नहीं की जा सकती जिस प्रकार जल के बिना नाव पार लगाने में ग्रसमर्थ रहती है--

कोउ विश्राम कि पाव तात सहज संतोषु बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिग्र॥[2]

बिना संतोष के कामनाग्रों का नाश नहीं होता ग्रौर कामनाग्रों के रहते स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता--

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम ग्रछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥[3]

16. **संगति** :

मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में संगति का बड़ा हाथ रहता है। यदि उसकी संगति ग्रच्छी है तो वह सन्मार्ग की ग्रोर प्रवृत्त होगा, ग्रन्यथा कुसंगत उसे पतन की ग्रोर ले जाएगी--

---

1. ग्रयो. का., 173.1, 2।
2. उत्तर का., 89 'ख'।
3. वही, 90.1।

संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पंथ ।
कहहिं संत कवि कोविद श्रुति पुरान सदग्रंथ ।।[1]

दुर्भाग्यवश यदि सज्जन कहीं बुरे फेर में फँसा लिए जाते हैं तो वे साँप की मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं अर्थात् वे दूसरों को प्रकाश ही देते हैं; दुष्टों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता--

विधि बस सुजन कुसंगत परहीं । फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ।।[2]

बुरे संग से हानि तथा अच्छे संग से लाभ ही होता है। पवन के संग (सत्संग) से धूल आकाश तक पहुँच जाती है, लेकिन वही धूल जल के कुसंग में फँस कर कीचड़ में धँस जाती है। इसी प्रकार कुसंग से धुआँ कालिख कहलाता है, लेकिन वही धुआँ जल, अग्नि और पवन के सत्संग से बादल बनकर जगत् को जीवन दान देता है--

हानि कुसंग सुसंगति लाहू । लोकहु वेद विदित सब काहू ।।
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा । कीचहिं मिलइ नीच कर संगा ।।
धूम कुसंगति कारिख होई । लिखिअ पुरान मंजु मसि होई ।।
सोइ जल अनल अनिल संघाता । होइ जलद जग जीवन दाता ।।
ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग ।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ।।[3]

यह सब कुसंग-सत्संग के द्वारा ही संभव है। बुरी संगति में पड़कर प्रत्येक वस्तु बुरी हो ही जाती है, उससे सबकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। कौन ऐसा है जिसे बुरी संगत ने अपने रंग में न रँगा हो ?

कौन कुसंगति पाहि नसाहीं । रहे न नीच मतैं चतुराई ।।[4]

इसीलिए तो कहा गया है--नरक में रहना अच्छा है परन्तु विधाता दुष्ट की संगति न दे--

बरुमल बास नरक कर दाता । दुष्ट संग जनि देहि विधाता ।।[5]

संतों की संगति सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। उनके दर्शन मात्र से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं--

संत दरस जिमि पातक टरई ।।[6]

---

1. उत्तर का., 33 ।
2. बाल का., 3.5 ।
3. वही, 7.4, 5, 6 ।
4. अयो. का., 24.4 ।
5. सु. का., 46.4 ।
6. किष्कि. का., 17.3 ।

बिना सत्संग किए विवेक जाग्रत नहीं होता और यह तभी संभव है जब ईश्वर की कृपा हो। सत्संगति आनन्द और कल्याण की जड़ है। सत्संग की सिद्धि ही फल है; और सब साधन तो फूल हैं—

बिनु सतसंग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।
सत संगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥[1]

सत्संग के द्वारा ज्ञान की वृद्धि होती है और कुसंग से हानि—

बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ॥[2]

सत्संगति से दुष्टों का स्वभाव भी सुधर जाता है जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है, सोना बन जाता है—

सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई ॥[3]

वस्तुतः सत्संग की महिमा निराली है। व्यक्ति को कुसंग त्याग कर सत्संग करना चहिए। यदि दुर्भाग्यवश कुसंग में पड़ भी जाए तो अलिप्त भावना से जल में कमलवत् या सर्पमणि की भाँति रहना चाहिए।

निष्कर्ष :

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने हर परिस्थिति का खुला चित्रांकन किया है। इन सूक्तियों के माध्यम से विदित होता है कि 'मनुष्य' को फल की अपेक्षा न रखते हुए सदैव कर्मरत रहना चाहिए। कविता ऐसी होनी चाहिए जो सुरसरि के समान सबके लिए बिना किसी भेदभाव के हितकारी हो। व्यक्ति को सदैव धैर्य के साथ हर परिस्थिति का सामना करते हुए संतोष वृत्ति को अपनाना चाहिए। संगति प्रभाव की झाँकी दर्शाते हुए गोस्वामी जी ने सत्संग की महिमा मंडित की है, तथा कुसंग से बचने के लिए सजग किया है। कुछ कार्य असंभव हुआ करते हैं और इनके साथ श्रम करना व्यर्थ होता है तथा प्रत्येक वस्तु का अपना निजी स्वभाव हुआ करता है—इन सत्यों को प्रस्तुत करने में भी गोस्वामी जी पीछे नहीं रहे हैं।

---

1. बाल का., 3.4।
2. किष्कि का., 15 'ख'।
3. बाल का., 3.5।

तृतीय खण्ड

13. सूक्ति-विषयक भाव-ग्रहण एवं मौलिकता

प्रत्येक लेखक अपने इर्द-गिर्द के वातावरण, प्रचलित साहित्य के कथ्य एवं भावानुभूतियों से प्रेरित होकर कृति का सृजन किया करता है । गोस्वामीजी भी इसके अपवाद नहीं कहे जा सकते । वे प्रकाण्ड पण्डित थे, अपने पूर्ववर्ती साहित्य एवं समकालीन स्थिति से अछूते न रह पाए थे । अपने 'मानस' को अति मंजुल बनाने के लिए उन्होंने संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों से अनेक पदों—अर्थ खण्डों तथा छन्दों का केवल उपयुक्त स्थलों में ही ग्रहण करके उनका सदुपयोग नहीं किया अपितु इस ग्रहण में अपनी अभिव्यक्ति की पूर्णता, कलात्मकता के साथ-साथ औचित्य, मर्यादा और सोद्देश्यता का भी सविशेष ध्यान रखा है । इससे उनकी बहुज्ञता, मर्मज्ञता और पाचन शक्ति का भी समर्थ परिचय प्राप्त हो जाता है ।

उन्होंने अपने 'मानस' में स्वयं स्वीकारा है—

(क) नाना पुरान निगमागमसम्मतं यद
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि[1]

(ख) मुनिन प्रथम हरि करति गाई ।
तेहि मगु चलत सुगम मोहिभाई ।।[2]

अति अपार जै सरित वर जै नृप सेतु कराहि ।
चढ़ि पिपीलिका परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं ।।[3]

इन सबसे ज्ञात होता है कि उन्होंने पूर्व ग्रन्थों का अवलोकन कर अपनी काव्य कृति को अनोखी काव्य कुशलता के माध्यम से छन्दबद्ध कर, स्वान्तःसुखाय बना, जनहिताय प्रस्तुत किया । उन्होंने अपनी मानस अटारी को बनाने के लिए कहीं अविकल, कहीं भावानुवाद तो कहीं अक्षरानुवाद के रूप में सहायता ली है और इस चूने-बजरी के सहयोग से अपने श्रमसाध्य मानस को अनुपम भवन बना दिया है । इसके लिए ऋण लेना वांछनीय भी था लेकिन यह भी देखना उचित है कि मानस में यह ऋण कितना है । इसी सन्दर्भ में उसकी मात्रा तथा कवि की मौलिकता का मूल्यांकन करना भी वांछनीय है ।

इस दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि मानस पर व्यापक रूप से भागवत का प्रभाव है, विशेषकर ग्रन्थ की योजना, राम के रूप वर्णन और कलिकाल निरूपण पर । 'उद्धवगीता' की तरह मानस में 'रामगीता' की भी योजना

---

1. बाल का., श्लोक 7 ।
2. वही, 13.5 ।
3. वही, 13 ।

की गई है । यों इसका ढाँचा 'अध्यात्म रामायण' पर खड़ा किया गया है, वाल्मीकि रामायण से केवल कहीं-कहीं उक्तियाँ लेकर अपने भावों को पुष्ट करने की चेष्टा की गई है । राम के बाल जीवन के लिए तुलसी 'भागवत' और 'अध्यात्म' के ही ऋणी हैं । 'प्रसन्न राघव' से सीता-राम वाटिका मिलन, परशुराम संवाद और अंगद-रावण संवाद की अनेक बातें ग्रहण की गई हैं । हनुमन्नाटक का प्रभाव अधिक व्यपक है । अंगद-रावण संवाद के लिए तो तुलसी इस ग्रन्थ के विशेष ऋणी हैं; इतना सब ऋण होने पर भी मानस बड़े अंश में मौलिक रह जाता है । यह मौलिकता निम्नलिखित रूपों में देखी जा सकती है—

(1) व्यापक रूप से सारे ग्रन्थ को राम भक्ति में डुबोकर लिखा गया है । यह दृष्टिकोण 'अध्यात्म रामायण' में भी नहीं है ।

(2) 'मानस' का चरित्र-चित्रण इतना मौलिक है कि उनके चरित्र वाल्मीकि रामायण और 'अध्यात्म रामायण' को बहुत पीछे छोड़ गए हैं । लगभग सभी चरित्रों को नया रूप मिला है ।

(3) बालकाण्ड का अधिकांश भाग मौलिक है । प्रारम्भ की कथाओं की बात जाने दीजिए, विवाह-प्रसंग दूसरे स्थानों पर इंगित मात्र है और तुलसी ने राम–सीता परिणय को इतने विस्तार से कहा है ।

(4) 'मानस' का 'अयोध्याकाण्ड' नितान्त मौलिक है । पूर्वार्द्ध का संघर्ष तुलसी की मौलिकता की छाप लिये है । उत्तरार्द्ध का भरत चरित्र तो उनका अपना है ही ।

(5) 'उत्तरकाण्ड' सर्वथा मौलिक है । तुलसी ने ज्ञान-विज्ञान के अनेक प्रसंग एवं सम्वाद उपस्थित किए हैं जिन पर अध्यात्म रामायण का प्रभाव अवश्य है, परन्तु दर्शन के प्रत्येक अंग पर तुलसी का अपना मौलिक मन्तव्य है ।

काव्य में प्रसादात्मकता और सुष्ठता के लिए तुलसी किसी के ऋणी नहीं हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि मानस अनेक ग्रन्थों का समाहार होते हुए भी तुलसी की मौलिकता पर कोई लांछन नहीं लाता ।[1]

उक्त कथन को कई अन्य विद्वानों ने भी स्वीकारा है—

(1) डॉ. बड़थ्वाल (पीताम्बरदास) लिखते हैं—"इसमें सन्देह नहीं कि गोस्वामीजी ने ऐसे (प्रकृति सम्बन्धी) अधिकांश स्थलों को अन्य ग्रन्थों से विशेषकर श्रीमद्भागवत से लिया है, परन्तु इससे उनका महत्व बढ़ता ही है, घटता नहीं । उन्होंने अपने ग्रन्थ का निर्माण लोक कल्याण के लिए किया है, अपने महत्व के लिए

1. रामरतन भटनागर : तुलसी साहित्य की भूमिका, पृ. 113–114 ।

नहीं । इसी से मौलिकता प्रदर्शन करने में उन्होंने नाना पुराण निगमागम सम्मत बात कहना अच्छा समझा ।"[1]

(2) डॉ. श्यामसुन्दर दास के शब्दों में—"श्रीराम कथा का आदि स्रोत 'वाल्मीकिरामायण' है । गोसाईंजी ने प्रधान आश्रय इसी ग्रन्थ का लिया था । आदि रामायणकार होने के कारण गोसाईंजी ने इन कवीश्वर की भी वंदना की है, और उन्हीं के साथ-साथ 'हनुमन्नाटककार' कपीश्वर की भी; क्योंकि हनुमन्नाटक से भी सहायता ली है । इसके अलावा योगवशिष्ठ 'अध्यात्म रामायण', 'महारामायण', 'भुशुण्डि रामायण', 'याज्ञवल्क्य रामायण', 'भगवद्गीता', 'श्रीमद्भागवत', 'भरद्वाज रामायण', 'प्रसन्न राघव', 'अनर्घ्य रामायण', 'रघुवंश' आदि सैकड़ों ग्रन्थों की छाया 'रामचरित-मानस' में मिलती है । परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि गोस्वामीजी ने 'रामचरितमानस' लिखने के लिए इन ग्रन्थों को पढ़ा था । वे राम के अनन्य भक्त थे इसलिए उन्होंने राम सम्बन्धी सभी लभ्य साहित्य पढ़ा था । सबके विवेकोचित त्याग और सारग्रहणमय अध्ययन से राम का जो मंजुल लोक रक्षक चरित्र उन्होंने निर्धारित किया उसी को उन्होंने 'रामचरितमानस' के रूप में जगत् के समक्ष रखा । इसी परित्याग और ग्रहण में उनकी मौलिकता है, जिसका रूप उनकी प्रबन्ध-पटुता के योग में अत्यन्त पूर्णता के साथ खिल उठा है ।"[2]

(3) श्री रामनरेश त्रिपाठी का कहना है—"संस्कृत के सैंकड़ों ग्रन्थों के श्लोकों को चुन-चुन कर, उनका रूपान्तर करके, उन्होंने 'मानस' में भर दिया है । कहीं-कहीं एक चौपाई के भाव किसी एक पुराण से लिये गए हैं तो उसकी आगे की चौपाई में किसी नाटक या नीति ग्रन्थ के भाव हैं । ऐसे स्थानों पर तो तुलसीदास के मस्तिष्क की महिमा देखते ही बनती है । मानों संस्कृत के सैकड़ों ग्रन्थों के लाखों श्लोकों पर एक सम्राट् की तरह उनका अधिकार था । वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वहीं नियुक्त कर देते थे ।"[3]

वस्तुतः गोस्वामीजी के समक्ष एक ही लक्ष्य मानस को सर्वोत्कृष्ट कृति बनाना था और इसी अभीष्ट को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने आधारग्रन्थों से कहीं पदादिकों का तो कहीं अर्थ व्यंजना के माध्यम से तथा कहीं भाव ग्रहण आदि के द्वारा इस लक्ष्य की पूर्ति कर डाली ।

लेकिन, यहाँ सूक्तियों के सन्दर्भ में उनकी मौलिकता का निरीक्षण प्रमुख विषय है, अतः सूक्ति चयन में गोस्वामीजी कितने खरे उतरते हैं, यह द्रष्टव्य है । उन्होंने सूक्तियों के उत्स के रूप में विशेषतः 'भागवत-पुरान', 'हितोपदेश',

---

1. तुलसी का काव्य सौन्दर्य, कल्याण 13/2, पृ. 969 ।
2. गोस्वामी का काव्य सौन्दर्य, कल्याण, 13/2, पृ. 991 ।
3. तुलसी और उनकी कविता, प्रथम भाग, पृ. 291 ।

'कठोपनिषद्', 'प्रसन्न राघव', 'अध्यात्म रामायण', 'शिवपुराण', 'गीता' इत्यादि ग्रन्थों को चुना है। उन्होंने कहीं अक्षरानुवाद, कहीं भावानुवाद तो कहीं अर्थसाम्य आदि के द्वारा अपने मानस में सूक्तियों को स्थान दिया है। प्रभाव ग्रहण करते हुए भी ये सूक्तियाँ मौलिकता लिये हुए अंकित की गई हैं। कहीं प्रसंग बदल कर उनका प्रयोग किया गया है तो कहीं प्रसंगानुकूल ही वे चित्रित कर दी गई हैं। 'भागवत' के दशम स्कन्ध का 20वाँ अध्याय इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वहाँ शरद्ऋतु एवं वर्षाऋतु वर्णन के अन्तर्गत ही सूक्तियाँ अधिक कही गई हैं जिसे मानसकार ने उसी प्रसंग में 'किष्किन्धाकाण्ड' में सँजो दिया है।

इतना ही नहीं, एक पंक्ति किसी अन्य ग्रन्थ की रखी है तो दूसरी किसी अन्य नाटक या पुराण की। लेकिन मौलिकता यही है कि वह वहाँ से ली हुई प्रतीत नहीं होती। कहीं-कहीं तो अक्षरानुवाद, अर्थानुवाद के साथ-साथ भाषानुवाद भी कर दिया है। सब शायद इस वजह से भी हो गया हो क्योंकि किसी वस्तु पर निरन्तर दृष्टिपात होता रहता है तो वह अपनापन लिये स्वयं आ उपस्थित होती है।

गोस्वामीजी ने 'मानस' में जिन सूक्तियों का प्रयोग किया है, वे मौलिक भी हैं और दूसरे ग्रन्थों से ग्रहण की हुई भी। उनकी ग्रहणशीलता में अपनापन का तत्व आकर मिल जाने से वे और अधिक कलात्मक हो उठी हैं। उन्होंने जो कुछ दूसरों से ग्रहण किया उसको यथास्थान जोड़-तोड़ कर ऐसे तरीके से रखा है कि उखड़ापन महसूस नहीं होता। उनकी पाचन शक्ति कमाल की ही थी।

'मानस' में प्रयुक्त सूक्तियों के प्रभाव-ग्रहण एव मौलिकता के सम्बन्ध में निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर विचार किया जा रहा है--

1. अपकीर्ति।
2. अवतार हेतु।
3. असाधारण-व्यक्तित्व।
4. आत्मा की अमरता।
5. आर्त जन।
6. ईश भजन।
7. उपकार वृत्ति।
8. कर्मानुसार फल की प्राप्ति।
9. कलि आधार : राम नाम।
10. कलिधर्म-निरूपण।
11. कलियुग में नाम स्मरण की महत्ता।
12. काने-खोरे-कूबरे।
13. कुदृष्टि : नारी के प्रति।
14. खल-प्रीति।

15. खल-स्वभाव ।
16. जीभ की सार्थकता ।
17. जीभ की गति : हरि शरण ।
18. ठकुर सुहाती कहना ।
19. दुष्ट-संसर्ग ।
20. दूत वध योग्य नहीं ।
21. दैववश : ग्रालसी जन ।
22. धर्म ।
23. नरदेह सार्थकता ।
24. नारी स्वभाव ।
25. पतिव्रता लक्षण ।
26. पर उपदेश ।
27. पराधीनता : ग्रसह्य दुख
28. पसन्दगी ।
29. प्रभु-प्रिय भक्त ।
30. प्रीति ।
31. बुध-जन गुण ।
32. भाग्य का लिखा ।
33. मानव-स्वभाव ।
34. मोक्षाधिकारी ।
35. रघुकुल वचन ।
36. वश से परे ।
37. विरले ।
38. शरणागत रक्षा ।
39. सन्त-प्रकृति ।
40. सन्त-भक्त-गुण ।
41. सहोदर (भ्राता) ।
42. सामर्थ्यवान् ।
43. सेवक-धर्म ।

1. ग्रपकीर्ति :

ग्रपकीर्ति किसी को भी सह्य नहीं होती । 'गीता' में कहा गया है—

ग्रकीर्ति चाप भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यत ।[1]

1. 'गीता', ग्रध्याय 2, श्लोक 34, पृ. 102 ।

गोस्वामीजी भी इस तथ्य की पुष्टि में कह उठे हैं—

सम्भावित कह अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू।[1]

2. अवतार हेतु :

'गीता' में कहा गया है कि जब-जब असुर-वृत्ति अधिक पनप उठती है तब-तब उस अदृश्य शक्ति का किसी न किसी रूप में प्रादुर्भाव हुआ करता है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत्।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाभ्यहम्॥
परित्राणय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥[2]

'भागवतपुराण' में धर्म ह्रास एव पाप वृद्धि पर ही भगवान का अवतार होना बताया गया है—

धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति।[3]
\+ \+ \+
यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पापान।
तदा तु भगवानाश आत्मानं सृजते हरिः।[4]

गोस्वामीजी ने यही बात शिवजी के मुख से कहलाई है—

जब जब होय धरम कै हानि। बाढहि असुर अधम अभिमानी।
तब तब प्रभु धरि मनुज सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
असुर मारि थापहि सुरन्ह, राखहि निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहि विशद जस, राम जन्म कर हेतु॥[5]

3. असाधारण व्यक्तित्व :

करोड़ों में कोई एकाध ही असाधारण व्यक्ति हुआ करते हैं। 'महारामायण' में इस सम्बन्ध में कहा गया है—

मुग्धे शृणुष्व मनुजो पि सहस्त्रमध्ये धर्मव्रती भवति सर्व समानशील।
तेष्वेव कोटिषु भवेद्विपये विरक्तः सद्वास की भवति कोटि विरक्तमध्ये॥
ज्ञानीषु कोटिषु नृजीवन को पि मुक्तः कश्चित सहस्र नरजीवनमुक्तमध्ये।
विज्ञानरूपविमलो ऽयथ ब्रह्म लीनस्तेष्वेव कोटिषु सकृत्खलु रामभक्तः॥[6]

---

1. अयो. का., 95।
2. गीता : अध्याय 4 श्लोक 7-8, पृ. 270।
3. श्रीमद्भागवत पुराण, द्वादश स्कन्ध, अध्याय 2, श्लोक 16।
4. वही, नवम स्कन्ध, अध्याय 24, श्लोक 56।
5. बाल का., 121.3,4।
6. महारामायण, श्लोक सं. 1-2।

'मानसकार' ने उक्त भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है—

नर सहस्र महं सुनहु पुरारी । कोउ एक होय धर्मव्रतधारी ।।
धर्मशील कोटिक मंह कोई । विषय विमुख विराग रत होई ।।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक् ग्यान सकृत कोउ लहई ।।
ग्यानवंत कोटिक महं कोउ । जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ ।
तिन्ह सहस्त्र महुं सब सुख खानी । दुर्लभ ब्रह्मलीन विग्यानी ।।
धर्म सील विरक्त अरु ज्ञानी । जीवन मुक्त ब्रह्म पर प्रानी ।।
सबते सो दुर्लभ सुरराया । राम भगति रत गत मद माया ।।[1]

4. आत्मा की अमरता :

आत्मा कभी विनष्ट नहीं होती । वह वस्त्र बदल कर नवीन रूप धारण कर लिया करती है । जैसे 'गीता' में कहा गया है—

वासांसि जीर्णनि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरो परानि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णन्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।[2]

मानसकार ने इसे यों व्यक्त कर दिया है—

जो तनु धरेउ तजेउ पुनि, अनायास हरियान ।
जिमि नूतन पट पहिरि के, नर परिहरे पुरान ।।[3]

यहाँ गोस्वामीजी ने 'गीता' के श्लोक का अक्षरशः अनुवाद कर डाला है । अन्तर इतना ही है कि गीता के प्रथम श्लोक में नूतन पट-धारण की बात कही गई है जबकि मानसकार ने अन्तिम चरण में यह बात दोहराई है । जहाँ 'गीता' में श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से यह तथ्य उच्चरित है वहाँ मानसकार ने काकभुशुण्डि के सन्दर्भ में यह बात कही है ।

5. आर्त-जन :

जो प्रायः दुखी रहते हैं, उनका मस्तिष्क स्वस्थतापूर्ण कार्य करने में अक्षम्य हो जाया करता है । वह प्रायः भूला-भूला सा रहने लगता है । 'पद्मपुराण' की यह सूक्ति देखिए—

विवेकेनहि नियुर्त्ता जायन्ते दुःखिनो जनाः ।[4]

यानि, दुखीजन विवेक से रहित हो ही जाते हैं ।

'पंचतन्त्र' में भी यही बात कही गई है—

प्रत्यासन्न विपत्ति मूढ मनसां प्रायोमतिः क्षीयते ।[5]

---

1. उत्तर का. 54.1,2,3,4 ।
2. गीता, द्वितीय अध्याय, श्लोक 22, पृ. 89 ।
3. उत्तर. का., 109 'ग' ।
4. पद्मपुराण, अष्टादश पर्व, श्लोक 47, पृ. 404 ।
5. पंचतंत्र, श्लोक 34, पृ. 569 ।—निहित हमारी परम्परा : वियोगी हरि ।

प्राय: विपत्ति पड़ने पर जो किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं, उनकी बुद्धि मन्द पड़ जाती है।

गोस्वामीजी ने इन्हीं भावों को इस प्रकार छन्दबद्ध कर दिया है--

रहे न आरत के चित चेतू।[1] आरत कहहि विचारि न काऊ।।[2]

इस तथ्य को परवर्ती कवियों ने भी अपनाया है। 'लोकायतन' में पंत कह उठे हैं--

दया व्यथा से विगलित चित नर महत् कर्म करने में अक्षम।[3]

6. ईश-भजन :

ईश प्राप्ति के लिए शुभ कर्मों के फलों को भी त्याज्य ठहराया गया है। गीता में कहा गया है—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभ परित्यागी, भक्ति मान्य: स मे प्रिय: ।।[4]

गोस्वामीजी ने भी ईश भजन में दृढ़ अनुरक्ति को श्रेष्ठता प्रदान की है, अपेक्षाकृत शुभ कर्मों के—

त्यागहि कर्म शुभाशुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक।[5]

7. उपकार वृत्ति :

परोपकारी जीव सदैव हितार्थ ही कार्य किया करते हैं। उनकी प्रत्येक वस्तु दूसरों के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत रहती है। वहाँ भेद-भाव और ईर्ष्या-द्वेष की गुंजायश नहीं रहती। 'श्रीमद्भागवत' में कहा गया है—जो पृथ्वी जेठ-आषाढ़ की गर्मी से सूख गई थी, वही अब वर्षा के जल से फिर हरी-भरी हो गई; जैसे तपस्या करते समय तपस्वी पहले तो दुर्बल हो जाता है, परन्तु जब उसे उसका फल मिल जाता है, तब वह सबल हो जाता है—

तप: कृशा देव मीढ़ा आसीद्वर्षीयसी मही।
यथेव काम्यतप सस्तनु: सम्प्राप्य तत्फलम्।।[6]

'मानसकार' ने इसी भाव को थोड़े हेरफेर के साथ इस प्रकार व्यक्त किया है—

---

1. अयो. का. 269.2।
2. वही, 258.1।
3. पंत : लोकायतन, पृ. 50।
4. गीता, अ. 12, श्लोक 17, पृ. 754।
5. उत्तर का. 41.4।
6. श्रीमद्भागवत् पुराण, दशम स्कन्ध, अ. 20, श्लोक 7, पृ. 72।

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी । उपकारी कै सम्पति जैसी ।[1]

यहाँ सम्पन्न (हरी-भरी) भूमि की उपकारी की सम्पत्ति से तुलना की है । भागवत्कार ने जहाँ तपस्या के फल से पृथ्वी की सम्पन्नता की तुलना की है वहाँ गोस्वामीजी ने उपकारी की सम्पत्ति के साथ ।

8. कर्मानुसार फल-प्राप्ति :

कोई भी कर्म जो किया जाता है, उसका फल भी वैसा ही मिला करता है । कहावत भी तो है 'बोया पेड़ बबूल का आम कहाँ ते खाय ।' अध्यात्म रामायणकार ने कहा है—

क: कस्य हेतुर्दु:खस्य कश्च हेतु: सुखस्य वा ।
स्वपूर्वाजितकर्मैव कारणं सुखदु:खयो: ।।
सुखस्य दु:खस्य न कोऽपि दाता परोददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाभिमान: स्वकर्मसूत्रग्रथितोहि लोक: ।।[2]

गोस्वामी जी का कथन है—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ।।[3]

अध्यात्म रामायण में यक्त किए गए विचारों से प्रभाव ग्रहण कर गोस्वामीजी ने संक्षेप में बहुत ही मार्मिक उक्ति कह दी है ।

9. कलि आधार : राम नाम

कलियुग अन्य युगों की अपेक्षा भगवत् साक्षात्कार के लिए सहज व सुगम बताया गया है । कारण, सतयुग के तप–ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजा पाठ आदि के सहस्र वर्षों तक करने पर भी ईश-दर्शन सुलभ नहीं हो पाता; वहाँ जीव कलियुग में सिर्फ हरिनाम स्मरण से ही भव पार हो जाता है ।[4] ऐसा कहा गया है कि कलियुग में तत्काल ही फल मिल जाया करता है । 'अध्यात्म रामायण' में कहा है—

राम नम्नैव मुक्ति: स्यात्कलीनान्येन केन चित् ।[5]

'मानस' में गोस्वामीजी ने बात को एक सूक्ति के माध्यम से इस प्रकार अभिव्यक्त किया है--

नहिं कलि करम न भगति विवेकू । राम नाम अवलंबन एकू ।।[6]
कलियुग केवल नाम अधारा । सुमिर सुमिर नर होवहिं पारा ।।

---

1. किष्कि. का. 15.3 ।
2. अध्यात्म रामायण, अयो. का., सर्ग 6, श्लोक 4–6, पृ. 87 ।
3. अयो. का. 92.2 ।
4. बाल का. 27 ।
5. अध्यात्म रामायण : अयो. का. सर्ग 5, श्लोक 27, 83 ।
6. बाल का. 27.4 ।

अध्यात्म रामायण में जहाँ इतना ही कहा है कि कलियुग में राम नाम से ही एकमात्र मुक्ति सम्भव है, वहाँ मानसकार ने उनके नाम का जाप ही भवपार का एकमात्र साधन बता दिया है। राम नाम की महत्ता दोनों में ही स्वीकारी गई है।

10. कलिधर्म-निरूपण :

चार युगों में से अन्तिम युग कलियुग माना गया है। प्रत्येक युग की कुछ विशेष वृत्तियाँ होती हैं। सतयुग में सतवृत्ति का प्राधान्य रहता है तो कलियुग में तामस वृत्ति का। 'विष्णु पुराण' में कलिधर्म-निरूपण इस प्रकार किया गया है--

लोलुपा ह्रस्व देहाश्च बहन्नादन तत्पराः।
बहु प्रजाल्प भाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ।।
उमाभ्यामपि पाणिभ्यां शिरः कण्डूयन्तं स्त्रियः।
कुर्वन्त्यो गुरु भर्तृणा मां ज्ञां भत्स्यन्त्यनादराः ।।
स्वपोषण पराः क्षुद्रा देह संस्कार वर्जिताः।
परुषानृत भाणिग्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रियाः ।।
दुःशीला दुष्ट शीलेषु कुर्वन्त्यत्सततं स्पृहाम।
असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषंषु कुलांगनाः ।।[1]

\+ + +

स्त्रीणां रूपमदश्चेव केशौरेवमविष्यति।
सुवर्ण मणिरत्नादी वस्त्रे चोपक्षयं गते।[2]
कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलङःकृता ।।[3]

\+ + +

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललित स्पृहाः ।।[4]
श्वश्रूश्वशुर भूयिष्ठा गुरवश्च तृणं कलौ।
श्यालाद्या हारिभार्याश्च सुहृदो मुनि सत्तम ।।[5]

'वाल्मीकि रामायण' का कलिधर्म-निरूपण कुछ अंश में 'मानस' के कलि-निरूपण से मेल खाता है। गोस्वामीजी ने इस प्रसंग में वाल्मीकि से भाव-ग्रहण किया है।[6] 'विष्णुपुराण' से तो कहीं-कहीं शब्दावली तक ले ली गई है—

---

1. विष्णु पुराण; षष्ठ अंश, प्रथम अध्याय, श्लोक, 28 से 31, पृ. 499।
2. वही, श्लोक 16, पृ. 498।
3. वही, श्लोक 17, पृ. 498।
4. वही, श्लोक 21, पृ. 499।
5. वही, श्लोक 55 पृ. 501।
6. वाल्मीकि रामायण, पृ. 7।

अबला कच भूषन भूरि छुधा । धन हीन दुःखी ममता बहुधा ।।
सुख चाहहि मूढ न धर्मरता । मति थोरि कठोरि न कोमलता ।।[1]

\+ + + +

गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी । भजहि नारि पर पुरुष अभागी ।।[2]

\+ + + +

ससुरारि पियारि लगी जबतें । रिपु रूप कुटुम्ब भए तब तें ।।[3]

11. कलियुग में नाम-स्मरण की महत्ता :

अन्य युगों की अपेक्षा भगवत्प्राप्ति का सुगम उपाय कलियुग में 'हरि नाम कीर्तन' है । इसमें तत्काल फल मिलता है । भागवत में कहा गया है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्ये को महान गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंङ्ग परं व्रजेत ।।
कृते यद ध्यायतो विष्णु त्रेतायां यजतो भरवै : ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात ।।[4]

गोस्वामीजी ने उक्त भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है--

कृत जुग त्रेता द्वापर, पूजा मष अरु जोग ।
जो गति होइ सो कलि हरि, नाम तें पावहिं लोग ।।

कृत जुग सब जोगी विग्यानी । करि हरिध्यान तरहिं भव प्रानी ।।
त्रेता विविध जग्य नर करहीं । प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं ।।
द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाय न दूजा ।।
कलियुग केवल हरि गुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ।।[5]

यहाँ गोस्वामी जी एवं भागवतकार दोनों ने चारों युगों में प्रभु प्राप्ति के साधनों का उल्लेख करते हुए कलियुग में हरिगुणगान को सर्वाधिक सुगम व सहज साधन बताया है ।

12. काने-खोरे-कूबरे :

कहा गया है कि अंग-विहीन व अंग-विक्षिप्त प्राणी किसी एक विशेष वृत्ति युक्त हुआ करते हैं । अन्धे आहट सुनने में बड़े चौकन्ने रहते हैं, बेडोल शरीरधारी

---

1. उत्तर का. 102.1 ।
2. वही, 99.2 ।
3. वही, 101.3 ।
4. श्रीमद्भागवतपुराण : 12वाँ स्कन्ध, अ. 3, श्लोक 51, 52 ।
5. उत्तर का. 102 'ख' तथा 103.1, 2 ।

कुटिल हुआ करते हैं। वाल्मीकि रामायण 'में कुब्जाएँ वक्र और पापिनी कही गई हैं--

शान्ति दु: संस्थिताः कुब्जाः वक्राः परमपापिका ।[1]

तुलसी ने कहा है—

कोने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय विसेपि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि ।।[2]

यहाँ गोस्वामी जी ने काने, लंगड़े एवं कूबड़ों को तो कुटिल-कुचाली बताया ही है, साथ में स्त्री और उसमें भी दासी को सम्मिलित कर सूक्ति को वाल्मीकि के कथन से अधिक व्यापक कर दिया है। इसी बात को प्रकारान्तर से गुप्तजी ने इस प्रकार कह दिया है—

नीच ही होते हैं बस नीच ।।[3]

13. कुदृष्टि (नारी के प्रति) :

कहा गया है कि किसी पर दृष्टि डाली भी जाए तो अच्छी ही डालनी चाहिए, जिसमें नारी जाति के प्रति तो बुरी भावना रखनी ही नहीं चाहिए; क्योंकि नारी वंदनीय मानी गई है। वह शक्ति है, माता है, देवी है। जो इनके प्रति श्रद्धावान नहीं होता वह निन्दा का पात्र है। 'अध्यात्म रामायण' में नारी-विषयक सामान्य नीति इस प्रकार बताई गई है—

दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा ।
सभा यो रमते तासामेकामपि विमूढधीः ।।
पातकी सतु विज्ञेयः स वध्यो राजभिः सदा ।
त्वं तु भ्रातुः कनिष्टस्य भार्या यो रमसे बलात् ।।[4]

'मानसकार' ने भी किंचित् परिवर्तन के साथ लगभग यही बात दोहराई है—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी । सुन सठ कन्या सम ए चारी ।
इन्हहिं कुदृष्टि विलोकहि जोई । ताहि बधे कछु पाप न होई ।।[5]

14. खल-प्रीति :

दुष्ट लोग अलबत्ता तो घनिष्टता ही किसी से नहीं रखते, अगर इस ओर हाथ बढ़ाते भी हैं तो इसमें भी उनकी स्वार्थपरता निहित रहती है। उनकी प्रीति

---

1. वाल्मीकि रामायण : अयो. का., सर्ग 9, श्लोक 40, पृ. 206।
2. अयो. का. 14 ।
3. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ. 35 ।
4. अध्यात्म रामायण, कि. का., सर्ग 2, श्लोक 60-61, पृ. 180 ।
5. किष्कि. का. 9.4 ।

अबला कच भूषन भूरि छुधा । धन हीन दुःखी ममता बहुधा ।।
सुख चाहहि मूढ न धर्मरता । मति थोरि कठोरि न कोमलता ।।[1]

\+ \+ \+ \+

गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी । भजहि नारि पर पुरुष अभागी ।।[2]

\+ \+ \+ \+

ससुरारि पियारि लगी जबतें । रिपु रूप कुटुम्ब भए तब तें ।।[3]

11. कलियुग में नाम-स्मरण की महत्ता :

अन्य युगों की अपेक्षा भगवत्प्राप्ति का सुगम उपाय कलियुग में 'हरि नाम कीर्तन' है । इसमें तत्काल फल मिलता है । भागवत में कहा गया है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्ये को महान गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंङ्ग परं व्रजेत ।।
कृते यद ध्यायतो विष्णु त्रेतायां यजतो भरवै : ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात ।।[4]

गोस्वामीजी ने उक्त भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

कृत जुग त्रेता द्वापर, पूजा मष अरु जोग ।
जो गति होइ सो कलि हरि, नाम तें पावहिं लोग ।।

कृत जुग सब जोगी बिग्यानी । करि हरिध्यान तरहिं भव प्रानी ।।
त्रेता विविध जग्य नर करहीं । प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं ।।
द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाय न दूजा ।।
कलियुग केवल हरि गुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ।।[5]

यहाँ गोस्वामी जी एवं भागवतकार दोनों ने चारों युगों में प्रभु प्राप्ति के साधनों का उल्लेख करते हुए कलियुग में हरिगुणगान को सर्वाधिक सुगम व सहज साधन बताया है ।

12. काने-खोरे-कूबरे :

कहा गया है कि अंग-विहीन व अंग-विक्षिप्त प्राणी किसी एक विशेष वृत्ति युक्त हुआ करते हैं । अन्धे आहट सुनने में बड़े चौकन्ने रहते हैं, बेडोल शरीरधारी

---

1. उत्तर का. 102.1 ।
2. वही, 99.2 ।
3. वही, 101.3 ।
4. श्रीमद्भागवतपुराण : 12वाँ स्कन्ध, अ 3, श्लोक 51, 52 ।
5. उत्तर का. 102 'ख' तथा 103.1, 2 ।

कुटिल हुआ करते हैं। वाल्मीकि रामायण 'में कुब्जाएँ वक्र और पापिनी कही गई हैं--

शान्ति दु: संस्थिता: कुब्जा: वक्रा: परमपापिका ।[1]

तुलसी ने कहा है—

कोने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि ।।[2]

यहाँ गोस्वामी जी ने काने, लंगड़े एवं कूबड़ों को तो कुटिल-कुचाली बताया ही है, साथ में स्त्री और उसमें भी दासी को सम्मिलित कर सूक्ति को वाल्मीकि के कथन से अधिक व्यापक कर दिया है। इसी बात को प्रकारान्तर से गुप्तजी ने इस प्रकार कह दिया है—

नीच ही होते हैं बस नीच ।।[3]

13. कुदृष्टि (नारी के प्रति) :

कहा गया है कि किसी पर दृष्टि डाली भी जाए तो अच्छी ही डालनी चाहिए, जिसमें नारी जाति के प्रति तो बुरी भावना रखनी ही नहीं चाहिए; क्योंकि नारी वंदनीय मानी गई है। वह शक्ति है, माता है, देवी है। जो इनके प्रति श्रद्धावान नहीं होता वह निन्दा का पात्र है। 'अध्यात्म रामायण' में नारी-विषयक सामान्य नीति इस प्रकार बताई गई है—

दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा ।
सभा यो रमते तासामेकामपि विमूढधी: ।।
पातकी सतु विज्ञेय: स बध्यो राजभि: सदा ।
त्वं तु भ्रातु: कनिष्टस्य भार्या यो रमसे बलात् ।।[4]

'मानसकार' ने भी किंचित् परिवर्तन के साथ लगभग यही बात दोहराई है—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी । सुन सठ कन्या सम ए चारी ।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकहि जोई । ताहि बधे कछु पाप न होई ।।[5]

14. खल-प्रीति :

दुष्ट लोग अलबत्ता तो घनिष्टता ही किसी से नहीं रखते, अगर इस ओर हाथ बढ़ाते भी हैं तो इसमें भी उनकी स्वार्थपरता निहित रहती है। उनकी प्रीति

---

1. वाल्मीकि रामायण : अयो. का., सर्ग 9, श्लोक 40, पृ. 206।
2. अयो. का. 14 ।
3. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ. 35 ।
4. अध्यात्म रामायण, कि. का., सर्ग 2, श्लोक 60-61, पृ. 180 ।
5. किष्कि. का. 9.4 ।

बिजली की चमक की भाँति अस्थिर ही होती है स्थायी नहीं रहती। श्रीमद्भागवत् में कहा है—यद्यपि बादल बड़े लोकोपकारी होते हैं फिर भी बिजलियाँ उनमें स्थिर नहीं रहतीं, ठीक वैसे ही जैसे चपल अनुराग वाली कामिनी स्त्रियाँ गुणी पुरुषों के पास भी स्थिर भाव से नहीं रहतीं—

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चल सौहृदाः।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिवित ।।[1]

गोस्वामी जी ने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

दामिनि दमक रही घन माहीं। खल की प्रीति यथा थिर नाहीं ।।[2]

यहाँ भागवत का अविकल भाषानुवाद सा कर गोस्वामी जी ने इस सूक्ति को प्रस्तुत कर दिया है। अन्तर केवल इतना सा है कि जहाँ भागवत के श्लोकों में व्यभिचारणी स्त्री से तुलना की गई है, वहाँ गोस्वामी जी ने दुष्टों की प्रीति का दामिनि की दमक (चंचलता) से साम्य बैठाकर अपनी सहृदयता एवं मौलिकता का परिचय दिया है।

15. खल-स्वभाव :

दुष्ट लोग अपनी क्षुद्रता पर भी इतराने लगते हैं। जिस प्रकार बरसाती क्षुद्र नदियाँ बड़ी उमड़-घुमड़ कर चलती हैं, उसी प्रकार खल भी जरा सी सम्पत्ति प्राप्त हो जाने पर अपने को कुबेर सा समझ बैठते हैं। इस मनोवृत्ति का चित्रण करते हुए भागवतपुराण में कहा गया है—

आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः।
पुंसोयथा स्वतन्त्रष्य देहद्रविण सम्पदः ।।[3]

गोस्वामी जी ने इसी भाव साम्य पर निम्न सूक्ति कही है—

क्षुद्र नदी भरि चली तोराई। जसु थोरेहु धन खल इतराई ।।[4]

16. जीभ की सार्थकता :

कहा जाता है कि यह मनुष्य योनि बड़ी दुर्लभ है। इसे पाकर भी ईश भजन न हुआ तो जन्म वृथा ही है! जिह्वा से सदैव प्रभु गुण-गान होता रहे, यही उस जिह्वा की सार्थकता है, अन्यथा पशु-पक्षी की जिह्वा एवं मनुष्य की जबान में अन्तर ही क्या है?

---

1. श्रीमद्भागवत पुराण, दशम स्कंध, अ. 20, श्लोक 17, पृ. 73।
2. किष्कि. का. 14.1।
3. श्रीभद्भागवतपुराण : दशम स्कंध, अ. 20, श्लोक 10, पृ. 72।
4. किष्कि. का. 14.3।

'भागवत्कार' ने निम्न श्लोक द्वारा यह तथ्य स्पष्ट किया है––

जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथा ।[1]

इसी भाव साम्य पर गोस्वामी जी ने निम्न सूक्ति कही है––

जो नहिं करिय राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ।।[2]

17. जीव की गति : हरि-शरण

जब व्यक्ति अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है तभी उसे सच्चा सुख एवं सन्तोष प्राप्त होता है । जीव का अभीष्ट अपने प्रभु का सामीप्य लाभ प्राप्त करना माना गया है । आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना ही उसकी चरम नियति है, जैसे नदियों का समुद्र में मिल जाना । भागवतपुराण में कहा गया है––

सारिद्भिः संङ्गतः सिन्धुश्चुक्षुभे श्वसनोर्भिमान् ।

अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुण युग्यथा ।।[3]

गोस्वामी जी ने इस श्लोक में प्रभाव ग्रहण कर बदले संदर्भ में अपनी बात कही है—

सरिता जल जलनिधि महुँ जाई । होय अचल जिमि जिव हरिपाई ।।[4]

18. ठकुर सुहाती कहना :

नीतिशास्त्र में कहा गया है कि सदैव प्रियकर वचन ही बोलने चाहिए लेकिन भय या प्रलोभन की भावना से प्रेरित होकर नहीं । हितोपदेश का यह कथन ध्यान देने योग्य है—

वैद्यो गुरुश्च मंत्री च यस्य राज्ञः प्रियंवदः ।

शरीर धर्मकोशेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ।।[5]

गोस्वामी जी ने इस तथ्य को इस प्रकार दोहराया है––

सचिव वैद गुरु तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय त्रास,

राज धर्म तन तीन कर होय वेग ही नास ।।[6]

जहाँ हितोपदेश में वैद्य, गुरु और सचिव का क्रम है वहाँ गोस्वामी जी ने सचिव, वैद्य और गुरु का क्रम रखा है । बहुत संभव है यह क्रम-परिवर्तन छंद की आवश्यकता के कारण किया गया हो ।

19. दुष्ट-संसर्ग :

दुष्टों का साथ किसी को भी हितकर नहीं होता । सभी दुष्ट-प्रवृत्ति से घबराते हैं । दुष्ट लोग हमेशा कार्य में बाधक बनते हैं ।

---

1. भागवत्पुराण, स्कन्ध 2, अ. 3, श्लोक. 20, पृ. 122 ।
2. बाल का. 113.3 ।
3. श्रीमद्भागवत पुराण, दशम स्कंध, अ. 20, श्लोक 14, पृ. 73 ।
4. किष्कि. का. 14.4 ।
5. हितोपदेश, कथा 8, 'विग्रह' श्लोक 104, पृ. 80 ।
6. सु. का. 37 ।

'पंचतन्त्र' में जहाँ भाग्य की रट कायर पुरुष को लगाते हुए दर्शाया है वहाँ गोस्वामीजी ने कायर मन का आधार दैव (भाग्य) ही ठहराया है।

गुप्तजी ने इंगित किया है कि जो कर्मशील हैं वे भाग्य को अधीनस्थ रखा करते हैं, स्वयं उसके अधीन नहीं रहते।

22. धर्म :

धर्म की महत्ता सर्वदा और सर्वत्र मानी गई है। धर्म सत्य के बल पर टिका रहता है। 'वाल्मीकि रामायण' में धर्म की प्रतिष्ठा सत्य में ही की गई है--

सत्यमेक पदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठित्
सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येना वाप्यते परम्।[1]
+ + +
धर्मोहि परलोके धर्मे सत्य प्रतिष्ठितम्।[2]

गोस्वामीजी ने भी इसी प्रकार से कहा है--

धरम न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥[3]

साकेत में गुप्तजी ने भी सत्य को सब धर्मों का सार बताया है--

सत्य ही सब धर्मों का सार॥[4]

23. नर-देह–सार्थकता :

मनुष्य योनि धारण करने पर भी ईश-प्राप्ति का प्रयत्न न किया जाए तो जन्म लेना ही व्यर्थ है। इस भवसागर को पार करने के लिए नर-तन जहाज है, सदगुरु कर्णधार है और ईश-कृपा सुलभ मार्ग है। 'भागवत्पुराण' में कहा गया है—

नृदेह माद्यं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम्।
मयानुकूलेन नमस्वतेरितं पुमान्भवाब्धि न तरेत्स आत्महा॥[5]

'मानसकार' ने इसी भाव को यों व्यक्त किया है--

नर तनु भव बारिधि कह बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।
करनधार सदगुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करिपावा॥
जो न तरे भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति पाइ॥[6]

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयो. का., सर्ग 13, श्लोक 7, पृ. 224।
2. वही, सर्ग 21, श्लोक 41, पृ. 429।
3. अयो. का. 95.3।
4. गुप्तजी, साकेत सर्ग 2, पृ. 49।
5. श्री मद्भागवत पुराण, स्कन्ध 11, अध्याय 20, श्लोक 17।
6. उत्तर का. 44.4।

इस देह को पाकर भी ईश भजन न किया जाए तो इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है ? अमृत-मणि के बदले विषयरत होकर कांच का टुकड़ा पकड़ने के समान ही होगा। इस श्लोक को देखिए--

जन्मेदं व्यर्थतां नीदं भव भोगोपलिप्सया ।
कांच मूल्ये न विक्रीतो हंत चिन्तामणिर्मया ।।[1]

गोस्वामीजी ने उक्त भाव को ग्रहण कर यह बात कह दी है--

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषयरत मंद मंदतर ।
काच किरिच बदले जिमि लेही। करते डारि परस मनि देही ।।[2]

24. नारी-स्वभाव :

पुरुष की अपेक्षा नारी के स्वभाव में कुछ वैशिष्ट्य होता है। चाणक्य ने नारी नीति के सात स्वाभाविक दोष गिनाए हैं--

अनृतं साहस माया मूर्खत्वमतिमलोमता ।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजा ।।[3]

गोस्वामीजी ने भी इसी क्रम में स्त्री में निहित आठ अवगुणों का उल्लेख किया है--

नारि स्वभाव सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं ।।
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया ।।[4]

रावण द्वारा कथित तुलसीदासजी की यह चौपाई उपर्युक्त श्लोक का अनुवाद सी लगती है। अन्तर इतना ही है कि अतिलोमता के स्थान पर चपलता और भय दो अवगुण गिनाए हैं। इस प्रकार अवगुणों की संख्या में एक की वृद्धि कर दी गई है।

25. पतिव्रता-लक्षण :

अपने पति की मन, वचन, कर्म से सेवा करना तथा उसकी आज्ञा शिरोधार्य करना पतिव्रता का मुख्य धर्म माना गया है। अपने इस धर्मपालन से ही वह उस पद को प्राप्त कर लेती है जिसे ऋषि-मुनि लाखों वर्ष तपस्या करके पाने की लालसा बनाए रखते हैं--

विष्णुपुराण के एक श्लोक में यह भाव दर्शाया गया है—

योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा ।
तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजा ।।[5]

---

1. वाराह पुराण।
2. उत्तर का. 121.6।
3. चाणक्यनीति दर्पण, अ. 2, पृ. 8।
4. लंका का. 16.1, 2।
5. विष्णुपुराण : अंश षष्ठ, अध्याय 2, श्लोक 28, पृ. 504।

गोस्वामीजी ने भी इस भाव को इस प्रकार छन्दवद्ध कर दिया है—

विनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छांडि छल गहई।[1]

+ + +

सहज श्रपावन नारि पति सेवत शुभ गति लहइ ।।[2]

पतिव्रता कई प्रकार की बताई गई हैं जिनमें प्रमुख चार का उल्लेख शिव-महापुराण एवं रामचरितमानस में किया गया है। 'शिवमहापुराण' में यह उल्लेख इस प्रकार श्राया है—

चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः।
उत्तमादि विभेदेन स्मरतां पापाहारिका ।।
उत्तमा मध्यमा चैव निकृष्टातिनिकृष्टि का।
ब्रुवे तासां लक्षणानि सावधानतया शृणु ।।
स्वप्नेपि यन्मनो नित्यं स्वपति पश्चयतिध्रुवम्।
नान्यम्परपति भद्रे उत्तमासा प्रकीर्तिता ।।
या पितृमातृ सुतवतं परम्पश्यति सद्धिया।
मध्यमा साहि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ।।
बुद्ध स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न।
निकृष्टा कथिता साहि सुचरित्रा चपार्वति ।।
पत्युः कुलस्थ च भया द्वयनिचारं करोति न।
पतिव्रता घमा साहि कथिता पूर्वं सूरिभिः ।।
चतुर्विधा श्रपि शिवे पाप हन्त्र्यः पतिव्रताः।
पावनास्सर्वं लोकनाभिहामुत्रपि हृपिता ।।[3]

गोस्वामीजी ने उक्त तथ्य को भाषानुवाद कर 'मानस' में इस प्रकार चित्रित कर दिया है—

जग पतिव्रता चारि विधि श्रहहीं। वेद पुरान संत श्रस कहहीं ।।
उत्तम के श्रस बस मन माहीं। सपनेहु श्रान पुरुष जग नाहीं ।।
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ।।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति श्रस कहही ।।
विनु श्रवसर भय तें रह जोई। जानेहु श्रधम नारि जग सोई ।।
पति वंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई ।।[4]

---

1. श्रर. का. 5.9।
2. श्रर. का. 5 'क'।
3. 'शिवमहापुराण' : रु. सं. 2, पार्वती खण्ड 3, श्रध्याय 54, श्लोक 72, से 77, पृ. 325।
4. श्रर. का. 5,6,7,8।

यहाँ गोस्वामीजी ने प्रसग अवश्य बदल दिया है। शिवमहापुराण में जहाँ पार्वती विवाह पर एक ब्राह्मणी उनको उपदेश देती है वहाँ मानसकार ने सीता वनगमन पर सती अनुसुइया के द्वारा पातिव्रत धर्म महिमा का उपदेश सीता को निमित्त बनाकर जगत-हितार्थ दिया है। भावानुवाद होते भी गोस्वामीजी ने इसे अधिक मार्मिक बना दिया है।

पतिव्रत धर्म-महिमा के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों में और भी कई उल्लेख मिलते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में कहा गया है—

दुश्शीलो दुर्मगो वृद्धो जढो रोग्य धनोऽपि।
पतिः स्त्री भिन हातव्य लोकेप्सुभिर पातकी ।।[1]

शिवपुराण में कहा पया है—

क्लीग्रम्वा दुरवस्थम्वा व्याधितं वृद्धमेव च।
सुखितं दुःखितं वापि पतिमैकं न लंघयैत ।।[2]

बाल्मीकि रामायण में उल्लेख है—

दुःशीलः काम वृत्तो वाधनैर्वा परिवर्जितः
स्त्रीणाभार्य स्वभावानां परमं दैवतं पतिः[3]

गोस्वामीजी ने इन सबको अवश्य देखा होगा।

पउम चरिय में पातिव्रत धर्म की महत्ता एक वाक्य में इस प्रकार दर्शाई है—

विकरनि तुम्हारउ वुत्तउ। पहु-छन्देण अजुत्तुवि जुत्तउ।[4]

पति के स्वार्थ के लिए अनुचित भी उचित होता है।

पातिव्रत धर्म के सम्बन्ध में उनका कथन है—

वृद्धरोग वस जड़ धनहीना। अंध वधिर क्रोधी अतिदीना।
ऐसेहु पति कर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।[5]

यहाँ भावों की समानता देखी जा सकती है। जो स्त्री पति का अपमान कर सुख की अभिलाषा करती है वह उसकी अधिकारिणी नहीं, वह तो कल्पों तक नरक भोगने की पात्री है, जैसा कि 'शिवपुराण' में कहा है—

मितन्ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः।
अमित स्यहि दातारां भर्त्तारम्पूजयेत्सदा ।।[6]

---

1. श्रीमद्भागवत पुराण, स्कध 10, अ. 29, श्लोक 25, पृ. 96।
2. शिवमहापुराण : रु. सं. 2, पार्वती खण्ड, 3 अ. 54, श्लोक 31, पृ. 323।
3. वाल्मीकि रामायण : अयो. का. सर्ग 11, श्लोक 24, पृ. 486।
4. स्वयंभू विरचित : पउमचरिय, घत्ता 9, पृ. 352।
5. रा. च. मा. : अर. का. 5.4,5।
6. शिवमहापुराण : रु. ख. 2, पार्वती खंड 3, अ. 54, श्लोक 50, पृ. 323।

गोस्वामीजी ने भी इस भाव को इस प्रकार छन्दबद्ध कर दिया है—

बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छांडि छल गहई ।[1]

+ + +

सहज अपावन नारि पति सेवत शुभ गति लहइ ।।[2]

पतिव्रता कई प्रकार की बताई गई हैं जिनमें प्रमुख चार का उल्लेख शिव-महापुराण एवं रामचरितमानस में किया गया है । 'शिवमहापुराण' में यह उल्लेख इस प्रकार आया है—

चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः ।
उत्तमादि विभेदेन स्मरतां पापाहारिका ।।
उत्तमा मध्यमा चैव निकृष्टातिनिकृष्टि का ।
ब्रुवे तासां लक्षणानि सावधानतया शृणु ।।
स्वप्नेपि यन्मनो नित्यं स्वपति पश्चयतिध्रुवम् ।
नान्यम्परपति भद्रे उत्तमासा प्रकीर्तिता ।।
या पितृमातृ सुतवतं परम्पश्यति सद्धिया ।
मध्यमा साहि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ।।
वुद्ध स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न ।
निकृष्टा कथिता साहि सुचरित्रा चपार्वति ।।
पत्युः कुलस्थ च भया द्वयनिचारं करोति न ।
पतिव्रता घमा साहि कथिता पूर्व सूरिभिः ।।
चतुर्विधा अपि शिवे पाप हन्त्र्यः पतिव्रताः ।
पावनास्सर्वं लोकनाभिहामुत्रपि ह्रपिता ।।[3]

गोस्वामीजी ने उक्त तथ्य को भाषानुवाद कर 'मानस' में इस प्रकार चित्रित कर दिया है—

जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं । वेद पुरान संत अस कहहीं ।।
उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं ।।
मध्यम परपति देखइ कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ।।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई । सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहही ।।
बिनु अवसर भय तें रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ।।
पति वंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ।।[4]

---

1. अर. का. 5.9 ।
2. अर. का. 5 'क' ।
3. 'शिवमहापुराण' : रु. सं. 2, पार्वती खण्ड 3, अध्याय 54, श्लोक 72, से 77, पृ. 325 ।
4. अर. का. 5.6,7,8 ।

यहाँ गोस्वामीजी ने प्रसग अवश्य बदल दिया है। शिवमहापुराण में जहाँ पार्वती विवाह पर एक ब्राह्मणी उनको उपदेश देती है वहाँ मानसकार ने सीता वनगमन पर सती अनुसुइया के द्वारा पातिव्रत धर्म महिमा का उपदेश सीता को निमित्त वनाकर जगत-हितार्थ दिया है। भावानुवाद होते भी गोस्वामीजी ने इसे अधिक मार्मिक वना दिया है।

पतिव्रत धर्म-महिमा के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों में और भी कई उल्लेख मिलते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में कहा गया है—

दुश्शीलो दुर्मगो वृद्धो जढो रोग्य धनोऽपि।
पतिः स्त्री भिन हातव्य लोकेप्सुभिर पातकी ।।[1]

शिवपुराण में कहा पया है—

क्लीग्रम्वा दुरवस्थम्वा व्याधितं वृद्धमेव च।
सुखितं दुःखितं वापि पतिमैकं न लंघयैत ।।[2]

वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है—

दुःशीलः काम वृत्तो वाधनैर्वा परिर्वजितः
स्त्रीणाभार्य स्वभावानां परमं दैवतं पतिः[3]

गोस्वामीजी ने इन सबको अवश्य देखा होगा।

पउम चरिय में पातिव्रत धर्म की महत्ता एक वाक्य में इस प्रकार दर्शाई है—

विकरनि तुम्हारउ वुत्तउ। पहु-छन्देण अजुत्तुवि जुत्तउ।[4]

पति के स्वार्थ के लिए अनुचित भी उचित होता है।

पातिव्रत धर्म के सम्बन्ध में उनका कथन है—

वृद्धरोग वस जड़ धनहीना। अंध वधिर क्रोधी अतिदीना।
ऐसेहु पति कर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।[5]

यहाँ भावों की समानता देखी जा सकती है। जो स्त्री पति का अपमान कर सुख की अभिलाषा करती है वह उसकी अधिकारिणी नहीं, वह तो कल्पों तक नरक भोगने की पात्री है, जैसा कि 'शिवपुराण' में कहा है—

मितन्ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः।
अमित स्यहि दातारां भर्त्तारम्पूजयेत्सदा ।।[6]

---

1. श्रीमद्भागवत पुराण, स्कंध 10, अ. 29, श्लोक 25, पृ. 96।
2. शिवमहापुराण : रु. सं. 2, पार्वती खण्ड, 3 अ. 54, श्लोक 31, पृ. 323।
3. वाल्मीकि रामायण : अयो. का. सर्ग 11, श्लोक 24, पृ. 486।
4. स्वयंभू विरचित : पउमचरिय, घत्ता 9, पृ. 352।
5. रा. च. मा. : अर. का. 5.4,5।
6. शिवमहापुराण : रु. ख. 2, पार्वती खंड 3, अ. 54, श्लोक 50, पृ. 323।

गोस्वामीजी ने इसी भाव को यों व्यक्त किया है--

मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राज कुमारी।
अमितदानि भर्त्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥[1]

वस्तुतः नारी धर्म पति सेवा ही है। जो इससे विमुख जाती है वह नारी पतिव्रता कहलाने की अधिकारिणी नहीं।

परवर्ती कवियों ने भी इस आशय को महत्ता प्रदान की है। साकेत में गुप्तजी ने एक ही पंक्ति में सब कुछ कह दिया है--

पति ही पत्नी की गति है।[2]

26. पर-उपदेश

कुछ व्यक्ति ऐसे हुआ करते हैं जिनकी कथनी-करनी में अन्तर होता है। जो बात वे सिद्धान्त रूप में पसन्द करते हैं उसे व्यावहारिक जीवन में लागू करने के आदी वे नहीं होते। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि भारवि की यह उक्ति देखिए—

परोपदेश कुशला दृश्यन्ते बहवोजनाः।
स्वभाव मति वर्तन्तः सहस्रेष्वपि दुर्लभा ॥[3]

राघवपाण्डवीय (धनंजय) का भी कहना है कि—

भवन्ति सुव्यक्त मनात्मवदिनः।
पारेपदेशेषु विशेष पण्डिता ॥[4]

'सुदर्सण चरिउ' में कहा गया है—

पर उवएसु दितु बहु जाणउ ॥[5]

दूसरों को उपदेश देना बहुत लोग जानते हैं। तुलसीदासजी भी यही कहते हैं—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे ॥[6]

इस प्रसंग में गोस्वामीजी अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित दिखाई देते हैं--
परवर्ती कवियों ने भी इस भाव को अपनाया है। निम्न कथन देखिए--

---

1. रा. च. मा., अर. का. 5.3।
2. गुप्तजी, साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ. 83।
3. सुभाषित रत्नभाण्डागार, 'स्वभाव वर्णन', प्रकरण 2 श्लोक 4, पृ.87।
4. राघवपाण्डवीय 7/29।
5. सुदर्सण चरिउ (हस्तलिखित प्रति जो अमेर में है) :
उद्धृत अपभ्रंश साहित्य--प्रो० हरिवंश कोछड़।
6. लंका का. 78.1।

कोटि करै उपदेश खरी । हरिचन्द कहै किन जाइ के तासो ।।
सौ बनि पंडित ज्ञान सिखावत । कूबरी हू नहिं अचरी जासो ।।[1]

27. पराधीनता : असह्य दुख

पराधीनता में सभी भयभीत हो उठते हैं, क्योंकि वहाँ किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं रहती । वहाँ स्वप्न में भी सुख की कल्पना नहीं की जा सकती—

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।[2]

इस तथ्य को परवर्ती कवियों ने भी स्वीकारा है । पंत जी की यह उक्ति देखिए—

पराधीन को सपने में भी ठीक कहा हरि,
सुलभ कहां सुख ।।[3]

दीनदयाल गिरि ने भी कहा है—

पराधीन दुख महा, सुख जग में स्वाधीन ।
सुखी रमत सुक वन वसे कनक पींजरे दीन ।।[4]

रामनरेश त्रिपाठी ने भी ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं—

पराधीन रहकर अपना सुख शोक न कह सकता है,
यह अपमान जगत में केवल पशु ही सह सकता है,
पराधीनता से बढ़ जग में नहीं दूसरा दुख है ।[5]

28. पसंदगी :

जो जिसे पसन्द करता है, वह उसी में निमग्न हो जाता है—

ज जसु मणिट्ठु त तासु लग्गु ।[6]

यानि जो जिसको अभीष्ट होता है वह उसी में रत होता है । गोस्वामीजी ने भी यही कहा है—

जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।।[7]

यहाँ भावों की समानता द्रष्टव्य है ।

---

1. प्रेममाधुरी 78 । उद्धृत—भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि : किशोरीलाल गुप्ता, पृ. 322 ।
2. बाल का. 102.3 ।
3. पंत : लोकायतन, पृ. 50 ।
4. दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, पृ. 77 ।
5. रामनरेश त्रिपाठी, पथिक, पृ. 48 ।
6. पउमसिरी चरिउ : 'दिव्यदृष्टि धाहिल' उद्धृत अपभ्रंश साहित्य : कोछड़, पृ. 205 ।
7. बाल का. 5.5 ।

29. प्रभु-प्रिय-भक्त :

भक्त चार प्रकार के बतलाये गए हैं। अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु एवं ज्ञानी। गीता में कहा गया है--

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥[1]
+ +
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स चमम प्रियः॥[2]
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्॥[3]

गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसी भावसाम्य पर निम्न सूक्ति कही है--

रामभगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनध उदारा।
चहुँ चतुर कहु नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि विशेपि प्यारा॥[4]

30. प्रीति :

बैर और प्रीति किसी के छिपाए नहीं छिपते। इस बात को गोस्वामीजी ने इस प्रकार कहा है--

बैर प्रेम नहिं दुरहिं दुराये॥[5]

परवर्ती कवियों ने गोस्वामीजी के इस भाव साम्य पर कई सूक्तियाँ कही हैं--

कैसे समझे नहीं? प्रेम छिपता है कभी छिपाये।
कुल वामा क्या करे, किन्तु जब यह विपत्ति आ जाय॥[6]

तथा--

छिपाये छिपत न नैन लगे
कितनो करो दुराव दुरत नहिं जब ये प्रेम पगे
+ + +
दुरत न लाख दुराओं कोउ प्रेम झलक की ज्योति॥[7]

1. बुध-जन-गुण :

विद्या पाकर व्यक्ति को विनम्र बनना चाहिए, तभी उसके अध्ययन की सार्थकता है। 'भागवत पुराण' में कहा गया है कि जिस प्रकार वायु से प्रेरित होकर बादल प्राणियों के हितार्थ अमृत वृष्टि करते हैं ठीक उसी प्रकार ब्राह्मणों की प्रेरणा से धनी लोग समय-समय पर दान के द्वारा प्रजा की अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं--

---

1. गीता, अध्याय 7. श्लोक 16, पृ. 506।
2. वही, श्लोक 17, पृ. 506।
3. वही, श्लोक 18, पृ. 506।
4. बाल का. 22.3,4।
5. अयो. का. 264.1।
6. दिनकर : उर्वशी, पृ. 25।
7. श्री बृजरत्नदास : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. 262।

व्यभुन्वन् वायुभिनु`न्ना भूतेभ्योऽथामृतं धनाः ।
यथाऽऽशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः ।।[1]

गोस्वामीजी ने इसी भाव को ग्रहण कर निम्न सूक्ति कही है—

वरषहिं जलद भूमि निग्रराए । जथा नर्वाह बुध विद्या पाए ।।[2]

जहाँ 'भागवतपुराण' में ब्राह्मण, धनी लोग एवं प्रजा आदि का वर्णन है, वहाँ गोस्वामीजी ने बुध एवं विद्या का योग विठाया है । इस परिवर्तन से भागवतकार की अपेक्षा गोस्वामीजी की सूक्ति अधिक मार्मिक बन गई है ।

32. भाग्य-लेख :

कहते हैं जो नसीब में लिखा होता है, वह होकर ही रहता है, भावी (नियति) होनी को कोई भी नहीं टाल पाता । होनी होकर ही रहती है । 'महापुराण' में कहा गया है कि ललाट में लिखे को कौन पोंछ सकता है--

को त पुसइ णिडालइ लिहियउ ।[3]

गोस्वामीजी ने भी यही बात कही है—

कह मुनीस हिमवंत सुन जो विधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोइ न मेटन हार ।।[4]

यहाँ गोस्वामीजी ने 'महापुराण' का भावाशय तो जरूर ग्रहण किया है लेकिन उसकी पुष्टि देव, दनुज नार, नाग के सन्दर्भ में कर मौलिकता का परिचय दिया है ।

33. मानव-स्वभाव :

यह मानव-स्वभाव है कि वह अपनी वस्तु को श्रेष्ठ मानकर हर्षित होता है, दूसरों की प्रशंसा पर हर्षित होने वाले व्यक्ति संसार में बहुत कम हैं । 'प्रसन्नराघव नाटक' में कहा गया है--

अपिमुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः ।
परमणितिपुतोषं यान्ति सन्तः कियन्तः ।।[5]

उक्त कथन का भाव-साम्य गोस्वामीजी की निम्न सूक्ति में लक्षित हो रहा है--

---

1. श्रीमद्भागवतपुराण : स्कंध 10, अध्याय 20, श्लोक 24, पृ. 73 ।
2. किष्कि. का. 14.2 ।
3. पुष्पदन्त महापुराण 24.8,8 निहित अपभ्रंश साहित्य : हरिवंश कोछड़, पृ. 92 ।
4. बाल का. 68 ।
5. प्रसन्नराघव, 1/19, पृ. 5 ।

निज कवित्त केहि लागि न नीका । सरस होय अथवा अति फीका ।
जे पर भनित सुनत हरषाहीं । ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ।।[1]

34. मोक्षाधिकारी :

प्रत्येक वर्ण का चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, ईश्वर के प्रति सत्यनिष्ठा रखने पर उनका प्रिय एवं उत्तम गति का पात्र बन सकता है, जैसा कि 'गीता' में श्रीकृष्ण ने कहा है--

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।।[2]

उक्त सूक्ति के भावसाम्य पर गोस्वामीजी ने निम्न बात कही है--

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ।।[3]

35. रघुकुल-वचन :

कुछ परम्पराएँ कुल-परक भी हुआ करती हैं । कुल में सदैव से चली आ रही परम्पराओं को अगली पीढ़ी में कायम रखने की कोशिश रहा करती है । रघुकुल में सत्यवादी अधिक हुआ करते थे । उनका लक्ष्य था प्राण उत्सर्ग भले ही हो जाए पर वचन प्रतिज्ञा भंग नहीं की जाए ।

मानसकार ने दशरथ के मुख से इस बात को इन पंक्तियों में कहलाया है--

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाय बरु वचन न जाई ।।[4]

परवर्ती कवियों ने भी इस तथ्य को स्वीकारा है । मैथिलीशरण गुप्त भी अपने 'साकेत' में यही बात दोहराते गए हैं--

पर रघुकुल में बचन दिया जाता है ।
लौटा कर वह कब कहाँ लिया जाता है ।।[5]

36. वश से परे :

नारी, राजा एवं शास्त्र को कोई भी वशीभूत नहीं कर पाया । ये चाहे कितने ही समीप क्यों न हों, अर्थात् इनके साथ कितनी भी घनिष्ठता क्यों न हो, ये काबू से बाहर हो ही जाया करते हैं । वाल्मीकि रामायण में कहा गया है--

शास्त्रं सुचिन्तित मपि प्रतिचिन्तनीयं ।
स्वराधितोऽपि नृपतिः परिश यङ्कनीः।

---

1. रामचरितमानस, बाल का. 264.1 ।
2. गीता, अध्याय 9, श्लोक 32, पृ. 603 ।
3. उत्तर का. 87 'क' ।
4. अयो. का. 28.2 ।
5. गुप्तजी, साकेत, सर्ग 8, पृ. 186 ।

अङ्के स्थिताऽपि युवती परिरक्षणीया ।
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम् ।।[1]

इस तथ्य की हूबहू पुष्टि गोस्वामी जी 'मानस' में इस प्रकार से करते नजर आते हैं––

शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ।
राखिय नारि जदपि उर माहीं । युवती शास्त्र नृपति बस नाहीं ।।[2]

37. विरले पुरुष :

कुछ व्यक्ति विशेष गुण युक्त होते हैं जो असाधारणता की कोटि में भी लिये जा सकते हैं । सामान्यतः बातों से कुछ विशेष की ओर इनका अधिक झुकाव रहता है । वाल्मीकि रामायण में मारीच ने रावण से ऐसे पुरुषों के बारे में कुछ इस प्रकार कहा है––

सुलभा पुरुषा राजन सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोक्तं च दुर्लभः ।।[3]

'रामचरितमानस' में यही बात इस प्रकार दोहराई गई है—

प्रिय बानी जे सुनहि जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ।
वचन परम प्रिय सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहि ते नर प्रभु थोरे ।।[4]

यहाँ भाषानुवाद स्पष्ट है । 'वाल्मीकि रामायण' में उक्त बात मारीच ने रावण से कही है पर 'मानस' में यह बात प्रहस्त के मुख से कहलाई गई है ।

38. शरणागत रक्षा :

शरण में आए हुए की रक्षा करना परम कर्त्तव्य माना गया है । वाल्मीकि रामायण में कहा गया है––

आर्तो वा यदि वा दृप: परेषा शरणागतं ।
अरि: प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यं कृतात्मना ।।[5]

गोस्वामी जी ने भी स्वीकारा है कि शरणागत की रक्षा न करने वाले को कोटि विप्रवध का पाप लगता है । उनकी विभीषण-प्रसंग में कही गई यह सूक्ति देखिए––

कोटि विप्र बध लागिय जाहू । आए सरन तजहु नहिं ताहु ।।
जो सभीत आवा सरनाई । रखिहउं ताहि प्रान की नाई ।।[6]

---

1. अर. का.
2. वही, 37.4, 5 ।
3. वाल्मीकि रामायण, 37/2 ।
4. लंका का. 9.4, 5 ।
5. वाल्मीकि रामायण, युद्ध का., सर्ग 18, श्लोक 28, पृ. 1094 ।
6. सु. का., 44.1 ।

39. संत-प्रकृति :

संतों का जीवन परोपकारार्थ ही होता है। वे सहनशीलता की प्रतिमूर्ति होते हैं। भागवतपुराण में कहा गया है कि जिस प्रकार मूसलाधार वर्षा की चोट खाते रहने पर भी पर्वतों को कोई व्यथा नहीं होती उसी प्रकार प्रभु-प्रेम में निमग्न संत व्यक्ति दूसरों द्वारा सताये जाने पर भी कभी व्यथित नहीं होते--

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
अभिभूय माना व्यसनैर्यथा घोक्षज चेतसः॥[1]

गोस्वामी जी ने इन्हीं भावों को निम्न सूक्ति में इस प्रकार व्यक्त किया है —

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे॥[2]

40. संत-भक्त गुण :

कुछ विशेष वृत्तियों (गुणों) के धारण करने पर व्यक्ति भक्त या संत की कोटि में आ जाता है। 'गीता' के निम्न श्लोक में कुछ गुण इस प्रकार गिनाए गए हैं —

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च॥
निर्ममो निरहंकारः सम दुःख सुखः क्षमी॥13॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ निश्चयः॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥14॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयः स च मे प्रियः॥15॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथाः॥
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्त स मे प्रिय॥16॥
समः सत्रौ च मित्रै च तथा मानापमानयोः॥
शीतोष्ण सुख दुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥18॥
तुल्यनिन्द स्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्॥
अनिकेतः स्थिर मतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥19॥
ये तु धर्म्यामृतमिद यथोक्तं पर्युपासते॥
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः। 20॥[3]

गोस्वामी जी ने 'गीता' से प्रभावित होकर 'मानस' में संतों एवं भक्तों के गुणों की चर्चा इस प्रकार की है--

---

1. श्रीमद्भागवत पुराण, स्कन्ध 10, अध्याय 20, श्लोक 15, पृ. 73।
2. किष्किन्धा का. 14.2।
3, गीता अध्याय 12, श्लोक 13, 14, 15, 16, 18, 19, 20 : पृ. 754।

विषयअलम्पट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ।।
सम अमूत रिपु बिमद विरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ।।
कोमल चित दीनन पर दाया । मन क्रम वचन भगति अमाया ।।
सबहि मान प्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ।।
सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धरम जनचित्री ।।
बिगत काम मम नाम परायन । शान्ति बिरति विनती मुदितायन ।।
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात सन्त सन्तत फुर ।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष बचन कबहू नहिं बोलहिं ।।
निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुन मन्दिर सुख पुंज ।।[1]

41. सहोदर (भ्राता) :

सहोदर का तात्पर्य है जिसका जन्म एक ही उदर से हुआ हो। सहोदर 'भ्राता' किसी भी कीमत पर नहीं खरीदा जा सकता । पद्मपुराण में कहा गया है कि समस्त पृथ्वी में घूम-फिर कर भी वह स्थान नहीं देखा जा सकता जहाँ भाई, माता, पिता, पुनः प्राप्त हो सकें ।

यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जन कोऽपिवा ।।[2]

इस प्रकार का एक कथन 'उच्छंग जातक' की गाथा में मिलता है—

उच्छंगे देव में पुत्तो पथे धावन्तिया पति ।
तज्जुदेसं न पस्सामि यतो सोदरिय मानये ।।[3]

यानि पुत्र मेरी गोद में है, रास्ते चलती को पति भी मिल सकता है; परन्तु वह देश मुझे दिखाई नहीं देता जहाँ से सहोदर 'भाई' मिल जाए ।

'वाल्मीकि रामायण' में भी कहा गया है--

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवा ।
तंतु देश न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ।।[4]

तथा--

शक्या सीता समा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता ।
न लक्षमण समो भ्राता सचिवः साम्यरायिकः ।।[5]

---

1. उत्तर का. 38.1, 2, 3, 4 ।
2. पद्मपुराण, पर्व 47 : श्लोक 14 ।
3. भदन्त आनन्द कौसल्यायन : जातक (प्रथम खण्ड) 'उच्छंग' जातक '67' पृ. 399 ।
4. वाल्मीकि रामायण, युद्ध का., सर्ग एकाधिक शतशम् (101) श्लोक 15, पृ. 1371 ।
5. वही, 49/6 ।

'रामायण मंजरी' में भी सहोदर 'भ्राता' की दुर्लभ्यता पर प्रकाश डाला गया है--

सर्वत्र सुहृदः सन्ति सन्ति सम्बन्ध बान्धवाः ।
अभिन्न जन्म देहस्य दुर्लभः स सहोदरः ।।[1]

गोस्वामीजी ने यही बात इस प्रकार कही है--

सुत बित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिंबारा ।।
अस बिचारि जिय जागहु ताता । मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ।।[2]

इस प्रसंग में पद्मपुराण की अपेक्षा गोस्वामीजी 'जातक की गाथा', 'वाल्मीकि 'रामायण' एवं 'रामायण मंजरी' से विशेष प्रभावित रहे हैं ।

42. सामर्थ्यवान :

समर्थ व्यक्ति सब कुछ कर सकने का अधिकार रखता है । उसे कोई भी दोषी कहने की हिम्मत नहीं कर सकता । सूर्य, पवन एवं गंगा अच्छे-बुरे सभी के संसर्ग में आती है लेकिन तब उन्हें कोई दोषी नहीं कहता । सब जल, चाहे अच्छा हो या बुरा, गंगा में जाने के बाद पवित्र बन जाता है । सूर्य (अग्नि) शुद्ध-अशुद्ध, अच्छे-बुरे सभी रसों का आस्वादन करता है । गोस्वामीजी की यह सूक्ति देखिए--

समरथ कहु नहिं दोष गोसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाईं ।।[3]

उनके भाव को परवर्ती कवियों ने भी ग्रहण किया है—

समरथ चाहे सो करै बड़ी खरौ लघु खोट ।[4]

43. सेवक धर्म :

सेवा साधना सबसे कठिन साधना है । सेवा करने की क्षमता किसी-किसी में ही हुआ करती है । 'नीतिशतक' में कहा गया है कि सेवा-धर्म बड़ा ही कठिन है । वह योगियों के लिए भी अगम्य है—

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।[5]

गोस्वामी जी ने उक्त भाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

सबते सेवक धरम कठोरा ।[6]
सेवा धरमु कठिन जगु जाना ।।[7]

---

1. रामायण मंजरी, युद्ध का. श्लोक 515 ।
2. लंका का., 61.4 ।
3. बाल का. 69.4 ।
4. भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि : किशोरीलाल गुप्त, पृ. 426 ।
5. भर्तृहरि : नीति शतक, श्लोक 58, पृ. 258 । (अ. बाबू हरिदास वैद्य)
6. अयो. का. 203.4 ।
7. अयो. का. 293.4 ।

यहाँ गोस्वामी जी ने नीतिशतक के श्लोक का भावाशय ग्रहण कर सेवा-धर्म की ग्रागम्यता का परिचय दिया है। जहाँ नीतिशतक में योगी की साधना से सेवा-धर्म का साम्य बैठाया गया है वहाँ गोस्वामी जी ने सामान्य रूप से उसे असाध्य बता कर अधिक व्यापकता प्रदान की है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी का अध्ययन अत्यन्त विस्तृत और गहन था। उन्होंने नाना प्रकार के पुराणों, काव्य ग्रन्थों एवं धर्म-ग्रन्थों का मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया था। गोस्वामीजी के इस व्यापक अध्ययन का प्रभाव उनकी मानस-संरचना में देखा जा सकता है। सूक्तियों की रचना में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती काव्य-कृतियों एवं धर्म-ग्रन्थों से सर्वाधिक प्रभाव ग्रहण किया है। भाव-साम्य के साथ-साथ कई स्थलों पर तो शब्दावली भी ज्यों की त्यों प्रयुक्त हुई हैं। इतना होते हुए भी वह नकल सा नहीं लगता। इसका कारण यह है कि उन्होंने कहीं प्रसंग बदल दिया है तो कहीं पात्र। भावों का साम्य होते हुए भी अपने प्रसंग के अनुकूल उसका प्रयोग करने में उन्होंने पूरी मौलिकता का परिचय दिया है। व्यापक अध्ययन और प्रचलन के कारण ये कथन स्वतः ही उनके दिलो-दिमाग पर छाए रहते होंगे और लिखते समय यह ख्याल भी न रहा होगा कि ये उनके अपने विचार हैं या किसी अन्य कवि या लेखक के। यों 'नानापुराणनिगमागम' वाली बात तो वे प्रारम्भ में ही स्वीकार कर चुके हैं। गोस्वामीजी की ये सूक्तियाँ इतनी लोकप्रिय हुईं कि परवर्ती कवियों ने भी उनका न्यूनाधिक रूप में अनुसरण किया है। संक्षेप में कहा यह जा सकता है कि भाव-ग्रहण में भी गोस्वामी जी ने मौलिकता का परिचय दिया है।

————

चतुर्थ खण्ड

उपसंहार

14. 'मानस' की सूक्तियों में निहित जीवन-मूल्यों की वर्तमान सन्दर्भ में उपयोगिता एवं जन-जीवन पर प्रभाव :

गोस्वामीजी की अन्य कृतियों की अपेक्षा उनका 'रामचरितमानस' अत्यधिक लोकप्रिय एवं जन-जीवन के सर्वाधिक निकट दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अपने 'मानस' में जिन सूक्तियों का प्रयोग किया है वे उनकी बुद्धिपरकता, गहन अध्ययन-शीलता एवं सूक्ष्म निरीक्षण-क्षमता की परिचायिका हैं। 'मानस' की कथा सिर्फ राम-कथा भर नहीं है वह एक प्रतीक मात्र है और इसकी तह में शायद युगीन परिस्थितियाँ रही हों, जिनके कारण उन्होंने ऐसा चित्र प्रस्तुत करना अभीष्ट समझा हो, जो लोगों के लिए प्रेरणादायी बन सके। इस युग के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ बड़ी शोचनीय एवं दयनीय अवस्था में थीं और ऐसे उच्छृङ्खल वातावरण से भयभीत होकर गोस्वामीजी ने ऐसी प्रतीक-कथा की योजना समक्ष रखने का यत्न किया जो उन परिस्थितियों से उबार कर जनमानस को आदर्श की ओर उन्मुख करे। इस हेतु गोस्वामीजी ने राम-कथा को माध्यम बनाकर सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक स्थितियों को नया मोड़ दिया और जनता के नैतिक मनोबल को थामे रखा।

अब प्रश्न उठता है कि आज से 400-500 वर्ष पूर्व जो बात कही गई थी उसकी आज के युग में क्या उपयोगिता है? यह असत्य नहीं कि तुलसी के युग से आज की परिस्थितियों में काफी परिवर्तन हो चुके हैं, लेकिन यह भी असत्य नहीं कि परिवर्तन आने भर से शाश्वत सिद्धान्त नहीं बदला करते।

एक आदर्श समाज में, आदर्श परिवार में प्रत्येक व्यक्ति का क्या कर्तव्य होता है, उसका निर्देशन हमें 'मानस' से पूर्णरूपेण प्राप्त हो सकता है। आज का समाज आदर्श समाज नहीं कहा जा सकता; जहाँ परस्पर सहयोग की भावना का अभाव हो, व्यक्ति अपने ही स्वार्थ में रत हो, मैत्री-भाव का अभाव हो, ईर्ष्या पनपती जा रही हो, परोपकार को भुलाया जा चुका हो, जातिवाद पनपता जा रहा हो—वह समाज एक आदर्श समाज की संज्ञा पाने का कदापि अधिकारी नहीं। जहाँ परिवार के सदस्यों में परस्पर श्रद्धाभाव न रहे, पुत्र माता-पिता की आज्ञा की अवहेलना कर जाए, गुरु के प्रति श्रद्धा का भाव न रहे। बड़े अपने छोटों के प्रति स्नेह का भाव न रखते हों, स्वामी-सेवक सम्बन्धों की जानकारी न हो, वहाँ का वातावरण कभी सुख-शान्तिदायक नहीं हो सकता।

देखने से ज्ञात होता है कि गोस्वामीजी के युग-समाज की स्थिति से आज के समाज की स्थिति में कोई पूर्ण सुधार नहीं हो पाया है और शनैः शनैः यह भावना बढ़ती ही जा रही है; आज आदर्श को मानव भूलता जा रहा है। कोई भी वर्ग (शासक वर्ग, मजदूर वर्ग, किसान वर्ग) सन्तुष्ट नहीं है और इसका मुख्य

कारण अपने कर्तव्यों के प्रति सजग न रहना है। जब मानव अशान्तिमय जीवन व्यतीत करता है, तब अपने अधिकारों की माँग करता है; फलस्वरूप विद्रोह की स्थिति पनप उठती है। आज हड़ताल की प्रथा इसी की देन है। ऐसी परिस्थितियों से ऊब कर मानव ऐसे वातावरण की कल्पना करता है जहाँ उसे पूर्ण सुख-शान्ति मिल सके, प्रत्येक अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहे, परस्पर मैत्री-भाव पनपे तथा जीवन योग्य बन सके। इन सबका खुला चित्रांकन 'मानस' में दो रूपों में दर्शाया गया है--'रावण-राज्य' और 'कलि-धर्म' निरूपण में। गोस्वामीजी ने जो लक्षण कलियुगी समाज के तथा 'रावण राज्य' के बताए हैं वे आज के समाज में भी किन्हीं अंशों में द्रष्टव्य हैं :

जहाँ पुत्र माता-पिता से सेवा करवाता हो, व्यक्ति शुभ लक्षणों से हीन हो, पुरुष नारी के ही अधीन हो तथा घर की अपेक्षा ससुराल को अधिक महत्व देता हो, जो ज्यादा बोलता हो वही पण्डित माना जाए, सौभाग्यवती स्त्री को आभूषण नसीब न हो लेकिन विधवा उनसे सुसज्जित रहे, स्त्री आभूषणों की अपेक्षा अपने केशों की सज्जा पर अधिक ध्यान रखे अर्थात् उसका आभूषण उसके बाल ही हैं—यह सब कलियुगी समाज के लक्षण हैं। आज भी 'हेयर स्टाइल' पर ही नारी वर्ग का अधिक ध्यान है। पुरुष नारी की इजाजत लेकर ही काम करना अपना धर्म समझता है, आदि बातें ऐसी हैं जो अक्षरशः आज के सन्दर्भ में लागू हो रही हैं।

इसके विपरीत जो 'राम-राज्य' का चित्र खींचा गया है, उसकी कल्पना आज भी जन-जीवन की आकांक्षा बनी हुई है। प्रत्येक आज के संत्रस्त वातावरण से निकल कर एक ऐसे युग में जीना चाहता है जहाँ परस्पर मैत्री का भाव हो, समता हो, सब विवेकशील हों, जनता के हित का ध्यान रखा जाता हो, अपने कर्तव्यों के प्रति व्यक्ति सजग हो तथा जीवन सुख-शान्तिमय बन सके। आज के व्यक्ति की कल्याणकारी राज्य की कल्पना ऐसी ही है।

वस्तुतः गोस्वामीजी ने विभिन्न विषयों पर विभिन्न संदर्भों में सूक्तियों का प्रयोग किया है। उनकी प्रत्येक सूक्ति प्रासंगिक है। ऐसी कोई सूक्ति नहीं जो आज के जीवन-मूल्यों को फीका करती हो। यदि कथा मात्र को ध्यान में रखते हुए उन पर दृष्टिपात किया जाए तब हो सकता है कुछेक सूक्तियों की उपयोगिता आज के सन्दर्भ में नगण्य ठहरती हो, किन्तु यदि उन्हें प्रतीकार्थ में ग्रहण किया जाए तो आज भी उपयोगी लग सकती है।

संक्षेप में सूक्तियों का मूल्यांकन निम्नलिखित दो आधारों पर किया जा सकता है--

(1) वे सूक्तियाँ जो उस युग से या 'कथा' से ही सम्बद्ध हैं और जिनका आज के युग में कम महत्व है, लेकिन प्रतीकात्मक रूप में जो आज भी उपयोगी लग सकती हैं।

(2) वे सूक्तियाँ जिनका आज के परिप्रेक्ष्य में भी उतना ही महत्व है तथा आगे भी वे महत्वशील सिद्ध होंगी। दूसरे शब्दों में जो अपने में शाश्वत मूल्य समेटे हैं; उनका रूप-परिवर्तन भले हो जाए, लेकिन मूल भावना में वे अवश्य जीवित रहेंगी।

(1) पहले प्रकार की सूक्तियाँ प्रासंगिक हैं जिनका प्रयोग हम अपने सिद्धान्त एवं व्यवहार में प्रायः किया करते हैं। कतिपय उदाहरण देखिए—

बालिवध पर कथित यह सूक्ति--

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनसठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि विलोकहि जेही। ताहि वधे कछु पाप न होई॥[1]

और अंगद-रावण वार्ता पर कथित यह सूक्ति--

कौल कामवस कृपिन विमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥
सदा रोग बस संतत क्रोधी। विष्नु विमुख स्रुति संत विरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत सव सन चौदह प्राणी॥
.... । मुए वधे नहि कछु मनुसाई॥[2]

उक्त सूक्तियों के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि आज किसी दूसरे का वध करना तो दूर रहा उसे कठोर सजा देना भी कठिन है, चाहे वह खूनी ही क्यों न हो। कानून की प्रक्रिया इतनी जटिल है कि वह प्राण-दण्ड किसी-किसी को ही दे पाता है, तब सिर्फ नारी को कुदृष्टि से देखने पर या अति दरिद्र, क्रोधी, विष्णु-विरोधी, रोगी, निंदक, एवं स्वय का ही पालन करने वालों का वध कर देना कहाँ तक संगत है। हाँ, आज के संविधान में यह अवश्य है कि नारी के प्रति अभद्र व्यवहार करने वाला अपराधी माना जाता है।

इसी प्रकार 'कोई नृप होय हमें का हानी'[3] की भावना का आज कोई महत्त्व तहीं है। आज न तो राजा का शासन है और न जनता इतनी उदासीन है। आज तो शासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों का है और उसके कारनामों से सदा अवगत रहते हैं, फिर भी कहीं-कहीं आज की ग्रामीण जनता इस सूक्ति का प्रयोग कर बैठती है। उसकी बला से किसी का शासन हो, उसे तो भरपेट भोजन व रहने के हेतु झोंपड़ी चाहिए।

इसी प्रकार 'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाय वरु वचन न जाई।'[4] सूक्ति भी आज पूरी लागू नहीं होती क्योंकि आज रघुवंशी नजर नहीं आते। यदि

---

1. कि. का. 9.4।
2. लंका. 31.1,2।
3. अयो. का. 16.3।
1. अयो. का 28.2

'रघुकुल' को सत्ता का सूचक मान लिया जाए तो भी कथ्य सत्य नहीं ठहरता। इसका कारण है कि उस समय 'रघुकुल' वंश का शासन था और उनकी यह नीति थी कि वह जो कहते थे, वही करते थे चाहे प्राणों की बाजी ही क्यों न लगानी पड़े। आज जनता का शासन है। जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि कुर्सी पर बैठने से पूर्व आश्वासन देते हैं, योजनाएँ बनाते हैं, जनहितार्थ लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं; परन्तु कुर्सी सम्भालते ही वे सब कुछ भूल जाते हैं। उन्हें अपने वचन याद नहीं रहते। वे शासन की बागडोर हाथ में लेते ही नीति निर्देशों की अवहेलना कर जाते हैं। इनके पीछे सत्ता का मद काम करता है। इस संदर्भ में गोस्वामी जी द्वारा कही हुई यह सूक्ति कितनी प्रासंगिक बैठती है —

जग बौराय राज पदु पाए।[1]

यह असत्य नहीं कि जो सामर्थ्यवान हो, वह नैतिक-अनैतिक किसी भी मार्ग पर चले, उसके दोषों को इंगित करने की हिम्मत किसी में नहीं होती। गोस्वामीजी के शब्दों में--

समरथ कहु नहिं दोपु गोसाई। रवि पावक सुरसरि की नाई॥[2]

'मानस' में जिसके राज्य में प्रजा दुखी हो उस राजा को नरक का अधिकारी बताया गया है--

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥[3]

परन्तु आज राजा का शासन नहीं और न नरक की कल्पना। लेकिन 'नृप' शासन सत्ता का एवं 'नरक' 'दुख-क्लेशों' का प्रतीक मान लिया जाए तो आज भी यह सूक्ति सत्य ठहरती है। जिसके राज्य में प्रजा पीड़ित रहती हो, उस शासन-सत्ता को बदल देना चाहिए। आज हालांकि जनतंत्र-युग है लेकिन जनता शासन पद्धति से संतुष्ट नहीं, पार्टीबाजी, गुट-बन्दी इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जब जनता की आकांक्षाओं का हनन होता है तब वह विद्रोह कर उठती है! नारेबाजी-हड़ताल आदि इसी का प्रतिफल है। यह सब इसलिए कि व्यक्ति का शोषण होता है, उसके अधिकारों पर कुठाराघात किया जाता है। परिणामस्वरूप वह संतप्त हो उठता है और बगावत कर देता है; तब अच्छे-बुरे करणीय-अकरणीय कार्यों के प्रति विवेक-बुद्धि शून्य हो जाती है तब ऐसे समय में यह सूक्ति अप्रासंगिक नहीं ठहरती--'आरत काहि न करिय कुकरमू।'[4]

यहाँ आज के संदर्भ में 'कुकरमू' का अर्थ बगावत या विद्रोह लिया जा सकता है।

---

1. अयो का. 228.4।
2. बाल का. 69.4।
3. अयो. का. 71.3।
4. वही, 204.4।

आज के युग में सीधे व्यक्तियों की वन्दना कोई नहीं करता। दूसरे शब्दों में जो अधिक सरल स्वभाव युक्त होता है, उसे कोई नहीं पूछता। उग्र-स्वभाव युक्त या तेज-तर्रार व्यक्ति ही आज पूछे जाते हैं और ऐसे व्यक्तियों के प्रति ही आज लोग 'जी हजूरी' करना उचित समझते हैं। जो सौम्य-शान्त होता है साधारणतः उसे ही आतंकित या पीड़ित किया जाता है गोस्वामीजी की निम्न सूक्ति आज के संदर्भ में भी सत्य ठहरती है—

टेढ जानि सब बंदहि काहू। वक्र चन्द्रमहि ग्रसहिं न राहू ।।[1]

जब स्वयं व्यक्ति कर्मरत नहीं होता लेकिन दूसरों को वैसा करने के लिए प्रेरित करता है या जो सिद्धान्त में कुछ तथा व्यवहार में कुछ अपनाता है--ऐसे व्यक्तियों के प्रति कथित गोस्वामीजी की निम्न सूक्ति बड़ी सटीक बैठती है—

पर उपदेश कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।[2]

(2) दूसरे प्रकार की सूक्तियाँ ऐसी हैं जिनका प्रयोग सदैव सब काल, सब देशों में किया जा सकता है। यह बात दूसरी है कि वे उन्हीं आकारों में न रह पाए। उनका रूप-परिवर्तन हो सकता है पर मूल शाश्वत ही रहेगा।

समय पर जो कार्य किया जाता है वह फलदायी होता है। इसके विपरीत अवसर निकल जाने पर जो कार्य किया जाता है वह व्यर्थ साबित होता है। समय की उपयोगिता को लक्ष्य करती हुई निम्न सूक्ति सदैव जीवित रहेगी—

का वर्षा जब कृषि सुखाने। समय चूकि पुनि का पछताने ।[3]

\+ + + +

तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करहिं का सुधा तड़ागा ।।[4]

प्रेम व घृणा की भावना छिपाने से छिपती नहीं। नेत्रों द्वारा इन्हें जाना जा सकता है। कोई लाख छिपाये पर जाहिर हो ही जाती है। इस विषयक कथित यह सूक्ति सदैव स्मरण की जाती रहेगी—

बैर प्रीति नहिं दुरइ दुराये।[5]

परतंत्रता सबको असह्यनीय हुआ करती है। हर देश, या व्यक्ति स्वतन्त्र जीवन बिताना चाहता है। परतन्त्रता में जो दुख होता है एवं स्वतन्त्रता में जो सुखानुभूति होती है, इसके खातिर ही व्यक्ति पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़कर आजाद होना चाहता है। गोस्वामीजी द्वारा कथित निम्न सूक्ति मन के शाश्वत सत्य को छिपाये है—

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।[6]

इस सूक्ति ने न जाने कितने स्वतन्त्रता-प्रेमियों को बल प्रदान किया होगा और वे आजादी की लौ पर मर मिटे होंगे।

---

1. बाल का. 281.3। 2. लंका का. 78.1। 3. बाल का. 261.2।
4. बाल का. 261.1। 5. अयो. का. 193.1। 6. अयो. का. 264.1।

यह सत्य है कि जिस पर बीतती है, वही उसे जानता है। जो जिस विषय में पारंगत होता है, वही उसका तर्कसंगत विवेचन प्रस्तुत कर सकता है। इस कथ्य को पुष्ट करती हुई यह सूक्ति सदैव स्मरण की जाती रहेगी--

बांझ कि जान प्रसव के पीरा ।[1]

मनुष्य के हृदय में काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि वृत्तियाँ समाविष्ट रहती हैं। कामी को नारी ही सदैव प्रिय लगती है क्योंकि काम-पिपासा शान्त करने के लिए नारी ही सहायक उपकरण है। इसी प्रकार लोभी धन (द्रव्य) के प्रति ही अधिक आसक्त रहता है। गोस्वामीजी ने इस सत्य को निम्न सूक्ति में व्यक्त किया है--

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभी प्रिय जिमि दाम ।।[2]

मानव को इन असद्वृत्तियों का त्याग करना चाहिए, क्योंकि इनमें लिप्त रहने से पतन अवश्यम्भावी है। वस्तुतः जैसी संगति होगी व्यक्ति वैसा ही बन जाएगा। व्यक्ति को हमेशा सत्संग करना चाहिए, कुसंग नहीं। क्योंकि—"को न कुसंगत पाहि नसाहीं।"[3] अतः वही घड़ी धन्य है जब सत्संग किया जाता है—

धन्य धरी सोई जब सत्संगा ।।[4]

ऐसा कौन प्राणी है जिसे लक्ष्मी एवं प्रभुता पाकर मद न हुआ हो। दौलत पाने पर अधिकार हाथ में आते ही प्रत्येक व्यक्ति मदोन्मत्त हो उठता है। उस समय वह अपने आगे किसी की नहीं सुनता—

श्रीमद् वक्र न कीन्हि केहि प्रभुता वधिर न काहि ।।[5]

देखने में आता है कि संसार में परिवार, पत्नी, पुत्र, घर सब कुछ पुनः प्राप्त हो सकते हैं लेकिन सहोदर किसी कीमत पर प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह कथ्य सदैव जीवित रहेगा, कभी भी पुराना नहीं पड़ेगा—

सुत वित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।।
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ।।[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन सूक्तियों का गोस्वामीजी ने अपने 'मानस' में यत्र-तत्र प्रयोग किया है, वे आज भी उतनी ही प्रयोजनीय, प्रभावशाली एवं प्रेरणास्पद हैं कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या निरक्षर, इनको किन्हीं न किन्हीं प्रसंगों पर अवश्य दुहराता चलता है। ये सूक्तियाँ जन-जीवन में इतनी रम चुकी हैं कि व्यक्ति इनका प्रयोग अपने कथन की पुष्टि में, भाषणों में, साहित्य सर्जना के सन्दर्भ में, अपने तथ्य को सशक्त बनाने हेतु, उदाहरणस्वरूप आदि माध्यम से हर क्षण करता रहता है। कुछ सूक्तियाँ तो लोकोक्तियाँ बन गई हैं जैसे—

1. पारस धातु कुधातु सुहाई।[7]
2. पराधीन सपनेहुँ सुख नाही।[8]
3. समरथ कउ नहिं दोष गुसांई।[9]

---

1 बाल का. 97.2। 2. उत्तर का. 130। 3. अयो. का. 24.4।
4. उत्तर का. 127.4। 5. उत्तर का. 70। 6. लंका का. 61.4।
7. बाल का. 3.5। 8. बाल का. 102.3। 9. बाल का. 69.4।

4. आरत काह न करहिं कुकरमू ।[1]
5. भय विनु होय न प्रीति ।[2]
6. डाटेहि पइ नव नीच ।[3]
7. होई है सोइ जो राम रचि राखा ।[4]
8. का वर्षा जव कृषी सुखाने ।[5]
9. कौन कुसंगत पाहि नसाहीं ।[6]
10. स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ।[7]

'मानस' की इन सूक्तियों की लोकप्रियता के पीछे भाव और भाषा का विशेष हाथ रहा है। भावों को अधिकाधिक सुस्पष्ट करने के लिए एवं जनता के अधिक निकट पहुँचाने हेतु ही गोस्वामीजी ने उस समय की अधिकाधिक प्रचलित भाषा 'अवधी' में ही काव्य-सृजन अभीष्ट समझा। उत्तरी भारत में तो मानस इस प्रकार छा गया है कि प्रत्येक हिन्दू परिवार में इसकी एक न एक प्रति अवश्य मिलेगी। इतना ही नहीं, रामनवमी के उपलक्ष में 'नवाह्नपारायण' की प्रथा तथा रामलीला इसी की देन है। आज भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व में भी 'मानस' की महत्ता स्वीकारी जा रही है। अपने आदर्शों एवं जीवन-लक्ष्यों की सर्वाङ्गीण मनोरम झाँकी प्रस्तुत करने के कारण ही 'मानस' इतना लोकप्रिय एवं जनजीवन के अति निकट पहुँच सका है। वस्तुतः वह आदर्शों का मानचित्र है।

जो निरक्षर प्रेमासक्त भक्त हैं वे तो राम-कथा का पारायण भक्ति भावना से प्रेरित होकर करते हैं और जो बुद्धिजीवी हैं वे रामकथा को महत्व न देते हुए भी मानव-आदर्शों को पथ-प्रदर्शक के रूप में 'मानस' की उपयोगिता स्वीकारते हैं। यही कारण है कि आज 'मानस' की सर्वाधिक प्रतियाँ, टीकाएँ एवं अनुवाद मिलते हैं।

जब 'मानस' अपने आदर्शों के कारण इतना ऊँचा उठ चुका है तब क्या उसमें निहित सूक्तियाँ प्रयोजनीय नहीं बन सकतीं? यह कहना असंगत न होगा कि इन सूक्तियों के माध्यम से 'मानस' और निखर उठा है, तथा ये सूक्तियाँ प्रति पल प्रेरणा-स्पद सिद्ध होती प्रतीत होती हैं। मानव अपनी सर्वोन्मुखी उन्नति तभी कर सकता है जब उसके समक्ष कोई आदर्श हो और उसका अनुकरण ही उसका ध्येय बन सके आदर्श एवं अनुकरण की दृष्टि से गोस्वामीजी का 'मानस' एवं उसमें भी उनके राम अनुकरणीय पात्र हैं। ये 'राम' अवतार-रूप 'राम' नहीं बल्कि उच्च गुणों के समूह के द्योतक 'राम' हैं। राम-रावण वस्तुतः सत्-असत् वृत्तियों के प्रतीक हैं, और सत की अन्ततः विजय होती है, तब वह अनुकरणीय बन जाता है। इसी कारण मानस आज भी उपयोगी ग्रन्थ है और उसमें प्रयुक्त सूक्तियाँ वर्तमान सन्दर्भ में भी हमारा मार्ग-दर्शन करती हैं।

— — — —

1. अयो. का. 204.4 । 2. सु. का. 57 । 3 सु. का. 58 । 4. बाल का. 52.4 । 5. बाल का. 261.2 । 6. अयो. का. 24.4 । 7. कि. का. 12.1 ।

परिशिष्ट—1

'मानस' की सूक्तियाँ (अकारादि क्रम से)

(अ)

1. अर्कजवास पात बिनु भयऊ । जस सुराज खल उद्यम गयऊ ।। (कि. 15.2)
2. अग जगमय सब रहित बिरागी । प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ।। (बा. 185.4)
3. अगुन अदभ्र गिरा गोतीता । सब दरसी जनवद्य अजीता ।। (उ. 72.3)
4. अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ।। (बा. 23.1)
5. अगुनहि सगुनहि नहि कछु भेदा । गावहि मुनि पुरान बुध वेदा ।। (बा. 116.1)
6 अगुन सरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम वस सगुम जो होई ।। (,,)
7. अध कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ।। (उ. 112.5)
8. अति अपार जे सरित वर जौ नृप सेतु कराहिं ।
चढ पिपीलिका परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहि ।। (बा. 13)
9. अति संघरष करै जौ कोई । अनल प्रगट चंदन ते होई ।। (उ. 111.8)
10. अति प्रचण्ड रघुपति के माया । जेहि न मोह अस को जग जाया ।। (बा. 128.4)
11. अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित । (उ. 95)
12. अतिशय प्रबल देव तव माया । छुटहि राम करहु जौ दाया ।। (कि. 21.1)
13. अतिदुर्लभ कैवल्य परम पद । संत पुरान निगम आगम वद ।। (उ. 119.2)
14. अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ।। (लं. 15.3)
15. अनुचित उचित विचारु तजि जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ।। (अयो. 174)
16. अनुज वधू भगिनी सुत नारी । सुन सठ कन्या सम ए चारी ।। (कि. 9.4)
17. अंब इस आधीन जगु काहु न देइअ दोसु । (अयो. 244)
18. अमित दानि भर्ता वय देही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ।। (अ. 5.3)
19. अमित बोध अनीह मित भोगी । सत्य सार कवि कोविद जोगी ।। (अयो. 45.4)

20. अरध तजहिं बुध सरवस जाता । (अयो. 256.1)
21. अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि । (अ. 44)
22. अवगुन सिंधु मंद मति कामी । वेद विदूषक परधन स्वामी ।। (उ. 40.4)
23. अस विवेक जब देहि विधाता । तब तजि दोष गुनहि मनु राता ।।
(बा. 7.1)
24. असि रघुपति लीला उरगारी । दनुज विमोहनि जन सुख कारी ।।
(उ. 73.1)
25. असि विचारि हरि भगति सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।।
(उ. 119.4)
26. असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहि बरनी ।।
(बा. 118.4)
27. अहंकार अति दुखदाइ मरुआ । दंभ कपट मदमान नेहरुआ ।।
(उ. 121.18)
28. अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।
मनुज वास सचराचर रूप राम भगवान ।। (लं. 15)

(आ)

29. आकर चारि लच्छ चौरासी । जोनि भ्रमत यह जिव अविनाशी ।।
(उ. 44.2)
30. आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीव जल थल नभ वासी ।।
(बा. 8.1)
31. आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ।। (उ. 49.2)
तब पद पंकज प्रीति निरन्तर । सब साधन कर यह फल सुन्दर ।। (,,)
32. आगे कह मृदुवचन बनाई । पाछे अनहित मन कुटिलाई ।। (कि. 7.4)
33. आतम अनुभव सुख सु प्रकासा । तब भव मूल भेद भ्रम नासा ।।
(उ. 118.1)
34. आनन अनल अंबु पति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ।। (लं. 15.3)
35. आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी वकता बड़ जोगी ।।
(बा. 118.3)
36. आरत काहि न करइ कुकरमू । (अयो. 204.4)
37. आरत कहहिं विचारि न काऊ । सूझ जुआरिहि आपत दाऊ ।।
(अयो. 258.1)
38. आवत देखहि विषय बयारी । ते हठि देहि कपाट उघारी ।। (उ. 118.6)

(इ)

39. इन्द्रिय सुरन्ह न ग्यान सोहाई । विषय भोग पर प्रीति सदाई ।। (उ. 118.8)

40. इमि कुपंथ पगुदेत खगेसा । रहन तेज तन बुधि बल लेसा ।। (श्र. 28.5)

(ई)

41. ईस ग्रधीन जीव गति जानी । (ग्रयो. 263.3)

42. ईस्वर ग्रंश जीव ग्रविनासी । चेतन श्रमल सहज सुखरासी ।। (उ. 117.1)
सो माया वस भयऊ गोसाई । बध्यो कीट मरकट की नाई ।। (उ. 117.2)

(उ)

43. उघरहि ग्रंत न होय निबाहू । कालनेमि जिमि रावन राहू ।। (बा. 7.3)

44. उत्तम के ग्रस वस मन माँही । सपनेहु ग्रान पुरुष जगु नाहीं ।। (ग्र. 5.6)

45. उदय केतु सम हित सवही के । कुंभ करन सम सोवत नीके ।। (बा. 4.3)

46. उदर उदधि ग्रधगो जातना । जग मय प्रभु का बहु कल्पना ।। (लं. 15.5)

47. उदासीन ग्ररु मीत हित सुनत जरहि खल प्रीति । (बा. 4)

48. उदित ग्रगस्त पंथ जल सोषा । जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ।।
(कि. 16.2)

49. उपजहि एक संग जल माहीं । जलज जोंक जिमि गुन विलगाहीं ।।
(बा. 5.3)

50 उभय ग्रगम जुग सुगम नाम ते, कहेउ नामु बड़ ब्रह्म राम ते ।। (बा. 23.3)

51. उमा जे राम चरन रत विगत काम मद मोह ।
निज प्रभु मय देखहि जगत केहि सन करहि विरोध ।। (उ. 112)

52. उमा जोग जप ध्यान तप नाना मख व्रत नेम ।
राम कृपा नहि करहि तसि जसि निष्केवल प्रेम ।। (लं. 117)

53. उमा दारु जोपित की नाई । सवहि नचावत राम गोसाई ।। (कि. 11.4)

54. उमा राम विषयक ग्रस मोहा । नभ तम धूमि छूटि जिमि सोहा ।।
(बा. 117.2)

55. उमा संत की यही वड़ाई । मंद करत जो करहि भलाई ।। (सु. 41.4)

(ऊ)

56. ऊतरु देई सुनि स्वामि रजाई । सो सेवकु लघु लाज लजाई ।।
(ग्रयो. 269.3)

57. ऊषर वरसहि तृन नहि जामा । जिमि हरिजन हिय उपज न कामा ।।
(कि. 15.5)

(ए)

58. एक व्याधि वस नर मरहिं ये असाधि बहु व्याधि ।
पीड़हिं संतत जीव कहु सो किमि लहै समाधि ।। (उ. 121)

59. एक पिता के विपुल कुमारा । होइ पृथक् गुन सील अचारा ।। (उ. 87.1)

60. एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा बस जीव परा भव कूपा ।। (अ. 15.3)

61. एक रचइ जग गुन बस जाके । प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके ।। (,,)

62. एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द भगवाना ।। (बा. 13.2)
व्यापक विस्वरूप भगवाना । तेहि धरि देहि चरित कृत नाना ।। (,,)
सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपाल प्रनत अनुरागी ।। (बा. 13 3)

63. एक दारुगत देखिअ एकू, पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू । (बा. 23.2)

64. एकै धर्म एक व्रत नेमा । काय वचन मन पति पद प्रेमा ।। (अ. 5.5)

65. एहि जग जागहिं जामिनि जोगी । परमारथी प्रपंच वियोगी ।।
(अयो. 93.2)

66. एहितन कर फल विषय न भाई । स्वर्गऊ स्वल्प अंत दुखदाई ।।
(उ. 44.1)

67. एहि विधि भलेहि सो रोग नसाहीं । नाहित जतन कोटि नहिं जाहीं ।।
(उ. 122.4)

68. एहि विधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर समेते । (उ. 87.3)

69. एहि विधि जग हरि आश्रित रहई । जदपि असत्य देत दुख अहई ।।
(बा. 118.1)

70. एहि विधि सकल जीव जग रोगी । सोक हरष भए प्रीति वियोगी ।।
(उ. 122.1)

(ऐ)

71. ऐसे अधम मनुज खल कृत जुग त्रेता नाहिं ।
द्वापर कछुक वृन्द बहु होइ हहिं कलि जुग माहिं ।। (उ. 40)

72. ऐसेहि विनु हरि भजन खगेसा । मिटहिं न जीवन केर कलेसा ।।
(उ. 79.1)

73. औरु करैं अपराधु कोउ और पाव फल भोगु ।
अति विचित्र भगवंत गति को जग जानइ जोगु ।। (अयो. 77)

(क)

74. कत विधि सृजी नारि जग मांही । पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।।
(बा. 102.3)

75. कनक कहि वान चढ़इ जिमि दाहे । तिमि प्रियतम पद नेम निवाहे ।।
(अयो. 205.3)

76. कनकउ पुनि पषान ते होही । जारेहु सहजु न परिहर सोई ।।
(बा. 80.3)

77. कठिन करमगति जानि विधाता । सोसुभ असुभ सकल फल दाता ।।
(अयो. 282.2)

78. कवहुक करि करुना नर देही । देत ईस विनु हेतु सनेही ।। (उ. 44.3)

79. कवहुक दुख सब कर हित ताके । तेहि कि दरिद्र परस मनि जाके ।।
(उ. 112.1)

80. करत कष्ट बहु पावइ कोउ । भक्ति हीन मोहि प्रिय नहि सोउ ।।
(उ. 45.2)

81. करइ जो कर्म पाव फल सोई । निगम नीति अस कहि सबु कोई ।।
(अयो. 77.4)

82. करइ स्वामि हित सेवक सोई । दूषन कोटि देइ किन कोई ।।
(अयो. 186.3)

83. करन धार सदगुरु दृढ़ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ।। (उ. 44.4)

84. करम सुभासुभ देइ विधाता । (अयो. 255.3)

85. करम प्रधान विस्वकरि राखा । जो जस करिय सो तस फल चाखा ।।
(अयो. 219.2)

86. करम प्रधान सत्य कहि लोगू । (अयो. 91.4)

87. करम कि होहि स्वरूपहि चीन्हे । (उ. 112.2)

88. कल बल छल करि जाहि समीपा । अंचल वात बुझावहिं दीपा ।।
(उ. 118.4)

89. कलिवर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुण्य होहि नहिं पापा ।। (उ. 103.4)

90. कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पयोनिधि जनमन मीना ।। (बा. 27.2)

91. कवनिउ सिद्ध कि विनु विस्वासा । विनु हरि भजन न भव भय नासा ।।
(उ. 90.4)

92. कवि कोविद गावहि अस नीती । खल सन कलह न भल नहिं प्रीती ।।
(उ. 106.7)

93. करहिं मोह वस नर अघ नाना । स्वारथ रत परलोक नसावा ।। (उ. 41.2)

94. करहिं मोह वस द्रोह परावा । संत संग हरि कथा न भावा ।। (उ. 40.3)

95. कृषी निरावहि चतुर किसाना । जिमि वुध तजहि मोह मदनाना ।।
(कि. 15.4)

96. कसै कनकु मनि पारिखि पाए । पुरुष परिखि अहि समय सुभाए ।।
(अयो. 283.3)

97. कह मुनीस हिमवंत सुन जो विधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटन हार ।। (बा. 68)

165. ग्यानी तापस सूरकवि कोविद गुन आगार ।
केहि कै लोभ विडम्बना कीन्हि न एहि संसार ।। (उ. 70)

166. गई बहोरि गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ।। (बा. 13.4)

167. गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा । कीचहि मिलै नीच जल संगा ।। (बा. 7.5)

168. गगन समीर अनल जल धरनी । इन्ह की नाथ सहज जड़ करनी ।।
(सु. 59.1)

169. गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिन्धु अनल सितलाई ।। (सु. 5.1)

170. गरल सुधा सम अरिहित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ।।
(उ. 120.4)

171. गरुड सुमेर रेनु समताई । राम कृपा कर चितवहि जाही ।। (सु. 5.2)

172. गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न । (बा. 18)

173. गिरजा संत समागम सम न लाभु कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं वेद पुरान ।। (उ. 125)

174. गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जोहि भाव नीक तेहि सोई ।।
(बा. 5.5)

175. गुन कृत सन्यपात नहिं के ही । कोउ न मान मदतजेउ निबेही ।।
(उ. 71.1)

176. गुरु के बचन प्रतीति न जेही । सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही ।।
(बा 80.4)

177. गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करिय भलि जानी ।।
(अयो. 177.2)

178. गुरु पितु मातु बंधु सुरसाई । सेइ अहिं सकल प्रान की नाई ।।
(अयो 74.3)

179. गुरु पितु मातु स्वामि सिखपालें । चलेहु कुमथ पग परहि न खाले ।।
(अयो. 315.3)

180. गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई । जो बिरंचि संकर सम होई ।।
(उ. 93.3)

181. गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता । (बा. 166.3)

182. गुना गार संसार दुख रहित विगत संदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ।। (अ. 75)

183. गूढउ तत्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जंह पावहिं ।।
(बा. 110.1)

184 गो गोचर जंह लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ।। (अ. 15.2)

185. ग्रंथि न छूट मिटा सो प्रकासा । बुद्धि विकल भइ विषय बतासा ।।
(उ. 117.7)

98. कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ।।
(कि. 16.5)

99. कहहिं वेद इतिहास पुराना । विधि प्रपंचु गुन श्रवगुन साना ।। (वा. 6.2)

100. कहहिं सुनहिं श्रस श्रधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच ।
पाषंडी हरिपद विमुख जानहि झूठ न साँच ।। (वा. 144)

101. कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ।।
(उ. 46.1)

102. का वर्षा जव कृषी सुखाने । समय चूकि पुनि का पछताने ।। (बा. 261.2)

103. कादर मन कहुं एक ग्राधारा । दैव दैव ग्रालसी पुकारा ।। (सु 51.2)

104. काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय विसेषि पुनि चेरि कहि भरत मात मुस्कानि ।। (ग्रयो. 14)

105. काटइ परसु मलय सुन भाई । निज गुन देइ सुगन्ध वसाई ।। (उ. 37.4)

106. काटे हि पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच ।
विनय न मान खगेस सुन डाटेहि पइ नव नीच ।। (सु. 58)

107. काम वात कफ लोभ ग्रपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ।।(उ. 121.15)
प्रीति करहु जो तीनहु भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई ।। (उ. 121.16)

108. काम क्रोध लोभादि मद प्रवल मोह कै धार ।
तिन्ह मंह ग्रति दारुन दुखद माया रूपी नारि ।। (ग्र. 43)

109. काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ।। (उ. 39.3)

110. काम क्रोध मद लोभ सव नाथ नरक के पंथ । (सु. 38)

111. काम क्रोध मदलोभ रत गृहा सक्त दुख रूप ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप ।। (उ. 73)

112. कामिहि नारि पियारि जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम । (उ. 130)

113. कामी पुनि कि रहहिं ग्रक लंका । (उ. 112.1)

114. कारन ते कारज काठिन होइ दोस नहिं मोर ।
कुलिस ग्रस्थि ते उपल ते लोह कराल कठोर ।। (ग्रयो. 179)

115. काल धर्म व्यापहिं नहि ताहीं । रघुपति चरन प्रीति ग्रति जाहीं ।।
(उ. 104.4)

116. काल करम गति ग्रघटित जानी । (उ. 41.3)

117. काल दण्ड गहि काहु न मारा । हरहिं धर्म बल बुद्धि विचारा ।।
(लं. 37.4)

118. काल सुभाउ करम बरि ग्राई । भलेऊ प्रकृति वस चुकइ भलाई ।।
(वा. 7.1)

119. काल करम वस होहिं गुसाईं । वरवस राति दिवस की नाईं ।।
(ग्रयो. 150.3)

120. कासी मग सुरसरि क्रम नासा । मरु माख माहि देव गवासा ।। (बा. 6.4)
121. काह न पावक जरि सके का न समुद्र समाय ।
का न करे अबला प्रबल केहि जग कालहि खाय ।। (अयो. 47)
122. काहि न सोक समीर डुलावा । (उ. 71.2)
123. काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ।। (अयो. 92.2)
124. काहू की जो सुनहिं बडाई । स्वास लेति जन जूड़ी आई ।। (उ. 40.1)
125. काहू सुमति कि खल संग जामी । (उ. 112.2)
126. कीट मनोरथ दास सरीरा । जेहि न लाग घुन को असि धीरा ।। (उ. 71 3)
127. कीरति भनिति भूति भल सोई । सुरसरि सम सब कंह हित होई ।। (बा. 14.5)
128. कुपथ निवारि सुपथ चलावा । गुन प्रगटइ अवगुनहिं दुरावा ।। (कि. 7.2)
129. कुपथ माँगि रुज व्याकुल रोगी । बैद न देहि सुनहु मुनि जोगी ।। (बा. 133.1)
130. कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरि चरित न जो हरषातीं ।। (बा. 113.4)
131. केहि कर हृदय क्रोध नहि दाहा । (उ. 70.4)
132. केहि न राज मद कीन्ह कलंकू । (अयो. 229.1)
133. केहि न सुसंग बडप्पन पावा । (बा. 10.4)
134. को न कुसंगत पाहि नसाही । नहे न नीच मते चतुराई ।। (अयो. 24 4)
135. को जग काम नचाव न जे हीं । (उ. 70.4)
136. को जग जाहि न व्यापी माया । (उ. 71.2)
137. कोउ नृप होइ हमहि का हानि । चेरि छांडि अब होहि कि रानी ।। (अयो. 16.3)
138. कोउ न मान मद तजेउ निवेही । (उ. 71.1)
139. कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ।। (उ. 87.1)
140. कोउ सर्वग्य धर्मरत कोई । सब पर पितहि प्रीति सम होई ।। (उ. 87.2)
141. कोउ पितु भगत वचन मन कर्मा । सपनेहु जान न दूसर धर्मा ।। (,,)
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । जद्यपि सो सब भांति अयाना ।। (उ. 87.3)
142. कोउ विश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु । (उ. 89)
143. चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि-पचि मरइ । (,,)
144. कोटि विप्र वध लागहि जाहू । आए सरन तजहि नहि काहू ।। (सु. 44.1)

जो सभीत आवा सरनाई । रखिअहु ताहि प्रान की नाई ।। (सु. 44.4)

145. कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक ग्यान सकृत कोउ लनई ।।
(उ. 54 2)

146. कोमल चित दीनन्ह पर दाया । मन वच क्रम मम भगति अभाया ।।
(उ. 38.2)

147. क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान । (उ. 111)

148. माया वस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान । (,,)

149. क्रोधहि सम कामिहि हरि कथा । असर बीज वए फल जथा ।। (सु. 58.2)

150. कौल काम नस कृपिन बिमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ।।
(लं. 31.1)

(ख)

151. खल कामादि निकट नहिं जाही । बसहिं भगति जाके उर माँहीं ।।
(उ. 120.3)

152. खल विनु स्वारथ पर अपकारी । अहिभूपक इव सुन उरगारी ।।
(उ. 121.9)

153. खल परिहास होइ हित मोरा । काक कहहि कलकंठ कठोरा ।। (वा. 9.1)

154. खलउ करहि भल पाइ सुसंगू । मिटहिं न मलिन सुभाउ अभंगू ।।
(बा. 7.2)

155. खलन्ह हृदय अति ताप बिसेपी । जरहि सदा पर सम्पति देखी ।।
(उ. 39.2)

156. खोजत कतहु मिलइ नहिं धूरी । करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी ।।
(कि. 15.2)

(ग)

157. ग्यान के पंथ कृपान के धारा । परत खगेस होहि नहीं वारा ।।
(उ. 119.1)

158. ग्यान विवेक विरति विज्ञाना । मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना ।।
(उ. 84.1)

159. ग्यान मान जंह एकहु नाहीं । देख ब्रह्म समानु सब मांही ।। (अ. 15.4)

160. ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका । साधत कठिन न मन कहु टेका ।। (उ. 45.2)

161. ग्यान दया दम तीरथ मज्जन । जंह लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ।।
(उ. 49.1)

162. ग्यान अखंड एक सीतावर । माया वस्य जीव सचराचर ।। (उ. 78.2)

163. ग्यानवंत कोटिक मह कोऊ । जीवन मुक्त सकृत जगसोऊ ।। (उ. 54.2)

164. ग्यान विराग जोग विग्याना । ए सब पुरुष सुनहु हरि जाना ।। (उ. 115.8)

165. ग्यानी तापस सूरकवि कोविद गुन आगार ।
केहि कै लोभ विडम्बना कीन्हि न एहि संसार ।। (उ. 70)

166. गई बहोरि गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ।। (बा. 13.4)

167. गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा । कीचहिं मिलै नीच जल संगा ।। (बा. 7.5)

168. गगन समीर अनल जल धरनी । इन्ह की नाथ सहज जड़ करनी ।।
(सु. 59.1)

169. गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिन्धु अनल सितलाई ।। (सु. 5.1)

170. गरल सुधा सम अरिहित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ।।
(उ. 120.4)

171. गरुड सुमेर रेनु समताई । राम कृपा कर चितवहि जाही ।। (सु. 5.2)

172. गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न । (बा. 18)

173. गिरजा संत समागम सम न लाभु कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ।। (उ. 125)

174. गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।।
(बा. 5.5)

175. गुन कृत सन्यपात नहिं के ही । कोउ न मान मदतजेउ निवेही ।।
(उ. 71.1)

176. गुरु के वचन प्रतीति न जेही । सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही ।।
(बा. 80.4)

177. गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करिय भलि जानी ।।
(अयो. 177.2)

178. गुरु पितु मातु बंधु सुरसाई । सेइ अहिं सकल प्रान की नाई ।।
(अयो 74.3)

179. गुरु पितु मातु स्वामि सिखपालें । चलेहु कुमथ पग परहि न खाले ।।
(अयो. 315.3)

180. गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई । जो बिरंचि संकर सम होई ।।
(उ. 93.3)

181. गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता । (बा. 166.3)

182. गुना गार संसार दुख रहित विगत संदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ।। (अ. 75)

183. गूढउ तत्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जंह पावहिं ।।
(बा. 110.1)

184 गो गोचर जंह लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ।। (अ. 15.2)

185. ग्रंथि न छूट मिटा सो प्रकासा । बुद्धि विफल भइ विषय बतासा ।।
(उ. 117.7)

186. ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग ।
होंहि कुवस्तु सुवस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ॥ (बा. 7)

(च)

187. चक्रवाक मन दुखनिसि परेवी । जिमि दुर्जन पर संपत्ति देखी ।। (कि. 17.2)

188. चतुर सिरोमनि तेउ जग माँही । जे मनि लागि सु जतन कराहीं ॥ (उ. 120.5)

189. चलइ जोंक जल वक्रगति जद्यपि सलिलु समान । (अयो. 42)

190. चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरइ । (उ. 89)

191. चहु जग चहु श्रुति नाम प्रमाऊ । कलि बिसेषि नहि आन उपाऊ ॥ (बा. 22.4)

192. चातक रटनि घटे घटि जाई । बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई ॥ (अयो. 205.2)

193. चारि पदारथ करतल ताकें प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें । (अयो. 46.1)

194. चाहत हंस सराहियत टेक विवेक विभूति । (अयो. 324)

195. चिंता सापिन को नहिं खाया । (उ. 71.2)

196. चितव जो लोचन आंगुलि लाए । प्रगट जुगल ससि तेहि के भाए ॥ (बा. 117.2)

197. चौरहि चंदिनि रात न भावा । (अयो. 11.4)

(छ)

198. छन सुख लागि जनम सत कोटी । दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥ (अ. 5.9)

199. छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ॥ (कि. 11.2)

200. छुद्र नदी भरि चली तोराई । जस थोरेहु धन खल बौराई ॥ (कि. 14.3)

201. छूटइ मल कि मलहिं के धोए । घृत कि पाव कोउ बारिविलोए ॥ (उ. 49.2)

202. छोरत ग्रंथि जानि खगराया । विघ्न अनेक करै तब माया ॥ (उ. 118.3)

203. छोरत ग्रंथि पाव जो सोई । तब यह जीव कृतारथ होई ॥ (उ. 118.3)

(ज)

204. जग बहु नर सर सरि सम भाई । जे निज बाढि बढ़हि जल पाई ।
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई । देखि पूर विधुवादइ जोइ ॥ (बा. 8.7)

205. जग जस भाजन चातक मीना । नेम पेम निज निपुन नवीना ।।
(अयो. 234.2)
206. जगपति ब्रता चारि विधि अहहीं । वेद पुरान संत सब कहहीं ।। (अ. 5.6)
207. जग बौराय राज पदु पाए । (अयो. 228.4)
208. जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ।। (बा. 117.4)
सब कर परम प्रकासक सोइ । राम अनादि अवध पति सोइ ।।
(बा. 117.3)
209. जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरिबारि विकारि ।। (बा. 6)
210. जथा गगन घनपटल निहारी । झाँपेउ भानु कहहिं कुविचारी ।।
(बा. 117.1)
211. जथा अनेक वेषधरि नृत्य करइ नट कोइ ।
सोइ सोइ भाव देखावहि आपुन होय न सोय ।। (उ 72)
212. जदपि प्रथम दुख पावहि रोवइ बाल अधीर ।
व्याधि नासहित जननी गनति सो सिसु पीर ।। (उ. 74)
213. जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा । जाइअ बितु बोलेहु न संदेहा ।
तदपि विरोध मान जंह कोई । तहाँ गए कल्यान न होई ।।
(बा. 62.3)
214. जद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कंह अधिक एक ते अधिका ।।
(बा. 42.4)
215. जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सबते कठिनु जाति अपमाना ।।
(बा. 63.4)
216. जनम मरन सब सुख दुख भोगा । हांनि लाभु प्रिय मिलन वियोगा ।।
(अयो. 150.3)
217. जनम मरन जंह लगि जग जालू । संपति विपति करमु अरु कालू ।।
(अयो. 92.3)
218. जनम हेतु सब कह पितु माता । करम सुभासुभ देइ विधाता ।।
(अयो. 255.3)
219 जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा ।
ससार महुं पुरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा ।।
एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं ।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं ।। (ल. छं 90)
220. जप तप नियम जोग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ।
(उ. 49.1)

221. जपतपमख सम दम . व्रत दान । विरति विवेक जोग विग्याना ।।
सवकर फल रघुपति पद प्रेमा । तेहि विनु कोउ न पावइ छेमा ।। (उ. 95.3)

222. जपहिं नामु जन आरत भारी । मिटहिं कु संकट होहि सुखारी ।।
(बा. 22.3)

223. जब काहू कै देखहि विपती । सुखी भए मानहुँ जग नृपती ।। (उ. 40.2)

224. जब जब होहिं धरम कै हानी । बाढ़हि असुर महा अभिमानी ।।
(बा. 121.3)

तब तव प्रभु धरि विविध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।
(बा. 121.4)

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग विस्तारहि विसद जस राम जनम कर हेतु ।। (बा. 121)

225. जब जेहि दिसि भ्रम होय खगेसा । सोकह पच्छिम उयउ दिनेसा ।।
(ना. 73·2)

226. जब सो प्रभंजन उर ग्रह जाही । तवहिं दीप विग्यान बुझाही ।। (उ. 118.6)

227. जरहिं पतंग मोहवस भार वहहि खल वृंद ।
ते नहि सूर कहावहीं समुझि देखु मति मंद ।। (लं. 29)

228. जल चर थल चर नभ चर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ।।
(बा. 2.3)

229. जलपय सरिस विकाय देखहु प्रीति कि रीति भलि ।
विलग होत रसु जाय कपट खटाई परत ही ।। (बा. 57)

230. जल विनु रस कि होइ संसारा । (उ. 90.3)

231. जलदु जनम भरि सुरति विसारउ । जाचत जलु पवि पाहन डारउ ।।
(अयो. 205.2)

232. जलधि अगाध मौलि वह फेनू । संतत धरनि धरत सिर फेनू ।।
(बा. 167.4)

233. जहं कहु निंदा सुनहि पराई । हरषहिं ममहुं परी निधि पाई ।।
(उ. 39.2)

234. जहंलगि हाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहिं तरनि हु ते ताते ।।
(अयो 65.2)

235. जहाँ सुमति तहं संपति नाना । जहाँ कुमति तहं विपति निदाना ।।
(सु. 40.3)

236. जाकर चित अहि गति सम भाई । अस कुमित्र परिहरेहि भलाई ।।
(कि. 7.4)

237. जाके हृदय भगति जसि प्रीती । प्रभु तंह प्रकट सदा महि रीती ।।
(बा. 185.2)

238. जावे वेगि द्रवहु मै भाई । सोसम भगति भगत सुख दाई ।। (अ. 16.1)

239. जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ । नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ।। (बा. 22.2)

240. जानि न जाय नारि गति भाई । (अयो. 47.4)

241. जानि सरद ऋतु खंजन आए । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए ।। (कि. 16.2)

242. जानिअ तबहि जीव जग जागा । जब सब विषय विलास विरागा ।। (अयो. 93.2)

243. जाने ते छीजहु कछु पापी । नास न पावहिं जन परितापी ।। (उ. 122.2)
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे । मुनिहु हृदय का नर बापुरे ।। (,,)

244. जाने विनु न होय परतीती । विनु परतीति होय नहिं प्रीती ।। (उ. 89 4)

245. जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई । गिरजा सोइ कृपाल रघुराई ।। (बा. 118.2)

246. जासु घ्रान अस्विनी कुमारा । अस दिवस निमेष अपारा ।। (लं. 15.2)

247. जासु भवन सुरतरु तर होई । सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई ।। (बा. 108.2)

248. जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।। बा. 117.4)

249. जासु सत्यता ते जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ।। (बा. 117.4)

250. जिन्ह के असि मति सहज न आई । ते सठ कत हठि करत मिताई :। (कि. 7.2)

251. जिन्ह कै लहहि नरिपु रन पीठी । नहि पावहिं पर तिय मन डीठी ।। (बा. 231.4)

252. जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना । श्रवन रंध्र अहि भवन ससाना ।। (बा. 113.1)

253. जिन्ह हरि भगति हृदय नहि आनी । जीवत सब समान तेहि प्रानी ।। (बा. 113.3)

254. जिमि कपूत के उपजे कुल सद्धम नसाहिं । (कि. 15)

255. जिमि चह कुसल अकारन कोही ! सब सम्पदा चहै सिव द्रोही ।। (बा. 267.1)

256. जिमि थल विनु जल रहि न सकहि । कोटि भाँति कोउ करै उपाइ ।। (उ. 119.3)
तथा मोच्छ सुख सुन खगराई । रहि न सकइ हरि भरि भगति विहाई ।। (119.3)

257. जिमि सरिता सागर महुँ जाही । जद्यपि ताहि कामना नाहीं ।।
(बा. 294.1)

तिमि सुख सम्पति बिनहिं बोलाए । धर्मशील पहिं जाहिं सुभाए ।।
(बा. 294.2)

258. जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं । मातु चिराव कठिन की नाईं ।।
(उ. 74.4)

259. जिय बिनु देह नदी बिनुवारी । तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी ।।
(अयो. 65.4)

260. जीव करम बस सुख दुख भागी । (अयो. 12.2)

261. जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला । (उ. 122.8)

262. जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा । (कि. 11.3)

263. जीवन मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान । (उ. 42)

263. जीवन मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान । (उ. 42)

264. जुग बिधि ज्वर मत्सर अविवेका । कहँ लगि कहौ कुरोग अनेका ।।
(उ. 121.19)

265. जे अस भगति जानि परहरहीं । केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं ।।
(उ. 115.1)

266. जे गुरुपद अंबुज अनुरागी । ते लोकहु वेदहु बड़भागी ।। (अयो. 259.3)

267. जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं । ते जन सकल बिभव बस करहीं ।।
(अयो. 3.3)

268. जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ।।
(कि. 7.1)

269. जे पर भनिति सुनत हरषाहीं । ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ।।
(बा. 8.6)

270. जे पर दोष लखहिं सहसाखी । परहित घृत जिन्ह के मन माखी ।।
(बा. 4.2)

271. जे मति मलिन बिषय बस कामी । प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी ।।
(उ. 73.1)

272. जे सठ गुरु सन इरिषा करहीं । रौरव नरक कोटि जुग परहीं ।।
(उ. 107.3)

273. जे सकाम नर सुनहि जे गावहिं । सुख सम्पति नाना बिधि पावहिं ।।
(उ. 15.2)

274. जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलहिं न कछु संदेहू ।।
(बा. 259.3)

275. जेहि जन पर ममता अति छोहू । जेहि करुना करि कीन्ह न मोहू ।।
(बा. 13.3)

276. जेहि जाने जग जाइ हेराई । जागे जथा सपन भ्रम जाई ।। (बा. 112.1)

277. जेहि ते कछु निज स्वारथ होई । तेहि पर ममता कर सब कोई ।।
(उ. 95.4)

278. जेहि ते नीच बड़ाई पावा । जो प्रथमहिं हति लाहि नसावा ।।
(उ. 106.5)

279. जो गुन रहित सगुन सगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपज बिलग नहिं जैसे ।।
(बा. 116.2)

280. जो अति आतप व्याकुल होई । तरु छाया सुख जानइ सोई ।।
(उ. 69.2)

281. जो चेतन कहं जड़ करहिं जड़हि करहिं चैतन्य । (उ. 119)

282. जो तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी । तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ।।
(उ. 118.5)

283. जो न तरइ भवसागर नर समाज अरु पाइ ।
सो कृत निंदक मंदगति आत्माहन गति जाइ ।। (उ. 44)

284. जो नहिं करइ राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ।।
(बा. 113.3)

285. जो प्रबन्ध कछु नहिं आदरहीं । सो स्रम बादि बाल कवि करहीं ।।
(बा. 14.4)

286. जो बालक कहि तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ।।
(बा. 8.5)

287. जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा । (उ. 71.1)

288. जो माया सब जगहिं नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा ।। (उ. 72.1)

289. जो मुनि कोट जतनि नहिं लहहीं । जे जप जोग अनल तन दहहीं ।।
(उ. 85.2)

290. जो सबके रह ग्यान एक रस । ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ।।
(उ. 78.3)

291. जो सपने सिर काटहि कोइ बिनु जागे न दूर दुख होइ । (बा. 118.1)

292. जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । वन्दनीय जोहि जग जस पावा ।।
(बा. 2.3)

293. जो सेवकु साहिबहि संकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ।।
(अयो. 268.2)

294. जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू । जैह नहिं राम प्रेम परधानू ।। (अयो. 291.1)

295. जोग वियोग भोग भल मंदा । हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ।।
(बा. 92.3)
296. जौं निर्विघ्न पथ निर्बहई । सो कैवल्य परम पद लहई ।। (उ. 119.1)

(झ)

297. झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठइ चवेना ।। (उ. 39.4)
298. झूठउ सत्य जाहि विनु जाने । जिमि भुजंग विनु रज पहिचाने ।।
(बा. 112.1)

(ट)

299. टेढ़ जानि सब वंदहिं काहू । बक्र चन्द्रमहि ग्रसहि न राहू ।। (बा. 281.3)

(ड)

300. डाटेहि पर नव नीच । (सु. 58)

(ढ)

301. ढोल गंवार सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ।। (सु. 59.2)

(त)

302. त्यागहि कर्म शुभाशुभ दायक । भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक ।।
(उ. 41.1)
303. तनु चोषक निंदक अघ खानी । जीवत शव सम चौदह प्रानी ।। (लं. 31.2)
304. तनु विनु परस नयन विनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु वास अपेसा ।।
(बा. 118.4)
305. तनु धनु धाम धरनि पुर राजू । पति विहीन सब शोक समाजू ।।
(अयो. 65.2)
306. तप अधार सब सृष्टि भवानी । (वा. 73.3)
307. तप सुख प्रद दुख दोष नसावा । (बा. 73.1)
308. तप वल ते जग सृजइ विधाता । तप बल विष्णु भए परि त्राता ।।
(बा. 116.1)
309. तप वल रचइ प्रपंच विधाता । तप वल विष्नु सकल जग त्राता ।।
(बा. 73.2)
310. तप त्रल शंभु करहि संघारा । तप वल सेपु घरइ महि भारा ।। (बा. 73.2)
311. तप बल संभु करहिं संघारा । तप ते अगम न कछु संसारा ।। (बा. 1612)
312. तब फिरि जीव विविध विधि पावइ संसृति कलेश ।
हरि माया अति दुस्तरइ तरि न जाइ विहंगेश ।। (उ. 118)
313. तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहिं विरोधे नहिं कल्याना ।
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी । वैद बंदि कवि मानस गुनी ।। (अ. 26.2)
314. तबलगि कुसल न जीव कहु सपनेहु मन विश्राम ।

जब लगि भजत न राम कहु सोक धाम तजि काम ।। (सु. 46)

315. तब लगि बसत जीव मन मांही । जब लगि प्रभु प्रनाप रवि नाहीं ।। (सु. 47.2)

316. तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मच्छर मद माना ।। (सु. 47.1)

317. तब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरै चाप सायक कटि माथा ।। (,,)

318. तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा । उर ग्रह बैठि ग्रंथ निस धारा ।। (उ. 118.2)

319. तबहि होइ सब संसय भंगा । जब बहु काल करिअ सतसंगा ।। (उ. 61.2)

320. तात अनल कर सहज सुभाऊ । हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ।। (उ. 90.4)

321. तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विज्ञान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ।। (अ. 38)

322. तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ।। (सु. 4)

323. ताते सुर सीसन्ह चहत जग बल्लभ श्रीखण्ड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दण्ड ।। (उ. 37)

324. ता पस बहुत रजो गुन थोरा । कलि प्रभाव विरोध चहु ओरा ।। (उ. 104.3)

325. तासु विरोध न कीजिय नाथा । कल करम जिव जिन्ह के हाथा ।। (लं. 6.5)

326. ताहि कबहु मल कहइ न कोई । गुंजा ग्रह्य परस मनि खोई ।। (उ. 44.2)

327. तिन्ह कर संग सदा दुख दाई । जिमि कपलहि घालइ हरहाई ।। (उ. 39.1)

328. तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला । ताहि न व्याप त्रिविध भव सूला ।। (सु. 47.3)

329. तुलसी देखि सुवेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर ।
सुन्दर के लहि पेखु बचन सुधा सम असन आहि ।। (बा. 161)

330. तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलइ सहाय ।
आपु न आवै ताहि पाहि ताहि तहां ले जाइ ।। (बा. 159)

331. ते जड़ जीव निजात्मक घाती । जिन्हहिं न रघुपति कथा सोहाती ।। (उ. 53.3)

332. ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आकु फिरहिं पयलागी ।। (उ. 115.1)

333. तेज कृसानु रोष महि पेसा । अघ अवगुन धन धनि धनेसा ॥ (बा. 4 3)

334. ते सठ महा सिंधु बिनु तरहीं । पैरि पार चाहहिं जड़ करनी ॥
(उ. 115.2)

335. ते सठ हट बस संसय करहीं । निज अग्यान राम पर धरहीं ॥ (उ. 73.5)

336. ते सिर कटु तुंबरि समतूला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥
(बा. 113.2)

337. तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥ (अ. 15.2)

338. तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई । (लं 35.4)

339. तृष्ना केहि न कीन्ह दौराया । (उ. 70.4)

340. तृष्ना उदर वृद्धि अति भारी । त्रिविध ईषना तरुन तिजारी ॥
(उ. 121.18)

341. तृषित वारि बिनु जोतनु त्यागा । मुए करहिं का सुधा तड़ागा ॥
(बा. 261.1)

(थ)

342. थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा । (उ. 90.1)

(द)

343. दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाके पद सरोज रति होई ॥
(उ. 49.4)

344. दण्ड जतिन्ह कर भेद जंह नर्तक नृत्य समाज ।
साम न दान न भेद कलि केवल दण्ड कराल ॥ (उ. 22)

345. दम मान मद करहिं न काऊ । भूमि न देहि कुमारग पांऊ ॥
(अर. 46.8)

346. दानव देव ऊंच अरु नीचू । अभिय सुजीवन माहुरु मीचू ॥ (बा. 6.3)

347. दामिनि दमक रह न घन माहीं । खल कै प्रीति यथाथिर नाहीं ॥
(कि. 41.1)

348. दीपसिखा सम जुवति तन मन जसि होत पतंग ।
भजहिं राम तजि काम मद बगरहिं सदा सतसंग ॥ (अ. 46)

349. दुइ कि होहि एक समय भुआला । हंसब ठठाइ फुलाउब माला ॥
(अयो. 35.3)

350. दुख सुख पाप पुण्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
(बा. 6 3)

351. दुष्ट उदय नग आरति हेतू । जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥
(उ. 121.10)

352. देखिअहि रूप नाम आधीना । रूप ग्यान नहिं नाम विहीना ॥
(बा. 21.2)

353. देखिय सुनिग्र गुनिग्र मन मांही । मोह मूल परमारथु नाहीं ।। (ग्रयो. 92.4)

354. देखिग्रत चक्रबाक खग नाहीं । कलिहि पाइ जिमि धर्म पराही ।।
(कि. 15.5)

355. देत लेत मन संक न धरहीं । बल ग्रनुमान सदा हित करहीं ।।
(कि. 7.3)

356. देस काल दिसि बिदि सहुँ मांही । कहहुँ सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ।।
(बा. 185.3)

357. देहि धरे कर फलु भाई । भजहिं राम सब काम बिहाई ।। (कि. 23.3)

358. दोपु देहि जननिहिं जड़ तेई । जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई ।।
(ग्रयो. 263.4)

(ध)

359. ध्यान प्रथम जुग मखविधि दूजे । द्वापर परितोषत प्रभु पूजे ।।
(बा. 27.2)

360. धन्य घरी सोइ जब सतसंगा । (उ. 127.4)

361. धन्य जनम जग तीतल तासू । पितहि प्रमोद चरित सुन जासू ।।(ग्रयो 46.1)

362. धर्म कि दया सरिस हरि जाना । (उ. 122.5)

363. धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना । ज्ञान मोच्छ प्रद वेद बखाना ।।
(ग्र. 16.1)

364. धर्म परायन सोइ कुल त्राता । राम चरन जाकर मन राता ।।
(उ. 127.1)

365. धर्म बिचारि समुझि कुल रहई । सो निविष्ट त्रिय श्रुति ग्रस कहई ।।
(ग्र. 5.7)

366. धर्म सील कोटिक मंह कोई । विषय विमुख विराग रत होई ।।
(उ. 54.1)

367. धर्म सील विरक्त ग्ररु ग्यानी । जीवन मुक्त ब्रह्म पर ग्यानी ।।
(उ. 54.3)

368. धरम न दूसर सत्य समाना । ग्रागम निगम पुरान बखाना ।।
(ग्रयो. 95.3)

369. धरनि धामु धनु पुर परिवारू । सरगु नरकु जंह लगि व्यवहारू ।।
(ग्रयो. 92.4)

370. धीरज धर्म मित्र ग्ररु नारी । ग्रापद काल परिखिग्रहु चारी ।। (ग्र. 5.4)

371. धूम कुसंगति कारिख होई । लिखग्र पुरान मंजु मसि होई ।। (बा. 7.6)

372. धूम ग्रनल सम्भव सुन भाई । तेहि बुझाव धन पदवी पाई ।। (उ. 106.5)

373. धूमउ तजइ सहज करु ग्राई । ग्रगरु प्रसंग सुगन्ध वसाई ।। (बा. 10.5)

(न)

374. नट मरकट इव सबन्हि नचावत । रामु खगेस वेद ग्रस गावत ।। (कि. 7.12)
375. नयन दोष जा कहु जब होई । पीत वरन ससि कहु-कह सोई ।। (उ. 73.2)
376. नर सहस्त्र महु सुनहु पुरारी । कोउ एक होय धर्म व्रत धारी ।। (उ. 54.1)
377. नर सरीर धरि जे पर पीरा । करहिं ते सहहिं महा भवभीरा ।। (उ. 41.2)
378. नरतनु पाइ विषय मन देही । पलटि सुधा ते सठ विष लेही ।। (उ. 44.1)
379. नरतनु भव वारिधि कहु बेरो । सनमुख मरुत ग्रनुग्रह मेरो ।। (उ. 44.4)
380. नरतनु सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही ।। (उ. 121.5)
381. नरक स्वर्ग ग्रपवर्ग निसेनी । ग्यान विराग भगति सुभ देनी ।। („)
382. नव पल्लव भए विटप ग्रनेका । साधक मन जस मिले विवेका ।।
(कि. 15.1)
383. नवनि नीच कै ग्रति दुख दाई । जिमि ग्रकुस धनु उरगु विलाई ।।
(ग्र. 24.4)
384. नहिं ग्रसत्य सम पातक पुँजा । गिरि सम होंहि कि कोटिक गुँजा ।।
(ग्रयो. 28.3)
385. नहिं कोउ ग्रस जनमा जग मांही । प्रभुता पाहि जाहि मद नाहीं ।।
(वा. 60.4)
386. नहिं कलि करम न भगति विवेकू । राग नाम ग्रवलनु एकू ।। (वा. 28.1)
387. नहि कछु दुर्लभ ज्ञान समाना । (उ. 115.१)
कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेका । (उ. 118)
होइ घुनाच्छर न्याय जो पुनि प्रत्यूह ग्रनेका ।।
388. नाथ जीव तव माया मोहा । सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा ।। (कि. 3.1)
389. नाथ वयरु कीजे ताहीं सो । बुधिवल सकइ जीति जाहीं सो ।। (लं. 6.3)
390. नाथ विषय सम मदु कछु नाहीं । मुनि मनमोह करइ छन माँही ।।
(कि. 20.4)
391. नाम उधोर ग्रमित खल वेद विदित गुन गाथ । (वा. 24)
392. नाम गरवि ग्रनेक निवाजे । लोक वेद वर विरिद विराजे ।। (वा. 24.1)
393. नाम जीह जपि जगहि जोगी । परमारथी प्रपंच वियोगी ।। (वा. 22.1)
394. नाम काम तरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाना ।।
(वा. 27.3)
395. नाम निरूपन नाम जतन ते । सोइ प्रगटत जिमि मोल रतन ते ।।
(वा. 23.4)
396. नामु रूप दुइ ईस उपाधी । ग्रकथ ग्रनादि सुसामुझि साधी ।। (वा. 21.1)
397. नामु राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवासु ।
जो सुमिरत भयो मांग ते तुलसी तुलसी दास ।। (वा. 26)

398. नारि नयन सर जाहि न लागा । घोर क्रोध तम निसि जो जागा ।।
(कि. 21.2)

399. नारि सुभाऊ सत्य सब कहहीं । अवगुन आठ सदां उर रहहीं ।
साहस अनृत चपलता माया । भय अविवेक असौच अदाया ।। (लं. 16.1)

400. निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुरमहि गो द्विज लागि । (कि. 26)
सगुन उपासक संग तंह रहहिं मोच्छ सब त्यागि ।। (,,)

401. निज कवित्त केहि लाग न नीका । सरस होय अथवा अति फीका ।।
(बा. 8.6)

402. निजगुन श्रवन सुनत सकुचाहीं । परगुन सुनत अधिक हरषाहीं ।।
(अ. 46.1)

403. निज जुग धर्म होहि सब केरे । हृदय राम माया के प्रेरे ।। (उ. 104.1)

404. निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज । (उ. 38)

405. निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ।।
(कि. 70.1)

406. निज परिताप द्रवइ नवनीता । परदुख द्रवइ सत सुपुनीता ।। (उ. 125.4)

407. निज भ्रम नहिं समुझाहि अग्यानी । प्रभु पर मोह धरी जड़ प्रानी ।।
(बा. 117.1)

408. निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा । परस किहोइ विहीन समीरा ।।
(उ 80.4)

409. निज हित अनहित पसु पहिचाना । (अयो. 19.1)

410. निरगुन ते यहि भांति बड़ नाम प्रभाउ अपार । (बा. 23)
कहौ नाम बड़ राम ते निज विचार अनुसार ।।

411. निरगुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोय ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होय ।। (उ. 73)

412. निर्मम निराकार निरमोहा । नित्य निरंजन सुख संदोहा ।। (उ. 72.3)

413. निसि तम घन खद्योत विराजा । जनु दंभिन्ह करमिल समाजा ।।
(कि. 15.3)

414. नीति न तजिअ राज पदु पाए । (अयो. 125.2)

415. नीति निपुन सोइ परम सयाना । श्रुति सिद्धान्त नीक तेहिं जाना ।।
(उ. 127.2)

416. नीति विरोध न मारिय दूता । (सु. 24.4)

417. नौकारूढ़ चलत जग देखा । अचल मोहवस आपुहिं लेखा ।। (उ. 73.3)

(प)

418. पंक नरेनु सोह ग्रसि धरनी । नीति निपुन नृप कै ग्रसि करनी ।। (कि. 16.4)

419. पद पाताल सीस ग्रज धामा । ग्रपर लोक ग्रंग ग्रंग बिश्रामा ।। (लं. 15.1)

420. पर ग्रकाजु लगि तनु परि हरही । जिमि हिम उपज कृपी दल गरही ।। (बा. 4.4)

421. पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सु संपति पाय । (ग्र. 40)

422. पर उपकार वचन मन काया । संत सहज सुभाउ खग राया ।। (उ. 121.7)

423. पर उपदेश कुसल बहुतेरे । जे ग्राचरहि ते नर न घनेरे ।। (लं 87.1)

424. पर द्रोही कि होहिं निसंका । (उ. 112.1)

425. पर दुख देखि जरन सोइ छई । कष्ट दुष्टता मन कुटिलई ।। (उ. 121.17)

426. पर द्रोही पर दार रत परधन पर ग्रपवाद ।
ते नर पावर पाप मय देह धरे मनु जाद ।। (उ. 39)

427. परम प्रकास रूप दिन राती । नहिं कछु चहिग्र दिया घृत वाती ।। (उ. 120 2)

428. पर संपदा बिनासि नसाहीं । जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ।। (उ. 121.10)

429. पर वस जीव स्ववस भगवंता । जीव ग्रनेक एक श्रीकंता ।। (उ. 78.4)

430. परस कि होइ बिहीन समीरा ।। (उ 90.4)

431. परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहुं जग दुर्लभ कछु नाहीं ।। (ग्र. 31.5)

432. परहित लागि तजै जो द्रोही । संतत् संत प्रसंसहि तेही ।। (बा. 84.1)

433. परहित सरिस धरम नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं ग्रधमाई ।। (उ. 41.1)

434. परहित हानि लाभु जिन्ह केरे । उगरें हरष विषद वसेरे ।। (बा. 4.1)

435. पति वंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ।। (ग्र. 5.8)

436. पति प्रतिकूल जनम जंह पाई । विधवा होय पाइ तरु नाई ।। (ग्र. 5.10)

437. परम धरम स्रुति विदित ग्रहिंसा । परनिंदा सम ग्रघ न गिरीसा ।। (उ. 121.11)

438. प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी । ब्रह्म निरीह विरज ग्रविनासी ।। (उ. 72.4)

439. प्रगट चारि पद धर्म कै कलि महुं एक प्रधान ।
जेन केन विधि दीन्हे दान करहुं कल्यान ।। (उ. 103)

440. प्रबल ग्रविद्या कर परिवारा । मोह ग्रादि तम मिटइ ग्रपारा ।। (उ. 118.2)

441. प्रवल अविद्या तम मिटि जाई । बसहि भगति जाके उर मांही ॥
(उ. 120.3)

442. प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विधा । (उ. 79.2)

443. प्रभु माया बलवंत भवानी । जाहि न मोह कवन अस जानी ॥ (उ. 62.5)

444. पाट कीट ते होहिं तेहि पाटंबर रुचिर ।
क्रमि पालइ सव कोइ परम अपावन प्रान सम ॥ (उ. 95)

445. पावन जस कि पुन्य विनु होई । विनु अघ अजस कि पावइ कोई ॥
(उ. 112.4)

446. पावन पर्वत वेद पुराना । राम कथा रुचिरा कर नाना ॥ (उ. 120.7)

447. पिय वियोग सम दुख जग नाहीं । (अयो. 64.4)

448. प्रिय बानी जे सुनहि जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥ (लं 9.4)

449. प्रीति विना नहिं भगति दृढाई । जिमि खग पति जल कै चिकनाई ॥
(उ. 89.4)

450. प्रीति विरोध समान सन करिअ नीति अस आहि ।
जौ मृगु पति वध मेडु कन्हि भलि कि कहइ कोउ ताहि ॥ (लं. 16)

451. पुण्य पुंज विनु मिलहि न संता । सत संगति संसृति कर संता ॥ (उ. 45.3)

452. पुत्रवती जुगती जग सोई । रघुपति भगतु जासु सुता होई ॥ (अयो. 75.1)
नतरु बांझ भल वादि पिआनी । राम विमुख सुत तेहित जानी ॥ (,,)

453. पुरुप नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोई ।
सर्वभाव मज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोई ॥ (उ. 87)

454. प्रेम भगति जल विनु खगराई । अभि अन्तर भल कवहु न जाई ॥
(उ. 49.3)

(फ)

455. फरइ कि कोदव वालि कुसाली । मुक्ता प्रसव कि संवुक काली ॥
(अयो. 261.2)

456. फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुन घेरा । (उ. 44 3)

457. फूलइ फरइ न वेंत जदपि सुधा वरषहिं जलद । (लं. 16)
मूरख हृदय न चेत जौ गुरु मिलहिं विरंचि सम ॥

458. फूले कमल सोइ सर कैसा । निगुन ब्रह्म सगुन भए जैसा ॥ (कि 17.1)

459. व्यापक अकल अनहि अज निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप ॥ (बा. 205)

(ब)

460. व्यापक व्याप्य अखंड अनंता । अखिल अमोघ सक्ति भगवंता ॥
(उ. 72.2)

461. ब्यापकु एक ब्रह्म अबिनासी। संत चेतन घन आनंद रासी ।।
(बा. 23.3)

462. ब्यापि रहउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड ।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ।। (उ. 71)

463. बचन बज्र जेहि सदा पिआरा । सहस नयन परदोष निहारा ।।
(बा. 6.4)

464. बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ।।
(लं. 9.5)

465. बड़े भाग मानस तनु पावा । सुभ दुर्लभ सब ग्रंथन्हि पावा ।। (उ. 42.4)
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहि परलोक संवारा ।। („)
सो परत्र दुख पावहि सिर धुनि-धुनि पछिताइ ।
कालहि करमहि इस्वरहि मिथ्या दोष लगाय ।। (उ. 43)

466. बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं । गिरि निज सिरन्हि सदा तृन धरहीं ।।
(बा. 167.4)

467. बंदउ नाम राम रघुवर को । हेतु कृशानु भानु हिमकर को ।।
(बा. 19.1)

468. बंदऊ संत समान चित हित अनहित नहि कोऊ । (बा. 3)
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोऊ ।। („)

469. बयरु अकारन सब काहूँ सौं । जो कर हित अनहित ताहूँ सौं ।। (उ 39.3)

470. बररै बालक एक सुभाऊ । इन्हहि न संत विदूषहिं काऊ ।। (बा. 279.2)

471. बरु मल वास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देहि विधाता ।।
(सु. 46.4)

472. बरषहिं जलद भूमि निअराए । जथा नवहिं बुध विधा पाए ।।
(कि. 14.2)

473. बल बिबेक दम परहित थोरे । क्षमा कृपा समता रजु थोरे ।।
(लं. 80.3)

474. बसन हीन नहि सोह सुरारी । सब भूषन भूषित वर नारी ।।
(सु. 23.2)

475. बहुरि बंदि खल गन सति भाए । जैविनु काज दाहि नेहु वाए ।।
(बा. 4.1)

476. ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धर होय नर जाहि न जानत वेद ।। (बा. 50)

477. ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहि ।
कथा सुधा मथि कढ़हि भगति मधुरता जाहि ।। (उ. 120)

478. बांझ कि जान प्रसव कै पीरा । (बा. 97.2)

479. बायस पलिअहि अति अनुरागा । होहिं निरामिष कबहु कि कागा ।। (बा. 5.1)

480. बारि मथे घृत होय बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल ।। (उ. 122)

481. बालक भ्रमहि न भ्रमहि गृहादी । कहहि परस्पर मिथ्यावादी ।। (उ. 73.3)

482. बालि त्रास व्याकुल दिन राती । तनु बहु ब्रन चिंता जर छाती ।। (कि. 12.2)

483. बिछुरत एक प्रान हर लेही । मिलत एक दारुन दुख देही ।। (बा. 5.2)

484. बिद्या बिनु बिवेक उपजाए । श्रम फल पढ़े किए अरु पाए ।। (अ. 21.5)

485. बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं । फनि मनि समनिज गुन अनुसरहीं ।। (बा. 3.5)

486. बिधिहु न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ।। (अयो. 162.2)

487. बिधु बदनी सब भाँति संवारी । सोह न बसन बिना बर नारी ।। (बा. 10.2)

488. बिन गुरु होय कि ग्यान ग्यान कि होय बिराग बिनु ।
गावहि वेद पुरान सुख कि लहहि हरि भगति बिनु ।। (उ. 89)

489. बिनसइ उपजहि ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग । (कि. 15)

490. बिनु अवसर भय ते रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ।। (अ. 5.8)

491. बिनु अघ अजस कि पावइ कोई । (उ. 112.4)

492. बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा ।। (कि. 16.5)

493. बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा । (उ. 90.3)

494. बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु करम करै बिधि नाना ।। (बा. 118.3)

495. बिनु महि गंध कि पावइ कोई । (उ. 90.2)

496. बिनु बिग्यान कि समता आवइ । कोइ अवकास कि नभ बिनु पावइ ।। (उ. 90.2)

497. बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम ।
राम कृपा बिनु सपनेहु जीव न लह बिश्राम ।। (उ. 90)

498. बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छांडि छल गहई ।। (अ. 5.9)

499. बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भागु ।
मोह गये बिनु राम पद होय न दृढ अनुराग ।। (उ. 61)

500. बिनु सतसंग विवेकु न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।। (बा. 3.4)
501. बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहु नाहीं ।। (उ. 90.1)
502. बिनु हरि भजन न जाहि कलेसा । (उ. 89.3)
503. बिपति काल करि सतगुन नेहा । स्रुति कह संत मित्र गुन एहा ।। (कि 7.3)
504. बिफल होय सब उद्यम ताके । जिमि परद्रोह निरत मनसाके ।। (लं. 92.2)
505. बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ।। (कि. 15.6)
506. बिमुख राम त्राता नहिं कोपी । (सु. 23.4)
507. बिमुख राम सुख पाव न कोई । (उ. 122.1)
508. बिरति बिवेक बिनय बिग्याना । बोध जथा रथ बेद पुराना ।। (अर. 46.3)
509. बिरति बिवेक भगति दृढ़ करनी । मोह नदी कँह सुन्दर तरनी ।। (उ. 15.3)
510. बिषय अलंपट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ।। (उ. 38.1)
511. बिषय करन सुर जीव समेता । सफल एक ते एक सचेता ।। (बा. 117.3)
512. बिषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना । (उ. 121.16)
513. बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी । (कि. 21.2)
514. बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ।। (उ. 118.8)
515. बिषई जीव पाइ प्रभु ताई । मूढ़ मोह बस होहि जनाई ।। (अयो. 228.1)
516. बिषई साधक सिद्धि सयाने । त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ।। (अयो 276.2)
517. बुध जुग धर्म जानि मन माँही । तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ।। (उ 104.3)
518. बुध नहिं करहिं अधम कर संगा । (उ. 106.7)
519. बूंद अघात सहहि गिरि कैसे । खल के वचन संत सहि जैसे ।। (कि. 14.2)
520. बैखानस सोइ सोचै जोगू । तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ।। (अयो. 173.1)
521. बैन तेय बलि जिमि चह कागू । जिमि ससु चेहै नाग अरि भागू ।। (बा. 267.1)
522. बैर प्रेम नहिं दुरय दुराये । (अयो. 264.1)
523. बैर प्रीति नहि दुरइ दुराये । (अयो. 193.1)
524. बोलहि मधुर वचन जिमि मोरा । खाइ महा अहि हृदय कठोरा ।। (उ. 39.4)
525. बोले बिहंसि महेस तब ग्यानी मूढ न कोय ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होय ।। (बा. 124)

(भ)

526. भगति करत बिनु जतन प्रयासा । संसृति मूल अविद्या नासा ।। (उ. 119.5)

527. भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलइ जो संत होय अनुकूला ।।
(अ. 16.2)

528. भगति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।। (उ. 45.3)

529. भगति हीन गुन सब सुख ऐसे । लवन बिना बहु व्यंजन जैसे ।। (उ. 84.3)

530. भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल वारिद देखिअ जैसा ।। (अ. 35.3)

531. भगतहि ग्यानहि नहि कछु भेदा । उभय हरहिं भवसम्भव खेदा ।।
(उ. 115.7)

532. भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ । राम नाम बिनु सोह न सोऊ ।।
(बा. 10.2)

533. भव सागर चह पार जो पावा । राम कथा ता कंह दृढ़ नावा ।।
(उ. 53.2)

534. भवकि परहि परमात्मा निंदक । सुखी कि होंहि कबहु हरि निंदक ।।
(उ. 112.3)

535. भयदायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल कै कुसुम भवानी ।।
(अ. 24.4)

536. भय बिनु होय न प्रीति । (सु. 57)

537. भल अनभल निज निज करतूती । लहत सुजस अपलोक बिभूती ।।
(बा. 5.4)

538. भलो भलाई पै लहहि लहहि निचाई नीचु ।
सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु ।। (बा. 5)

539. भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घन माला ।।
(लं. 15.1)

540. भानु कृशानु सर्व रस खाहीं । तिन्ह कंह मंद कहत कोउ नाहीं ।।
(बा. 69.3)

541. भानु पीठि सेइअ उर आगी । स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी ।।
(कि. 23.2)

542. भाव सहित जो खोजहिं प्रानी । पाव भगति मनि सब सुख खानी ।।
(उ. 120.8)

543. भाय कुभाय अनख आलस हूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।।
(बा. 28.1)

544. भूपति भावी मिटहि नहिं जदपि न दूषन तोर । (बा. 174)

545. भूमि परत भा ढावर प्रानी । जनु जीवहि माया लपटानी ।। (कि. 14.3)

546. भूर्ज तरु सम संत कृपाला । परहित नित सहि बिपति बिसाला ।।
(उ. 121.8)

(म)

547. मंगन लहहिं न जिनकै नाहीं । ते नर बर थोरे जग मांही ।। (बा. 231.4)
548. मच्छर काहि कलंक लगावा । (उ 71 2)
549. मध्यम परपति देखइ कैसे भ्राता पिता पुत्र निज जैसे । (अ. 5.7)
550. मनि मानिक मुक्ता छवि जैसी । अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ।। (बा. 11.1)
नृप किरीट तरुनी तनु पाई । लहहि सकल शोभा अधिकाई ।। (,,)
तैसेहि सुकवि कवित वुध कहहीं । उपजहिं अनत अनत छवि लेही ।। (बा. 11.2)
551. ममता केहि कर जस न नसावा । (उ. 71.1)
552. ममता तरुन तमी अंधियारी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ।। (सु. 47.2)
553. ममता दादु कंडु इरषाई । हरष विपाद गरइ बहुताई ।। (उ. 121.17)
554. ममता रत सन ग्यान कहानी । अति लोभी सन विरति वखानी ।। (सु. 58.2)
555. मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ग्यान विराग नयन उरगारी ।। (उ. 120.7)
556. मरुत उडाव प्रथम तेहि मरई । पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई ।। (उ. 106.6)
557. महावृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि सुतंत्र भए विगरहिं नारी ।। (कि. 15.4)
558. मातु पिता भ्राता हितकारी । मित प्रद सव सुन राज कुमारी ।। (अ. 5.3)
559. मात पिता गुरु स्वामि सिख सिरधरि करहि सुमाय ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जाय ।। (अयो. 70)
560. मात पिता गुरु प्रभु कैवानी । विनहि विचारि करिय सुभजानी ।। (वा. 77.2)
561. मात पिता गुरु विप्र न मानहिं । आपु गए अरु धालहि आनहिं ।। (उ. 40.3)
562. माया ईस न आप कह जान कहिअ सो जीव ।
वंध मोच्छ प्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव ।। (अ. 15)
563. माया वस्य जीव अभिमानी । ईस वस्यमाया गुन खानी ।। (उ. 78.3)
564. माया वस मति मंद अभागी । हृदय जमनिका वहुविधि लागी ।। (उ. 73.4)
565. माया वस कवि कोविद ग्याता । (उ 60.2)
566. मायावस परिछिन्न जड़ जीव कि ईश समान । (उ. 111)
567. माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ।। (बा. 6.4)
568. मिलइ न जगत सहोदर भ्राता । (लं. 61.4)

569. मिलइ न रघुपति विनु अनुरागा । किए जोग तप ग्यान विरागा ।।
(उ. 62.1)

570. मुखिया मुख सों चाहिए खान पान कहुं एक ।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक ।। (अयो. 315)

571. मुद मंगल मय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथ राजू ।। (बा. 2.4)

572. मुधा भेद जद्यपि कृत माया । विनु हरि जाइन कोटि अपाया ।।
(उ. 78.4)

573. मूक होय वाचाल पंगु चढ़इ गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल करहु कृपा कलिमल दहन ।। (बा. 2)

574. मूदें आँखि कतहुँ कोउ नाँही । (बा. 280.4)

575. मै अरु मोर तोर तैं माया । जेहि वस कीन्हे जीव निकाया ।। (अ. 15.1)

576. मोह दरिद्र निकट नहि आवा । लोभ बात नहि ताहि बुझावा ।।
(उ. 120.2)

5 7. मोह न अंध कीन्ह केहि केही । (उ. 70.4)

578. मोह न नारि नारि कैं रूपा । पन्नगारि यह रीति अनूपा ।। (उ. 116.1)

579. मोह निसा सबु सोवनि हारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ।।
(अयो. 93.1)

580. मोह सकल व्याधिन्ह करमूला । तिन्हते पुनि उपजहि वहु सूला ।।
(उ. 121.15)

(य)

581. यह गुन साधन ते नहि होइ । तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई ।।
(कि. 21.3)

(र)

582. रघुपति भगति सजीवन भूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ।। (उ. 122.4)

583. रघुपति भगति बिना सुख नाही । (उ. 122.7)

584. रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहि वरु वचन न जाई ।।
(अयो. 28.2)

586. रघुवंशिन्ह कर सहज सुभाऊ । मन कुपंथ पगु धरिहन काऊ ।।
(बा. 231.4)

586. रजमग परी निरादर रहई । सबकर पद प्रहार नित सहई ।। (उ. 106.6)

587. रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानु कर वारि । (बा. 117)
जदपि मृषा तिहुं काल सोइ भ्रमन सकैं कोउ टारि ।।

588. रंति देव वलि भूप सुजाना । धरम धरेउ सहि संकट नाना ।। (अयो. 95.2)

589. रूप विशेष नाम बिनु जाने । करतल गत न परहिं पहिचाने ।। (बा. 21.3)

590. रवि सन्मुख तम कबहुक जाहीं। (उ. 72.4)

591. रस रस सूखि सरित सरपानी। ममता त्याग करहिं जिमिग्यानी।। (कि. 16.3)

592. रहत न आरत के चित चेतू। (अयो. 269.2)

593. राकापति षोडसउग्रहि तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइए बिनु रवि राति न जाय।। (उ. 78)

594. राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन विमल वसहु भगत उर व्योम।। (अ. 42)

595. राखिय नारि जदपि उर मांही। जुवती शास्त्र नृपति बस नाहीं।। (अ. 37.5)

596. राजनीति विनु धन विनु धर्मा। हरिहिं समर्पे विनु सत कर्मा।। (अ. 21 4)

597. राजु कि रहइ नीति विनु जाने। (उ. 112.3)

598. राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी।। (उ. 52.2)

599. राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा।। (बा. 22.3)

600. राम कथा सुर धेनु सम सेवत सब सुख दानि।
सत समाज सुरलोक सब को न सुने अस जानि।। (बा. 113)

601. राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना।। (बा. 116.4)

602. राम कथा सुन्दर करतारी। संसय विहग उडावन हारी।। (बा. 114.1)

603. राम कथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुन गिरि राज कुमारी।। (,,)

604. राम नाम कलि अभिमत जाना। (बा. 27.3)

605. राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहि तंह मोह निसा लवलेसा।। (बा 116.3)

606. राम चरित जे सुनत अघाही। रस विसेषि जाना तिन्ह नाहीं।। (उ. 53.1)

607. राम नाम नर केसरी कनक कसिपु कलि काल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुर सालु।। (बा. 27)

608. रामचन्द्र के भजन विनु जो चह पद निर्वान।
ग्यान वंत अपि सो नर पसुविनु पूछ विषान।। (उ. 78)

609. राम विमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।। (सु. 23.3)

610. राम विमुख काहु न सुख पायो। (लं. 48.4)

611. राम विमुख न जीव सुख पावै। (उ 122.9)

612. राम विमुख लहिं विधि सम देही। कवि कोविद न प्रसंसहि तेही।। (उ. 96.2)

613. राम विमुख सिधि सपनेहुं नाहीं। (अयो. 256.1)

614. राम भजन विनु मिटहि न कामा । (उ. 90.1)

615. राम राम कहि जे जमुहाई । तिन्हहि न पापपुंज समुहाई ।। (अयो. 194.3)

616. रामहि केवल प्रेम पिआरा । जानि लेहु जो जान निहारा ।। (अयो. 137.1)

617. राम सकल नामन्ह ते अधिका । होइ नाथ अघ खग गन वधिका ।।
(अ. 42.4)

618. राम भजन सोइ मुकुति गोसाई । अन इच्छित आवइ बरि आई ।।
(उ. 119.2)

619. राम कृपा नासहिं सब रोगा । जौ एहि भाँति बनै संजोगा ।। (उ. 122.3)

620. राम कृपा विनु सुन खगराई । जानि न जाय राम प्रभुताई ।. (उ. 89.3)

621. राम भगति चिंता मनि सुन्दर । वसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ।।
(उ. 120.1)

622. राम भगति मनि उर वस जाके । दुख लवलेस न सपनेहु ताके ।।
(उ. 120.5)

623. रिद्धि सिद्धि प्रेरइ वहुभाई । बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई ।।
(उ. 118.4)

624. रिपु तेजसी अकेलि अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।
अजहु देत दुख रवि ससिहि सिर अवसोपित राहु ।। (बा. 170)

625. रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि । (अ. 21)

626. रिपु रिनु रंच न राखव काऊ । (अयो. 229.1)

627. रिपु पर कृपा करहु कदराई । (अ. 19.7)

628. रोम राजि अष्टादस मारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।। (लं. 15.5)

(ल)

629. लखि सुवेषु जग वंचक जेउ । वेष प्रताप पूजि अहि तेऊ ।। (बा. 7.3)

630. लाभु कि किछु हरि भगति समाना । जेहि गावहि स्रुति संत् पुराना ।।
(उ. 112.4)

631. लोभ के इच्छा दंभवल काम के केवल नारि । (अ. 38)
क्रोध के परुष वचन वल मुनि वर कहहिं विचारि ।। (,,)

632. लोभ पास जेहि गर न बंधाया । सो नर तुम समान रघुराया ।।
(कि. 21.3)

633. लोभहि ओढ़न लोभहि डासन । सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन ।। (उ. 40.1)

634. लोभी लोलुप कल कीरति चहई । अक लंक ता कि कामी लहई ।।
(बा. 267.2)

635. लोभी जसु चह चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ।। (अ. 17.8)

(व)

636. व्यापक व्याप्य अखंड अनंता । अखिल अमोघ सक्ति भगवंता ।। (उ. 72.2)
637. व्यापकु एक ब्रह्म अविनासी । सत चेतन घन आनंद रासी ।। (बा. 23.3)
638. व्यापहि मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ।। (उ. 120.4)
639. वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना । अंध वधिर क्रोधी अति दीना ।। (अ. 5.4)
ऐसेहु पति कर किय अपमाना । नारि पाव जमपुरी दुख नाना ।। („)
640. विगत काम मम नाम परायन । सांति बिरति विनती मुदितायन ।। (उ. 38.3)

(श)

641. श्रद्धा विना धरमु नहिं होई । (उ. 90.2)
642. श्रद्धा छमा मयत्री दाया । मुदिता मम पद प्रीति अभाया ।। (अ. 46.2)
643. श्रवन दिसा दस वेद वखानी । मारुत स्वांस निगम निज वानी ।। (लं. 15.2)
644. शिव दधीचि हरि चंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ।। (अयो. 95.2)
645. श्रीमद वक्र न कीन्हि केहि प्रभुता वधिर न काहि ।
मृग लोचनि के नैंन सर को अस लागन जाहि ।। (उ. 70)
646. श्रुति कह परम धरम उपकारा । (वा. 84.1)

(ष)

647. षट विकार जित अनध अकामा । अकल अकिंचन सुचि सुख धामा ।। (अ. 45.4)

(स)

648. स्वारथ मीत सकल जग मांही । (उ. 47.3)
649. स्वारथ सांच जीव कहु एहा । मन क्रम वचन राम पद नेहा ।। (उ. 96.1)
850. स्वारथ रत परिवार बिरोधी । लंपट काम लोभ अति क्रोधी ।। (उ. 40.2)
651. स्वामि धरम स्वारथहि विरोधू । बैर अंध प्रेमहि न प्रबोधू ।। (अयो. 293.4)
652. सकल विघ्न व्यापहिं नहि तेही । राम सुकृपा विलोकहिं जेही ।। (बा. 39.3)
653. संग ते जती कुमंत्र ते राजा । मान ते ग्यान पान ते लाजा ।। (अर.21.5)
654. प्रीति प्रनय विनु मद ते गुनी । नासहिं वेगि नीति असगुनी ।। („)

655. संग्रह त्यागु न बिनु पहिचाने । (बा. 6.1)
656. सचिव बैद गुरु तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर होय बेगि ही नास ।। (सु. 37)
657. सजल मूल जिन्हु सरितन्ह नाहीं । बरषगए पुनि तबहिं सुखाहीं ।।
(सु. 23.3)
658. संत असंतन्ह के असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ।
(उ. 37 4)
659. संत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ।।
(उ. 121. 11)
660. संत बिसुद्ध मिलहि परितेही । चितवहि राम कृपा करि जेही ।।
(उ. 69.4)
661. संतबिटप सरिता गिरि धरनी । परिहित हेतु सबन्ह कै करनी ।।
(उ. 125.3)
662. संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पंथ । (उ. 33)
663. संत सहहि दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ।।
(उ. 121.8)
664. संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु । (बा. 3)
665. संत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह पै कहइ न जाना ।।
(उ. 125.4)
666. सत संगति दुर्लभ संसारा । निमिष दण्ड भरि एकउ बारा ।।
(उ. 123.3)
667. सत संगति मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।।
(बा. 3.4)
668. सत्य मूल सब सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मनुगाए ।। (अयो. 28.3)
669. सत्य कहहि कवि नारि सुभाऊ । सब बिधि अगम अगाध दुराऊ ।।
(अयो. 47.4)
670. सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा । सब बिधि सुखत्रेता कर धर्मा ।।
(उ. 104.2)
671. बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस । द्वापर धर्म हरष भय मानस ।। („)
672. सत हरि भजनु जगत सब सपना । (अ. 39 3)
673. सत्रु मित्र सुख दुख जग मांही । माया कृत परमारथ नांही ।। (कि. 7.9)
674. सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीति । सहज कृपन सन सुन्दर नीती ।।
(सु. 58.1)
675. सठ सुधरहिं सत संगति पाई । पारस धातु कुधातु सुहाई ।। (बा. 3.5)

676. सदगुरु वैद कवन विस्वासा । संजम यह न विषय कै ग्रासा ।। (उ. 122.3)
677. सदगुरु मिलें जाहि जिमि संसय भ्रम समुदाय । (कि. 17)
678. सनइव खल पर बंधन करई । खाल कढाइ विपति सहि भरई ।।
(उ. 121.9)
679. सपने होय भिखारि नृप रंकु नाक पति होइ ।
जागे लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंचु जिग्र जोइ ।। (ग्रयो. 92)
680. सब कर परम प्रकासक जोई । राम ग्रनादि ग्रवध पति सोई ।।
(बा. 117.3)
681. सब्र गुन रहित कुकवि कृत बानी । राम नाम जस ग्रंकित जानी ।।
(बा. 10.3)
682. सब जगु ताहि ग्रनलहु ते ताता । जो रघुवीर विमुख सुन भ्राता ।।
(ग्र. 2.4)
683. सवते कठिन राज मदु भाई । (ग्रयो. 231.4)
684. सबते सेवक धरम कठोरा । (ग्रयो. 203.4)
685. सबते सो दुर्लभ सुरराया । राम भगति रत गत मद माया ।। (उ. 54.4)
686. सब विधि सोचिय पर ग्रपकारी । निज तनु पोपक निरद यारी ।।
(ग्रयो. 173.3)
687. संभावित कहु ग्रपजसु लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू ।। (ग्रयो. 95.4)
688. सम ग्रभूत रिपु विमद विरागी ! लोभा मरप हरप भय त्यागी ।।
(उ. 38.1)
689. सम दम नियम नीति नहिं डोलहि । परुप वचन कबहू नहिं बोलहि ।।
(उ. 38.4)
690. सम प्रकास तम पाख दुहू नाम भेद विधि कीन्ह ।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस ग्रपजस दीन्ह ।। (बा. 7)
691. समरथ कहु नहि दोषु गोसाई । रवि पावक सुरसरि की नाई ।।
(बा. 69.4)
692. सम सीतल नहिं त्यागहि नीती । सरल सुभाव सबहि सन प्रीती ।।
(ग्र. 46.1)
693. समिटि समिटि जल भरहिं तलावा । जिमि सदगुन सज्जन पहिं ग्रावा ।।
(कि. 14.4)
694. समुझइ खग खग ही कै भापा । (उ. 62.5)
695. सरग नरक ग्रनुराग विरागा । निगमागम गुन दोष विभागा ।। (बा. 6.5)
696. सरदातप निखि ससि ग्रपहरई । संत दरस जिमि पातक टरई ।।
(कि. 17.3)

697. सरनागत कहुं जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावर पाप मय तिन्हहिं बिलोकत हानि ।। (सु. 43)
698. सरसी सीप कि सिंधु समाई । (अयो. 258.2)
699. सरिता जल जलनिधि महुं जाई । होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ।।
(कि. 14.4)
700 सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गति मद मोहा ।।
(कि. 16.2)
701. संसृति मूल सूल प्रद नाना । सफल सोक दायक अभिमाना ।। (उ. 74 3)
702. ससि सम्पन्न सोह महि कैसी । उपकारी कै संपति जैसी ।। (कि. 15.3)
703. सहज अपावन नारि पति सेवत सुभ गति लहइ । (अ. 5)
704. सहज एकाकिन्ह कै भवन कबहुंकि नारि खटाहि । (बा. 7.9)
705. सहज प्रकास रूप भगवाना । नहिं तेहि पुनि बिग्यान बिहाना ।।
(बा. 116.3)
706. सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करहि निरमानि ।
सो पछिताय अघाय उर अवसि होत हित हानि ।। (अयो. 63)
707. सहसा करि पाछे पछिताहीं । कहहि बेद बुध ते बुध नाहीं ।।
(अयो. 231.?)
708. सागर सीपकि जाहि उलीचे । (अयो. 283.2)
709. सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जौ हरि कृपा हृदय बस आई ।। (उ. 117.5)
710. जप तप ब्रत जम नियम अपारा । जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ।। (,,)
711. तेइ तृन हरित चरै जब गाई । भाव बच्छ सिसु पाई पेन्हाई ।।
(उ. 117 6)
712. नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ।। (,,)
713. परम धर्म मय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ।। (उ. 117.7)
714. तोष मरुत तब छमा जुड़ावै । धृति सम जावनु देइ जमावै ।। (,,)
715. मुदिता मथै बिचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ।। (उ. 117.8)
716. तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ।। (,,)
717. जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ।। (उ. 117 'क')
718. तब बिग्यान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ ।
चित दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ।। (उ. 117 'ख')
719. तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तैं काढ़ि ।
तूल तुरीय संवारि पुनि बाती करै सु गाढ़ि ।। (उ. 117 'ग')
720. एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यान मय ।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ।। (उ. 117 'घ')

721. सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही । मधुकर सरिस संत गुन ग्राही ।।
(बा. 10.3)

722. सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा । दीप सिखा सोइ परम प्रचण्डा ।। (उ. 118.1)

723. साधक नाम जपहि लय लाए । होहिं सिद्धि अनि मादिक पाए ।।
(बा. 22.2)

724. साधु चरित सुभ चरित कपासू । निरस विषद गुनमय फल जासू ।।
(बा. 2.3)

725. साधु ते होय न कारज हानी । (सु. 6.2)

726. सावधान मानद मदहीना । धीर धर्म गति परम प्रवीना ।। (अ. 45.5)

727. साम दाम अरु दण्ड विभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कहि वेदा ।। (लं. 38.5)

728. सास्त्र सु चिंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ।।
(अ. 37.4)

729. सिवि दधीचि बलि जो कछु भाखा । तनुधनु तजेउ वचन पुनु राखा ।।
(अयो. 30.4)

730. सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ।। (उ. 38.3)

731. सीलकि मिल विनु बुध सेवकाई । जिमि विनु तेज न रूप गोसाई ।।
(उ. 90.3)

732. सुख हरषहि जड़ दुख विलखाहीं । देउ सम धीर धरहि मन माहीं ।।
(अयो. 150.4)

733. सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा । (अयो. 235 3)

734. सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल मांहि ।
जथा धर्म सीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहि ।। (अ. 39)

735. सुखी मीन जह नीर अगाधा । जिमि हरि सरन न एकहु बाधा ।।
(कि. 17.1)

736. सुगम उपाय पाइवे केरे । नर हत भाग्य देहिं भटकेरे ।। (उ. 120.6)

737. सुतवित नारि भवन परिवारा । होहि जाहि जग बारहिबारा ।।
(लं. 61.4)

738. सुत वितलोक ईषना तीनीं । केहि कैमति इन्ह कृत न मलीनी ।। (उ. 71.3)

739. सुत तप ते कछु दुर्लभ नांहीं ! (161.1)

740. सुद्ध सत्व समता विग्याना । कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ।। (उ. 104.1)

741. सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग जलधि अगाधू ।। (बा. 5.3)

742. सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल कलिमल सरि व्याधू ।।
(बा. 5.4)

743. सुन खगेस हरि भगति विहाई । जे सुख चाहहि आन उपाई ।। (उ. 115.2)

744. सुन रावन ब्रह्माण्ड निकाया । पाइ जासु बल विरचित माया ।। (सु. 21.2)

745. जाके बल विरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ।। (,,)

746. जा बल सीस धरत सहसा सन । अंडकोष समेत गिरि कानन ।।

(सु. 21.3)

747. सुनहु असतन्ह केर सुभाऊ । भूलेहु संगत करिउ न काहू ।। (उ. 39.1)

748 सुनहु उमा जे लोग अभागीं । हरि तजि होथ विषय अनुरागी ।।

(अ. 33.2)

749. सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोप अनेक ।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिय सो अविवेक ।। (उ. 41)

750. सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहि जय होय सो स्यंदन आना ।।

(ल. 80.2)

751. सौरज धीरज रथ कर चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ।। (लं. 80.3)

752. बल विवेक दम परहित थोरे । क्षमा कृपा समता रजु जोरे ।। (,,)

753. ईस भजनु सारथी सुजाना । विरति चर्म संतोष कृपाना ।। (लं. 80.4)

754. दानु परस बुधि सक्ति प्रचण्डा । बर विग्यान कठिन को दण्डा ।। (,,)

755. अमल अचल मनत्रोन समाना । सम जम नियम सिली मुख नाना ।।

(लं. 80.5)

756. कवच अभेद विप्र गुरपूजा । एहि सम विजय उपाय न दूजा ।। (,,)

757. सखा धर्म मय अस रथ जाके । जीतन कंह न कतहु रिपु ताके ।।

(लं. 80.6)

758. महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो वीर ।
जाके असरथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मति धीर ।। (लं. 80)

759. सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईस देहि फल हृदय विचारी ।।

(अयो. 77.4)

760 सुभ अरु असुभ सलिल सब वहई । सुरिसर कोउ अपुनीतमन कहई ।।

(बा. 69.4)

761. सुभ गति पाव कि पर त्रिय गामी । (उ. 112.2)

762. सुमति कुमति सवके उर रहही । नाथ पुरान निगम अस कहही ।।

(सु. 40.3)

763. सुमरिय नाम रूप विनु देखे । आवत हृदय सनेह विसेषे ।। (बा. 21.3)

764. सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहिं न मोह माया प्रवल ।
अस विचारि मन मांहि भजिअ महा माया पतिहि ।। (बा. 140)

765. सुर नर मुनि सवकै यहि रीती स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ।

(कि. 12.1)

766. सुर सरि जल कृत वारुनि जाना । कबहु न संत करहि तेहि पाना ।।
(बा. 70.1)

767. सुर सरि मिले सो पावन कैसे ईस अनीसहि अंतर तैसे । (,,)

768. सूर समर करनी करहि कहि न जनावहि आपु ।
विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहि प्रतापु ।। (अयो. 274)

769. सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिब होय ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकवि सराहहिं सोइ ।। (अयो. 306)

770. सेवक सठ नृप कृपन कुनारी । कपटी मित्र सूल सम चारी ।। (कि. 7.5)

771. सेवक सुख चह मान भिखारी । व्यसनी धन सुभ गति विभिचारी ।।
(अ. 17.8)

772. सेवक सुत पति मातु भरोसे । रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे ।। (कि. 3.2)

773. सेवक सो जो करै सेवकाई । अरिक रनी करि करिय लराई । (बा. 271.2)

774. सेवक हित साहिब सेवकाई । करइ सकल सुख लोभ बिहाई ।।
(अयो.268.2)

775. सेवा धरमु कठिन जगु जाना । (अयो. 293.4)

776. सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर । होहि विषयरत मंद मंदतर ।।
(उ. 121.6)

777. काँच किरिच बदले ते लेही । करते डारि परस मनि लेही ।। (,,)

778. सो न टरै जो रचै विधाता । (बा 97.3)

779. सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ।।
(उ. 120.6)

780. सो सुख करमु धरमु जरि जाऊ । जेह न राम पद पंकज भाऊ ।।
(अयो. 291.1)

781. सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । जद्यपि सो सब भांति अयाना ।। (उ. 87.3)

782 सो सुतंत्र अवलंब न आना । तिहि आधीन ग्यान विग्याना ।। (अ. 16.2)

783. सो सुधारि हरिजन जिमि लेही । दलि दुख दोष बिमल जसु देही ।।
(बा. 7.2)

784. सोइ गुनज्ञ सोई बड़भागी । जो रघुबीर चरन अनुरागी ।। (कि. 23.4)

785. सोई सच्चिदानन्द घन रामा । अज विग्यान रूप बल धामा ।। (उ. 72.2)

786. सोई जल अनल अनिल संघाता । होइ जलद जग जीवन दाता ।।
(बा. 7.6)

787. सोई प्रभुभ्रू बिलास खगराजा । नाच नटी इव सहित समाजा ।।
(उ. 72.1)

788. सोई पावन सोई सुभग सरीरा । जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा ।।
(उ. 96.1)

789. सोई सर्वग्य गुनी सोइ ग्याता । सोइ महि मंडित पंडित दाता ।।
(उ. 127.1)
790. सोई सर्वग्य तग्य सोइ पंडित । सोइ गुनगृह विग्यान ग्रखंडित ।। (उ. 49.4)
(उ. 49.4)
791. सोई कवि कोविद सोइ रनधीरा । जो छल छाँडि भजइ रघुवीरा ।।
(उ. 127.2)
792. सोइ न राम पेम विनु ग्यानू । करन धार विनु जिमि जल जाजू ।।
(ग्रयो. 277.3)
793. सोचिग्र गृही जो मोहवस करइ करम पथ त्याग । (ग्रयो. 172)
794. सोचिग्र नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ।।
(ग्रयो. 172.2)
795. सोचिग्र पिसुन ग्रकारन क्रोधी । जननि जनक गुरु वंधु विरोधी ।।
(ग्रयो. 173.1)
796. सोचिग्र पुनि पति वंचक नारी । कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी ।।
(ग्रयो. 172.4)
797. सोचिग्र वटु निज व्रतु परिहरई । जो नहिं गुर ग्रायसु ग्रनुसरई ।। („)
798. सोचिग्र विप्र जो वेद विहीना । तजि निज धरमु विपय लयलीना ।।
(ग्रयो. 172.2)
799. सोचिग्र वयसु कृपन धनवानू । जो ग्रतिथि सिव भगति सुजानू ।।
(ग्रयो. 172 3)
800. सोचिग्र सूद्र विप्र ग्रवमानी । मुखर मान प्रिय ज्ञान गुमानी ।। („)
801. सोचनीय सवही विधि सोई । जो न छाड़ि छलु हरि जन होई ।।
(ग्रयो 173.2)
802. सोचिग्र जती प्रपंच रत विगत विवेक विराग । (ग्रयो. 172)
803. सौभागिनी विभूपन हीना । विधवन्ह के सिंगार नवीना ।। (उ. 99.3)

(ह)

804 हठ वस सव संकट सहे गालव नहुप नरेस । (ग्रयो. 61)
805. हरइ सिष्य धन सोक न हरहीं । सो गुर घोर नरक महि परहीं ।।
(उ. 99.4)
806. हरष विषाद ग्यान ग्रग्याना । जीव धर्म ग्रहमिति ग्रभिमाना ।।
(बा. 116 4)
807. हरि इच्छा भावी वलवाना । (बा. 56.3)
808. हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहि पंथ ।
तिमि पाखण्ड विवाद ते लुप्त भए सदग्रंथ ।। (कि. 14)

809. हरि पद बिमुख परम गति चाहा । तस तुम्हार लालचु नर नाहा ।।
(बा. 267.2)

810. हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रगट होहि मैं जाना ।। (बा. 185.3)

811. हरि विषयक अस मोह विहंगा । सपनेहु नहिं अग्यान प्रसंगा ।। (उ. 73.4)

812. हरि माया कृत अमिति प्रभावा । (उ. 60.2)

813. हरि मायाकृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहि ।
भजिअ राम तजि काम सब अस विचारि मन मांहि ।। (उ. 104)

814. हरि सेवकहि न व्याप अविद्या । प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या ।।
(उ. 79.1)
ताते नास न होय दास कर । भेद भगति बाढ़उ विहंग वर ।। (उ. 79.2)

815. हरि हर जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ।। (बा. 4.2)

816. हंसहहिं क्रूर कुटिल कु विचारी । जे पर दूषन भूषन धारी ।। (बा. 8.5)

817. हंसहिं बक दादुर चातक ही । हंसहि मलिन खल विमल बतकही ।।
(बा. 9.1)

818. हांनि कि जग एहि सम कछुभाई । भजिअ न रामहि नरतनु पाई ।।
(उ. 112.5)

819. हानि कुसंग सुसंगति लाहू । लोकहु वेद विदित सब काहू ।। (बा. 7.4)

820. हानि लाभु जीवन मरन जस अपजस विधि हाथु । (अयो. 171)

821. हित अनहित पसु पच्छिहु जाना । मानष तनु गुन ग्यान निधाना ।।
(अयो. 264.4)

822. होहि कुठाय सुबंधु सुहाए । ओढ़िअहि हाथ असनिहु के घाए ।।
(अयो. 306.4)

823. होइ बुद्धि जो परम सयानी । तिन्ह तन चितव न अनहित जानी ।।
(उ. 118.5)

824. होइ न विमल विवेक उर गुरु सन किए दुराव । (बा. 45)

825. होइ है सोई जो राम रचि राखा । को करि तर्क बढ़ावहि साखा ।।
(बा. 52.4)

परिशिष्ट—2

सहायक ग्रन्थों की सूची

(क) 'रामचरितमानस' एवं तुलसी सम्बन्धी ग्रन्थ

1. गोस्वामी तुलसीदास : रामचन्द्र शुक्ल, ना. प्र. सभा, काशी, सं 2008 ।
2. गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक ग्रादर्श : सुधा शुक्ल ।
3. तुलसी ग्रंथावली : सं. रामचन्द्र शुक्ल, ना. प्र. सभा, काशी ।
4. तुलसीदास : माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय ।
5. तुलसीदास : रामरतन भटनागर ।
6. तुलसी : रामबोही शुक्ल, हिन्दी भवन, इलाहाबाद ।
7. तुलसी : सं. उदयभानु सिंह, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।
8. तुलसी दर्शन : बल्देवप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
9. तुलसी दर्शन मीमांसा : उदयभानुसिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय ।
10. तुलसी संदर्भ : माताप्रसाद गुप्त ।
11. तुलसी ग्रौर उनकी कविता (प्रथम भाग) : रामनरेश त्रिपाठी, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली ।
12. तुलसी की शिक्षा दर्शन : डॉ. शम्भुनाथ शर्मा ।
13. तुलसी की विचारधारा : उदयभानुसिंह ।
14. तुलसी चिन्तन ग्रौर कला : सं. इन्द्रनाथ मदान ।
15. तुलसी जीवन ग्रौर विचारधारा : राजाराम रस्तोगी, ग्रनुसंधान प्रकाशन, कानपुर ।
16. तुलसी साहित्य ग्रौर सिद्धान्त : यज्ञदत्त शर्मा ।
17. तुलसी साहित्य रत्नाकर : रामचन्द्र द्विवेदी, सरस्वती सत्साहित्य प्रकाशन मण्डल, पटना ।
18. तुलसी साहित्य की भूमिका : रामरतन भटनागर ।
19. मानस की रूसी भूमिका : ग्रनु. केसरीनारायण शुक्ल, विद्यामंदिर, लखनऊ ।
20. मानस दर्शन : श्रीकृष्णलाल, ग्रानन्द पुस्तक भवन, बनारस ।
21. मानस पीयूष : ग्रंजनीनंदन शरण ।

22. मानस माधुरी : बल्देवप्रसाद मिश्र, साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा ।
23. मानस मीमांसा : रंजनीकान्त शास्त्री, किताबमहल, इलाहाबाद ।
24. रामचरितमानस : माताप्रसाद गुप्त, साहित्य कुटीर, प्रयाग ।
25. रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ. शिवकुमार शुक्ल, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर ।
26. रामचरितमानस का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : जगदीश कनक ।
27. रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन : राजकुमार पांडे, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर ।
28. रामचरितमानस की भूमिका : रामदास गौड़, हिन्दी पुस्तक रस्तोगी, बनारस ।
29. कृतवासी बंगला रामायण और मानस का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ. रमानाथ त्रिपाठी ।
30. वाल्मीकि और तुलसी साहित्य मूल्यांकन : रामप्रकाश अग्रवाल, प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ ।
31. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ. विद्यानिवास मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ।

(ख) सूक्ति सम्बन्धी ग्रन्थ

1. तुलसी सूक्ति सुधा : सं. वियोगी हरि, साहित्य सेवा सदन, बनारस ।
2. नये सुभाषित : रामधारीसिंह 'दिनकर' ।
3. प्राकृत सुभाषित संग्रह : प्रो. वी. एम. शाह, नानपुरा, सूरत ।
4. प्राकृत सूक्ति सरोज : सं. मुनि विनयचन्द्र, प्र. धर्मदास जैन मित्रमण्डल, रतलाम ।
5. प्रेमचन्द सुभाषित और सूक्तियाँ : अनु. श्रीशरण ।
6. शरद की सूक्तियाँ : सं. रामप्रकाश जैन ।
7. सुभाषित रत्न भाण्डागारम् : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1912 ई. ।
8. सूक्ति त्रिवेणी : सं. उपाध्याय अमर मुनि ।
9. सूक्ति मुक्तावली : दर्पदलन ।
10. सूक्ति मुक्तावली : जल्हण, ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा : 1938 ई. ।
11. सूक्ति सागर : सं. रमाशंकर गुप्त, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश ।

(ग) साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ

1. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि : डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ, सं. 2007, वि. ।
2. अथर्ववेद : दामोदरलाल वलेकर ।

3. अध्यात्मरामायण : गीता प्रेस, गोरखपुर ।
4. अपभ्रंश काव्यत्रयी : जिनदत्त सूरि ।
5. अपभ्रंश दर्पण : श्री जगन्नाथराय शर्मा ।
6. अपभ्रंश साहित्य : प्रो. हरिवंश कोछड़ ।
7. आधुनिक कवि 'भाग 2' : श्री सुमित्रानन्दन पन्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।
8. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रयोग तथा परम्परा : डॉ. गोपालदास 'सारस्वत' ।
9. इण्डिया फिलॉसफी : डॉ. राधाकृष्णन् ।
10. उत्तर-रामचरितमानस : भवभूति ।
11. उर्वशी : रामधारीसिंह 'दिनकर' ।
12. ऐतरेय ब्राह्मण : आनन्दाश्रम, पूना ।
13. ऋग्वेद ।
14. कन्नड़ गादेगलु : एच. सी. अचप्पा ।
15. कर्पूरमंजरी : राजशेखर ।
16. कलि विडम्बन : नीलकंठ दीक्षित ।
17. कंसवहो : रामपाणिवाद, अनु. डॉ. ए. एन. उपाध्याय, प्र. मोतीलाल वनारसीदास, देहली-6 ।
18. कविता कौमुदी : रामनरेश त्रिपाठी, नवनीत प्रकाशन, बम्बई ।
19. कामायनी : जयशंकरप्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।
20. काव्यालोचन : प्रतापनारायण मिश्र ।
21. काव्यमाला भाग 5 ।
22. काव्यामाला गुच्छक 11, 1933 ई. ।
23. काव्यमाला द्वितीय गुच्छ, बम्बई ।
24. काव्यानुशासन : हेमचन्द्र ।
25. काव्यालंकार : भामह ।
26. किरातार्जुनीय : भारवि, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।
27. कीर्तिलता : सं. वाबूराम सक्सेना, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।
28. कुमारसम्भव : कालिदास, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।
29. कुरुक्षेत्र : रामधारीसिंह 'दिनकर' ।
30. केशवग्रन्थावली : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग ।
31. खुसरो की हिन्दी कविता : नागरी प्रचारिणी सभा, कांशी ।
32. गबन : प्रेमचन्द ।
33. गाथा सप्तशती : सातवहन, व्या. जगन्नाथ पाठक, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।
34. गिरधर कुण्डलिया ।

35. गीता : गीता प्रेस, गोरखपुर ।
36. गोस्वामी तुलसीदास : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
37. चन्द्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद ।
38. चम्पूभारतम् : टीका आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्या भवन, चौक, वाराणसी ।
39. चिन्तामणि (भाग 1) : पं. रामचन्द्र शुक्ल ।
40. चित्ररेखा : सं. पं. शिवसहाय पाठक ।
41. जातक : भदन्त कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
42. जायसी ग्रन्थावली : रामचन्द्र शुक्ल ।
43. ज्ञानसार ग्रन्थावली : अगरचन्द नाहटा ।
44. थियोलोजी आॅफ तुलसीदास : कारपेन्टर ।
45 दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली : ना. प्र. सभा, काशी ।
46. दोहावली : गोस्वामी तुलसीदास ।
47. धम्मपद : अनु. महापण्डित त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन, लखनऊ ।
48. न्याय दर्शन ।
49. नीति शतक : भर्तृहरि, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
50. नीतिशास्त्र : डॉ. ब्रजगोपाल तिवारी एवं डॉ. जे. पी. अत्रे ।
51. नैषधीय चरित : श्रीहर्ष ।
52. पउम चरिय : स्वयंभू विरचित ।
53. पंचतंत्रश्लोक ।
54. पंचवटी : मैथिलीशरण गुप्त ।
55. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी ।
56. पद्मावत : मलिक मोहम्मद जायसी ।
57. पद्मपुराण : आ. रविषेणाचार्य, भारतीय ज्ञान पीठ, काशी ।
58. प्रसन्नराघव : जयदेव, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।
59. प्राकृत विमर्श : डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल ।
60. प्रिफेस टू लायरिकल वालड : वर्डस्वर्थ ।
61. पुरानिक वर्डस् आफ विज़डम : सं. कर्माकर, बम्बई ।
62. बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ. रमानाथ त्रिपाठी ।
63. बरैधुवदारि : एम. एम. वृष्भेन्द्र स्वामी ।
64. बुद्धचरित : अश्वघोष ।
65. विहारी रत्नाकर : ग्रन्थकार प्रकाशन, बनारस ।
66. भ्रमरगीत : सं. रामचन्द्र शुक्ल ।

67. भारतीय दर्शन का परिचय : रामानन्द तिवारी ।
68. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ।
69. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : श्री ब्रजरत्न दास ।
70. भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि : किशोरीलाल गुप्त ।
71. भिखारी ग्रन्थावली : प्रथम खण्ड, ना. प्र. सभा, काशी ।
72. मनराम : ना. प्र. सभा, काशी ।
73. मनुस्मृति : टीका पं. अयोध्याप्रसाद भार्गव, भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस ।
74. मलिक मोहम्मद जायसी कृत कहरानामा और मसलानामा : सं. श्री अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' ।
75. महाभारत : गीता प्रेस, गोरखपुर ।
76. महारामायण ।
77. मान सरोवर : प्रेमचन्द । (प्रथम, चतुर्थ, पंचम तथा अष्टम भाग)
78. मेघदूत : कालिदास, चौखम्वा संस्कृत सिरीज, वाराणसी ।
79. यशोवरा : मैथिलीशरण गुप्त ।
80. रघुवंश : कालिदास, चौखम्वा विद्या भवन, वाराणसी ।
81. रसगंगाधर तिलक : जगन्नाथ ।
82. रहिमन विलास : सं. ब्रजरत्नदास रामनारायणलाल, प्रयाग ।
83. राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन : कन्हैयालाल सहल ।
84. रामचरितमानस : गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
85. राघव पाण्डवीय ।
86. रामायण मंजरी ।
87. लोकायतन : सुमित्रानन्दन पन्त ।
88. लोकोक्ति मुक्तावली : दक्षिणामूर्ति ।
89. वृन्दसतसई : सं डॉ. श्यामसुन्दरदास ।
90. वाल्मीकि रामायण : गीता प्रेस, गोरखपुर ।
91. विदुरनीति : गीता प्रेस, गोरखपुर ।
92. विष्णुपुराण : अनु. मुनिलाल, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
93. वैशेषिक दर्शन ।
94. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त : द्वितीय भाग, गोविन्द त्रिगुणायत ।
95. शिव महापुराण ।
96. शिशुपाल वध-माघप्रणीत : टीका हरिगोविन्द शास्त्री ।
97. श्रीमद्भागवत् : गीता प्रेस, गोरखपुर ।
98. सतसई सप्तक : डॉ. श्यामसुन्दर दास ।

99. सरस्वती कंठाभरण : भोजराज, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।
100. सुन्दरसार : सं. श्यामसुन्दर दास हिन्दुस्तानी, एकेडेमी, प्रयाग ।
101. साकेत : मैथिलीशरण गुप्त ।
102. साहित्य दर्पण : विश्वनाथप्रसाद मिश्र ।
103. सेतुबन्धन् : प्रवरसेन, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।
104. सौन्दरानन्द : अश्वघोष, अनु. सूर्यनारायण चौधरी, द्वितीय संस्करण : संस्कृत भवन, काठौतिया, बिहार ।
105. हमारी परम्परा : वियोगी हरि ।
106. हितोपदेश : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।
107. हिन्दी काव्यधारा : राहुल सांकृत्यायन, कितावमहल, इलाहाबाद ।
108. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान : डॉ. नामवरसिंह, प्रयाग ।
109. हिन्दी नीति काव्य : भोलानाथ तिवारी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।
110. हिन्दी में नीति काव्य का विकास : रामस्वरूप शास्त्री, रसिकेस ।
111. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : रामकुमार वर्मा ।
112. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल ।
113. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर : विंटरनित्स '

(घ) कोश ग्रन्थ

1. आदर्श हिन्दी शब्द कोश : पं. रामचन्द्र पाठक ।
2. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, वॉ. 17 ।
3. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, वॉ. 2 ।
4. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स । .
5. चैम्बर्स एनसाइक्लोपीडिया, खण्ड 2 ।
6. द ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी : एडीटेड बाई जेम्स ए. एच., मुररे हेनरी ब्रेडले ।
7. द आक्सफोर्ड यूनीवर्सल डिक्शनरी : बाई विलियम लिटिल, वो. ए-एम ।
8. द शॉर्टर आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी : प्रिपेयर्ड बाई विलियम लिटिल रिवाइज़्ड एण्ड एडीटेड बाई सी. टी. ओनिओस ।
9. नालन्दा विशाल शब्द सागर : ला. फूलचन्द जैन, आदर्श बुक डिपो, दिल्ली ।
10. प्रॉवर्बस् फ्राम ईस्ट एण्ड वेस्ट ।
11. भाषा शब्द कोश : रामशंकर शुक्ल 'रसाल', रामनारायणलाल, प्रयाग ।
12. वृहत् अंग्रेजी हिन्दी कोश : डॉ. हरदेव बाहरी, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी ।
13. वृहत् हिन्दी कोश : सं. कालिकाप्रसाद, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, द्वितीय संस्करण ।

14. संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी : बाई सर मोनियर–मोनियर विलियम।
15. हिन्दी विश्व कोश : नगेन्द्र वसु, कलकत्ता।
17. हिन्दी विश्व कोश तीसरा खण्ड।
18. हिन्दी साहित्य कोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, प्रथम संस्करण, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस।

(ङ) पत्रिकाएँ

1. कल्याण 'मानसांक' खण्ड 2, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. कल्याण 13/2 गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. मानस मयूख (त्रैमासिक शोध-पत्रिका) : सं. रामदास शास्त्री, 30 जून, 1964।

———

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
1	अनुभूतियों	अनुभूति	48	विद्यमान न हो	विद्यमान हो
4	सुक्ति	सूक्ति	49	मुखरी	मुकरी
5	त्रिगुणयत	त्रिगुणायत	55	तुलसादास	तुलसीदास
7	प्राज्ञोत्ति	प्राज्ञोक्ति	114	दृष्टि	वृष्टि
9	शब्दार्थौं	शब्दार्थों	,,	ओडि अहिं	ओडिअहिं
9	Recalled	Recollected	115	करइ	फरइ
10	आली	आती	,,	की	को
13	काव्योक्ति	काव्योक्ति	,,	करना	कराना
17	सक्ति	सूक्ति	116	बेदुहं	वेदा
19	विरहणी	विरहिणी	117	कोई	सोई
23	यज्ञ	यक्ष	,,	सोइ	सोय
24	हो	है	118	अखैर	और
25	अपने	अपनी	119	टप	नृप
28	वीण	वीणा	,,	परिखिहि	परिखिअहि
33	ध्वान्यालोक	ध्वन्यालोक	,,	यह	यही
,,	उद्दण्ड	उदण्ड	,,	अपाच्य	अपथ्य
36	अदमी	आदमी	121	पराजित	प्रभावित
41	सक्ति	सूक्ति	122	नारी	नारि
44	दुरो	बुरो	,,	जानी	खानी
,,	सुखन	मुखन	,,	आढ़	आठ
,,	विभीक्षण	विभीषण	,,	भह	मह
45	उतनी	इतनी	123	जरि सके	जारि सक
47	अंध	गंध	,,	दुराचारणी	दुराचारिणी
,,	कान	कौन	124	प्रभाविकता	प्रामाणिकता

पृष्ठ संख्या	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
125	शरार	शरीर	141	विहित	निःहित
,,	पिया	पिय	,,	घृतिः	धृतिः
,,	पतिव्रत्य	पातिव्रत्य	142	क्षान्ति	शान्ति
126	परपपि	परपति	143	नीवा	नीचा
,,	अधिकारिनी	अधिकारिणी	145	अक्रोश	आक्रोश
,,	कलह कारिनी	कलह कारिणी	146	समत	समता
127	गहित	गर्हित	,,	कुध्य	कछु
,,	सो	तो	,,	विधि त्रेता	विधि सुख त्रेता
129	आद्वितीय	अद्वितीय	147	कलयुग	कलियुग
130	सहृश	सदृश	,,	सभावित	संभावित
132	ताहीं	नाहीं	151	अव	अघ
,,	सभास	समास	153	मानव	मानस
,,	सहृश	सदृश	156	अभिहीत	अभिहित
134	साम	दाम	158	वृद्धि	वुद्धि
135	आस	त्रास	,,	भगवाना	भगवान
136	ठानी	ठानो	,,	अभेघता	अभेदता
,,	पेलसी	तेजसी	,,	मायो	माया
,,	प्रमु	प्रभु	159	अपल	उपल
137	आनुमाना	अनुमाना	160	अगुन्न	अगुन
,,	भृगुपति	मृगुपति	,,	खोजई	खोजइ
138	सकुल	संकुल	162	इन	छन
,,	वैढ़	बाढ़	163	इस	ईस
,,	बढ़त्तरी	बढ़ोत्तरी	,,	वेश	देह
,,	मीति	भीति	164	'मानस'-जीव	मानस में जीव
,,	वैसे जैसे	वैसे ही जैसे	,,	उद्मज	उद्भज
139	किगा	किया	165	जान कहुं	कहुँ जान
,,	समीत	सभीत	,,	वस्प्र	वस्य
,,	स्वपन्न	स्वप्न	167	अखंड	अखंडा
140	मनु	मन	,,	प्रचंड	प्रचंडा
,,	कैकई	कैकेई	169	वाराहिं	करहिं
,,	उचे	उसे	,,	भवमीरा	भव भीरा
,,	धर्स	धर्म	,,	दुषप्रद	दुखप्रद

पृष्ठ संख्या	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
169	स्वाल्प	स्वल्प	218	एवं सामान्य	एवं असामान्य
178	प्रानि	प्रानी	,,	मंगल	मंगन
178	प्राप्तव्य	प्राप्तव्य	219	जस	जग
180	वैसा बंध	वैसा ही बंध	,,	करि	वारि
181	रूप रखा	रूप में रखा	220	हँसाना	हँसना
,,	बड़े	बड़े	221	कभी भंडाफोड	कभी भी भंडाफोड़
,,	ही	हो	224	मड़िहाई	भड़िहाई
182	बौराया	बौराया	225	मनिति	भनिति
184	देवी	दैवी	228	सहक	महक
187	कर्मणा से जो	कर्मणा जो	229	संकुचा	सकुचा
188	कामारूपा	कामरूपा	230	मोहम्मद	मोह मद
,,	रुकमणी	रुक्मिणी	,,	माना	नाना
189	दास्यसकत	दास्यासक्त	232	कपूत ऊपजे	कपूत कैं ऊपजे
190	प्रेम रूपी	प्रेम रूपा	,,	सद्धर्भ	सद्धर्म
191	पौध	पौधा	,,	कुसंग	सुसंग
,,	परितीपतु	परतोपतु	235	ऊपर	ऊसर
192	मनोज्ञवैनिक	मनोवैज्ञानिक	,,	वहाँ तहाँ	जहाँ तहाँ
,,	बृह्म	ब्रह्म	,,	विपयों की जाना	विपयों की
194	भगति सि	भगति जसि			ओर जाना
200	नहीं पाता	नहीं हो पाता	236	वर्ष	वर्षा
202	हौंहि	हो हि	238	कारणीय	करणीय
203	में	से	,,	प्राप्ति	प्राप्त
,,	सूक्तिवों	सूक्तियों	240	का मुझे	का फल मुझे
208	मुत्सर	मत्सर	242	सुकृता	मुकता
,,	लोभाभरष	लोभामरष	,,	से	के
,,	भानुप्रद	मानुप्रद	246	कौन	को न
,,	अभाया	अदाया	,,	बरुमल	बरुभल
211	केनु	केतु	250	भृगु	मगु
212	काकेरला	केला	,,	जं	जे
,,	उसी प्र	उसी प्रकार	251	बड़त्थवाल	बड़थ्वाल
213	प्रियारि	पियारि	252	योग वशिष्ठ	योग वाशिष्ठ
217	बररे	बररै	,,	पुरान	पुराण

पृष्ठ संख्या	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
255	हानि	हानी	272	दुराग्रीं	दुरा[illegible]
258	यक्त	व्यक्त	,,	तभा	तभी
260	वेडोल	वेडौल	,,	नार	नर
261	सामन्य	सामान्य	274	में बचन	में जो वचन
262	दमक रही	दमक न रह	279	आगम्यता	अगम्यता
,,	व्यभिचारणी	व्यभिचारिणी	,,	कहा यह	यह कहा
265	दानि	आनि	283	सुज्जा	सुसज्जा
,,	और	ओर	284	सन	सम
,,	पंचतत्र	पचतत्र	,,	तही	नहीं
267	काच	काँच	286	असह्यनीय	असह्य
269	प्रसग	प्रसंग	287	प्रप्त	प्राप्त
,,	पातिव्रत	पातिव्रत्य	288	कौन	को न
			,,	वृतियों	वृत्तियों